केन्द्रीय उच्च तिब्बती शिक्षा संस्थान, सारनाथ, वाराणसी

बोधिप्रभ

Central Institute of Higher Tibetan Studies, Sarnath, Varanasi

राजभाषा कार्यान्वयन समिति

केन्द्रीय उच्च तिब्बती शिक्षा संस्थान

सारनाथ, वाराणसी

प्रवेशांक

वर्ष 2021

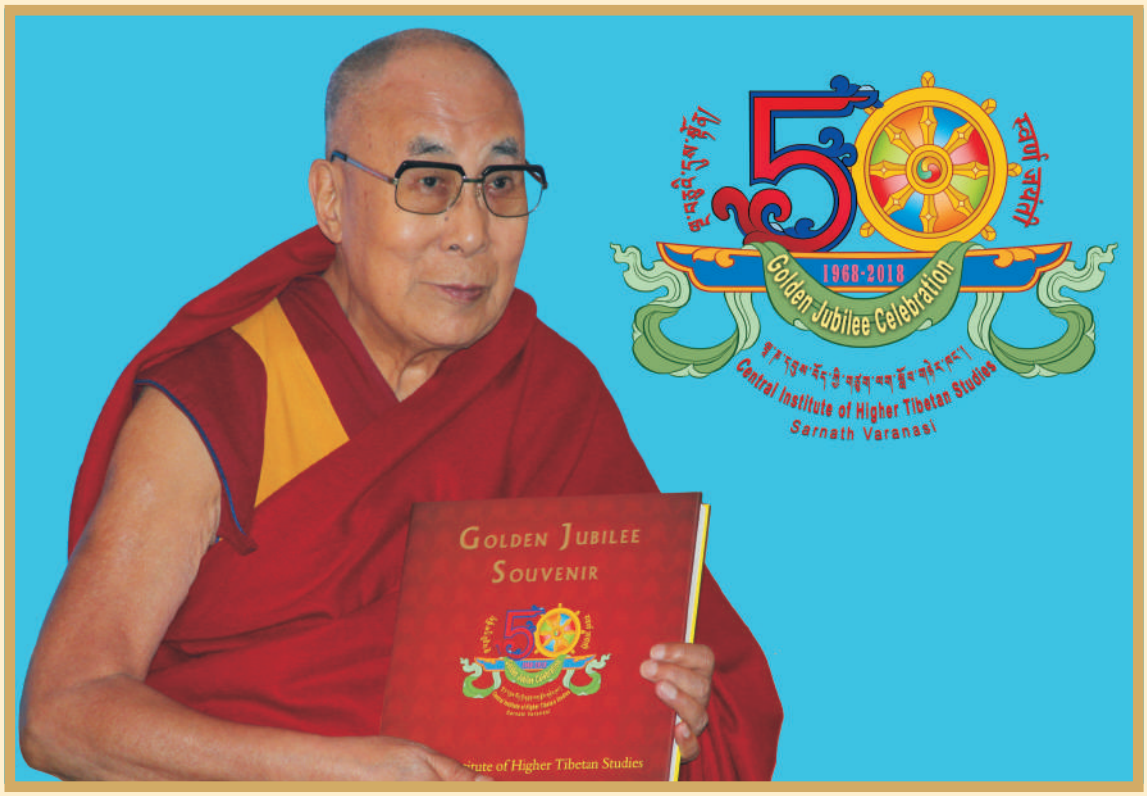

སྤྱིར་བཏང་སྐད་ཡིག་འཇུག་མངའ་སོར་ཤེས་ན་དབལ་དང་རྒྱན་ཡིན་པས། དཔའ་བསུ་ཡོད། འོན་ཀྱང་སོ་སོའི་སྐད་ཡིག་བདག་མེད་ལེད་མེད་བསྐྱར་འཛོག་གིས་གཞན་གྱི་སྐད་ཡིག་ལ་སྤྱབས་བཅོལ་ཏེ་འཐམས་ནས་བསྡད་པ་ཡིན་ན། ནམ་ཞིག་བོད་མིའི་སྐད་ཡིག་ཙ་བརླག་ཏུ་འགྲོ་ཉེ་ཡོད། བོད་པའི་སྐད་ཡིག་ལ་བོད་མི་རང་ཉིད་ཀྱིས་མཐོང་དང་ཆ་འཛོག་མ་བྱས་ན། གཞན་གྱིས་བྱེད་མཁན་ཡོང་གི་མ་རེད། བོད་མིས་བོད་ཀྱི་སྐད་ཡིག་མཁེས་ནང་ཚ་པོ་དང་ཐབས་སྐྱོ་པོ་རེད།

གོང་ས་མཆོག་ནས།

परमपावन दलाई लामा जी ने मातृ भाषा के संदर्भ में सही ही कहा है—

“सामान्यत: विविध प्रकार की अनेक भाषाओं का ज्ञान ऐश्वर्य एवं अलंकार स्वरूप है, जो स्वागत योग्य है। फिर भी अपनी भाषा का संरक्षण एवं प्रयोग न कर उसे छोड़ देना और दूसरों की भाषा को ग्रहण करके उसे पकड़ कर रखने से अपनी मातृ भाषा के समूल नष्ट हो जाने का खतरा रहता है। सभी को अपनी भाषा का सम्मान स्वयं करना चाहिए, क्योंकि दूसरे नहीं करेंगे और जो स्वयं की भाषा नहीं जानता है, यह उसके लिए शर्म एवं दु:ख की बात है।”

बोधिप्रभ

प्रवेशांक

सम्पादक

डॉ. हिमांशु पाण्डेय

राजभाषा कार्यान्वयन समिति

केन्द्रीय उच्च तिब्बती शिक्षा संस्थान

सारनाथ, वाराणसी

बुद्धाब्द - 2565 ख्रीस्ताब्द - 2021

प्रधान सम्पादक : डॉ. रामसुधार सिंह

सम्पादन समिति

प्रो. बाबूराम त्रिपाठी
श्री भगवान पाण्डेय
श्री राजेश कुमार मिश्र
डॉ. ज्योति सिंह
प्रो. धर्मदत्त चतुर्वेदी
डॉ. रमेशचन्द्र नेगी
श्री टी. आर. शाशनी
डॉ. अनुराग त्रिपाठी
डॉ. सुशील कुमार सिंह

अंक-1, 400 प्रतियाँ, 2021

मूल्य : रु० 50.00

© केन्द्रीय उच्च तिब्बती शिक्षा संस्थान, सारनाथ, वाराणसी, 2021

प्रकाशक :
केन्द्रीय उच्च तिब्बती शिक्षा संस्थान, सारनाथ, वाराणसी-221007

मुद्रक :
सत्तनाम प्रिन्टर्स, पाण्डेयपुर, वाराणसी

जी. किशन रेड्डी
संस्कृति, पर्यटन एवं
उत्तर पूर्वी क्षेत्र विकास मंत्री
भारत सरकार

सत्यमेव जयते

G. Kishan Reddy
Minister of Culture, Tourism and
Development of North Eastern Region
Government of India

26 JUL 2021

संदेश

मुझे यह जानकार प्रसन्नता की अनुभूति हो रही है कि केन्द्रीय उच्च तिब्बती शिक्षा-संस्थान, सारनाथ, वाराणसी बौद्ध, तिब्बती एवं हिमालयी विद्या के अध्ययन-अध्यापन के साथ-साथ अन्य विषयों की शिक्षा उच्च स्तर पर प्रदान करती आ रही है। यह संस्थान प्राचीन भारत की तक्षशिला, विक्रमशिला जैसी तत्कालीन विश्वप्रसिद्ध अनेक शिक्षण संस्थाओं की धरोहर है।

संस्थान द्वारा राजभाषा के प्रयोग को गति देने के लिए और प्रेरक वातावरण तैयार करने के लिए हिंदी की वार्षिक गृह पत्रिका 'बोधिप्रभ' का प्रकाशन कार्य अत्यंत सराहनीय है। यह हर्ष का विषय है कि इस पत्रिका में भाषा, धर्म आदि विषयों के साथ-साथ कहानी, कविता, लेख आदि का प्रकाशन किया जाएगा।

मैं संस्थान द्वारा वार्षिक गृह पत्रिका 'बोधिप्रभ' के सफल प्रकाशन की शुभकामनाएं देता हूँ और संस्थान के उज्ज्वल भविष्य की कामना करता हूँ।

(जी. किशन रेड्डी)

संस्कृति मंत्रालय : कमरा नं. 501, 'सी' विंग, शास्त्री भवन, नई दिल्ली-110001, दूरभाष : 91-11-23386765, 23381539, फैक्स : 91-11-23385115
Ministry of Culture : Room No. 501, 'C' Wing, Shastri Bhavan, New Delhi-110001, Tel : 91-11-23386765, 23381539 Fax : 91-11-23385115
E-mail : office-hcm@gov.in

राघवेन्द्र सिंह, भा.प्र.से.
सचिव
Raghvendra Singh, IAS
Secretary

भारत सरकार
संस्कृति मंत्रालय
नई दिल्ली–110001
GOVERNMENT OF INDIA
MINISTRY OF CULTURE
NEW DELHI-110 001

14 सितंबर 2021

शुभकामना संदेश

मेरे लिए यह प्रसन्नता का विषय है कि भगवान बुद्ध के प्रथम धर्मचक्र प्रवर्तन स्थल के नाम से विख्यात सारनाथ स्थित तिब्बती और बौद्ध धर्म दर्शन के अध्ययन-अध्यापन में संलग्न केंद्रीय उच्च तिब्बती शिक्षा संस्थान के राजभाषा विभाग की तरफ से बोधिप्रभ पत्रिका का प्रकाशन होने जा रहा है।

राजभाषा एवं राष्ट्रभाषा किसी भी देश की वाणी होती है। हिंदी पूरे राष्ट्र के गौरव एवं उसकी अस्मिता की प्रतीक है। यह संस्थान तक्षशिला, विक्रमशिला और नालन्दा जैसे विश्वविद्यालयों के ज्ञान को संरक्षित करने के साथ-साथ राजभाषा हिंदी के माध्यम से उसे जन-जन तक पँहुचाने में सक्रिय है। इस तरह यहां हिंदी की क्षमताओं का पूर्ण उपयोग करते हुए हिंदी अनुकूल वातावरण का सृजन करने का प्रयास किया जाता है।

मुझे विश्वास है कि यह पत्रिका हिंदी के माध्यम से न सिर्फ तिब्बती और बौद्ध धर्म दर्शन के निहितार्थों को सामान्य जन तक पँहुचाने में सफल होगी, अपितु राजभाषा के सांविधिक प्रावधानों के अनुपालन के संबंध में संस्थान के विभिन्न विभागों को गति प्रदान करने में भी महत्वपूर्ण भूमिका निभाएगी।

मैं अपनी शुभकामनाओं के साथ भविष्य में "बोधिप्रभ" पत्रिका के उत्तरोत्तर प्रगति की कामना करता हूँ।

राघवेन्द्र सिंह

(राघवेंद्र सिंह)

सूचना का अधिकार
Room No. 502, 'C' Wing, Shastri Bhawan, Dr. Rajendra Prasad Road, New Delhi-110 001
Phone : +91-11-23381040, 23386995, E-mail : secy-culture@nic.in

प्रो. गेशे ङवङ् समतेन
पूर्व कुलपति
केन्द्रीय उच्च तिब्बती शिक्षा संस्थान
सारनाथ, वाराणसी

संदेश

हिन्दी भारत की राष्ट्रभाषा है, जनभाषा है। संविधान में इसे राजभाषा का दर्जा दिया गया है। हम केन्द्रीय उच्च तिब्बती शिक्षा संस्थान में राजभाषा के रूप में हिन्दी के अधिक से अधिक प्रयोग के प्रति प्रतिबद्ध और प्रयासरत रहे हैं। इस दिशा में हम निरन्तर अग्रसर हैं। इस संस्थान के द्वारा दशकों से कई क्षेत्रों में हिन्दी भाषा में कार्य होता रहा है। प्राचीन नालन्दा की परम्परा के पंचमहाविद्या एवं पंचलघु विद्या विषयक जो ग्रन्थ पूर्णतः लुप्त हो गये हैं, उन्हें संस्कृत भाषा में पुनरुद्धार करने का कार्य चल रहा है। उन्हीं ग्रन्थों को सामान्य जन को उपलब्ध कराने की दृष्टि से हिन्दी भाषा में अनुवाद भी किया जा रहा है। इतना ही नहीं, तिब्बती विद्वानों के द्वारा रचित अनेक ग्रन्थों का अनुवाद भी हिन्दी भाषा में होता रहा है। हिन्दी में अनुवादित ग्रन्थों की संख्या 200 के लगभग है। इन महत्त्वपूर्ण ग्रन्थों को संस्कृत में लाना जहाँ शास्त्रीय एवं सांस्कृतिक दृष्टि से महत्त्वपूर्ण है, वहीं इनका जनभाषा हिन्दी में प्रकाशित होना जनसमूह के लिए अत्यन्त लाभदायक होता है।

आज मुझे अत्यन्त प्रसन्नता हो रही है कि राजभाषा के कार्यान्वयन एवं व्यापक स्तर पर प्रचार-प्रसार के उद्देश्य से 'बोधिप्रभ' का प्रकाशन प्रारंभ किया जा रहा है और इसमें छात्रों, कर्मचारियों के साथ प्रतिष्ठित विद्वानों के आलेख भी संगृहीत किये हैं। पत्रिका किसी संस्थान के विचारों एवं मूल्यों को लोगों तक पहुँचाने का सशक्त माध्यम हुआ करती है। मुझे विश्वास है कि इस पत्रिका के माध्यम से प्रेरित होकर लोग अपने कार्यालयी कार्य अधिक से अधिक हिन्दी भाषा में करेंगे। मैं इस शुभ कार्य हेतु सम्पादक मण्डल को अपनी शुभकामनाएँ देता हूँ।

प्रो. गेशे ङवङ् समतेन

प्रो. वङ्छुक दोर्जे नेगी
कुलपति
Prof. Wangchuk Dorjee Negi
Vice Chancellor

केन्द्रीय उच्च तिब्बती शिक्षा संस्थान
सारनाथ, वाराणसी
Central Institute of Higher Tibetan Studies
Sarnath, Varanasi

संरक्षक की कलम से

मुझे यह जानकर अपार हर्ष का अनुभव हो रहा है कि संस्थान की राजभाषा की वार्षिक गृह पत्रिका "बोधिप्रभ" का प्रकाशन शुरू किया जा रहा है।

हमारे देश की सामासिक संस्कृति, कला एवं राजनय के प्रचार-प्रसार में हमारी भाषाओं ने महती भूमिका निभाई है। आज वैश्विक स्तर पर हिन्दी का विस्तार हो रहा है। इसे जन-जन से लेकर विश्व के कोने-कोने में पहुँचाने में हिंदी सेवी, हिंदी प्रेमी एवं स्वयंसेवी संस्थाएँ सतत् प्रयासरत हैं एवं हिन्दी विश्व स्तर पर सम्मानजनक स्थान प्राप्त कर चुकी है।

हमारे संविधान में अनुच्छेद 120, 210 एवं 343 से 351 तक राजभाषा नीति-नियमों के संबंध में उल्लेख है और हम अपने सांविधिक दायित्वों को पूरा करने की तरफ अग्रसर भी हैं।

राजभाषा के प्रयोग को गति देने एवं प्रेरक वातावरण उत्पन्न करने में हिंदी पत्रिकाओं की भूमिका महत्त्वपूर्ण होती है। पत्रिकाओं के प्रकाशन से एक तरफ जहाँ रचनात्मक एवं सृजनात्मक प्रतिभा को निखरने का अवसर मिलता है, वहीं हिंदी के प्रयोग के प्रति रुचि भी बढ़ती है। जहाँ तक मेरा मानना है कि हिंदी का प्रयोग राष्ट्र की सेवा है और राष्ट्र की सेवा एक पुनीत कार्य है।

मैं पत्रिका के प्रकाशन एवं संपादन से प्रत्यक्ष एवं परोक्ष रूप से जुड़े विद्वानों, अधिकारियों एवं कर्मचारियों को बधाई देता हूँ और पत्रिका के सफल प्रकाशन की शुभकामना करता हूँ।

प्रो. वङ्छुक दोर्जे नेगी

डॉ. हिमांशु पाण्डेय
कुलसचिव
Dr. Himanshu Pandey
Registrar

केन्द्रीय उच्च तिब्बती शिक्षा संस्थान
सारनाथ, वाराणसी
Central Institute of Higher Tibetan Studies
Sarnath, Varanasi

सम्पादकीय

प्रिय पाठको !

मुझे संस्थान की राजभाषा की वार्षिक गृह पत्रिका का प्रवेशांक आपके हाथों सौंपते हुए अपार प्रसन्नता की अनुभूति हो रही है। संस्थान अपने अध्ययन-अध्यापन के साथ ही राजभाषा संबंधी सांविधिक दायित्वों को पूरा करने के संबंध में भी जागरूक है। संस्थान में अन्य शैक्षणिक गतिविधियों के साथ ही हिन्दी कार्यशालाओं एवं बैठकों का नियमित आयोजन किया जाता है। राजभाषा सप्ताह एवं राजभाषा के प्रयोग से संबंधित अन्य गतिविधियों के उत्साहपूर्वक आयोजन के साथ कर्मचारियों को राजभाषा संबंधी विभिन्न पुरस्कार भी प्रदान किए जाते हैं।

किसी भाषा का महत्व और अस्तित्व उसकी उपयोगिता-व्यावहारिकता पर आधारित होती है। भाषाई विविधता और बहुआयामी संस्कृति के बावजूद हिंदी भाषा ने देश के स्वतंत्रता आंदोलन से लेकर अब तक पूरे देश को एकता के सूत्र में पिरोकर अनेकता में एकता को समृद्ध किया है। यह देश के अधिकांश लोगों द्वारा बोली और समझी जाती है।

इसी क्रम में संस्थान द्वारा राजभाषा को गति देने के लिए हिंदी की वार्षिक पत्रिका "बोधिप्रभ" का प्रकाशन शुरू किया गया है। निश्चित ही पत्रिका के प्रकाशन से कर्मचारियों को अपनी साहित्यिक प्रतिभा उजागर करने का अवसर प्राप्त हुआ । हिंदी में लेखन के कारण राजभाषा के प्रति लगाव बढ़ेगा, ऐसा मेरा विश्वास है।

संस्था के उद्देश्य एवं गतिविधियों से परिचित कराने के उद्देश्य से पत्रिका में राजभाषा के अतिरिक्त कतिपय मात्र लेखों को भी शामिल किया गया है।

"बोधिप्रभ" पत्रिका के लिए लेख देने वाले रचनाकारों के प्रति आभार व्यक्त करने के साथ आशा करता हूँ कि पत्रिका को उपयोगी एवं सार्थक बनाने में आपका महत्त्वपूर्ण सुझाव प्राप्त होता रहेगा।

हिमांशु

डॉ. हिमांशु पाण्डेय

विषयानुक्रमणिका

क्रम सं.	शीर्षक	रचनाकार	पृ.सं.
1.	केन्द्रीय उच्च तिब्बती शिक्षा संस्थान का संक्षिप्त परिचय व विशेषतायें	प्रो. धर्मदत्त चतुर्वेदी	1-11
2.	नई राष्ट्रीय शिक्षा नीति और भाषा का प्रश्न	डॉ. रामसुधार सिंह	12-16
3.	हिंदी भाषा : कुछ महत्वपूर्ण प्रश्न	डॉ. रामजी सिंह	17-18
4.	राष्ट्रीय आन्दोलन के दौरान हिन्दी का राष्ट्रभाषा के रूप में विकास	डॉ. अनुराग त्रिपाठी	19-22
5.	प्रशासनिक हिंदी और टिप्पण लेखन	सुनिल कुमार	23-26
6.	राजभाषा हिन्दी और उसकी स्थिति	भगवान पाण्डेय	27-33
7.	राजभाषा हिंदी : उपलब्धि और समस्याएं	डॉ. सुशील कुमार सिंह	34-36
8.	राजभाषा का महत्व	जे. पी. विश्वकर्मा	37-39
9.	देवनागरी लिपि : विश्व की आधुनिकतम लिपि	डॉ. बुद्धिनाथ मिश्र	40-44
10.	हिन्दी-प्रयोग में अशुद्धियाँ : सम्मान-भाव की कमी या सहज अनावधानता	ओम धीरज	45-52
11.	राजभाषा हिन्दी बनाम जनभाषा हिन्दी	प्रकाश उदय	53-61
12.	राष्ट्र की दशा और दिशा में राष्ट्रीय शिक्षा नीति : 2020 का योगदान : कुछ सवाल	डॉ. बृजेश शर्मा	62-67
13.	राजभाषा हिंदी की चुनौतियां	डॉ. संजय कुमार सिंह	68-70
14.	बौद्ध दर्शन पर एक विहंगम दृष्टि	प्रो. वङ्छुक दोर्जे नेगी	71-84
15.	भारत एवं तिब्बत : एक सांस्कृतिक पर्यालोचन	प्रो. रामशंकर त्रिपाठी	85-89
16.	त्रिकाय का संक्षिप्त परिचय	डॉ. रमेशचन्द्र नेगी	90-98
17.	तथागत की सद्धर्म-देशना और उसकी प्रासंगिकता	टी. आर. शाशनी	99-108
18.	भोट नरेश जङछुब-होद् (=बोधिप्रभ) का बौद्धधर्म की पुनर्स्थापना में योगदान	डॉ. गेशे लोब्संग दोर्जे	109-116
19.	परम पावन दलाई लामा जी का वैज्ञानिक अध्यात्म दर्शन	डॉ. हरिकेश सिंह	117-120
20.	बुद्ध के विचार एवं सम्प्रेषण-युक्तियाँ	दीपंकर	121-125
21.	बौद्ध दर्शन का ऐतिहासिक महत्त्व	डॉ. रवि रंजन द्विवेदी	126-131
22.	सत्य जीवन के प्रति महात्मा बुद्ध का दृष्टिकोण	एम.एल. सिंह	132-137
23.	महावंस - तीन संगीतियाँ	विरेन्द्र कुमार	138-140

24.	बौद्ध संगीति पर थेरवादी और महायानी का मतभेद	सिद्धार्थ नेगी	141-151
25.	अवच्छिन्नवाद और प्रतिबिम्बवाद	डॉ. योगेश कुमार त्रिपाठी	152-156
26.	जीवन जीने की कला – एक सोच	डॉ. आर. के. उपाध्याय	157-160
27.	तिब्बत की आजादी का प्रश्न	डॉ. नीरजा माधव	161-165
28.	कोरोना, अब तुम्हारे दिन पूरे हो चले हैं	प्रो. बाबूराम त्रिपाठी	166-169
29.	संस्थान का हरित परिसर	राजेश कुमार मिश्र	170-174
30.	परोपकार – सबसे बड़ा धर्म एक संस्मरण	प्रमोद सिंह	175-177
31.	नेपाल में वज्राचार्य अभिषेक की परम्परा एवं पूजा पद्धति	डॉ. विजयराज वज्राचार्य	178-185
32.	सोवा-रिग्पा का संक्षिप्त परिचय	डॉ. अरुण कुमार राय	186-190
33.	हिमाचल की मंदिर स्थापत्य परम्परा	डॉ. शुचिता शर्मा	191-195
34.	रंगभूमि का सूरदास	डॉ. ज्योति सिंह	196-198
35.	लॉकडाउन में सीता	डॉ. महेश शर्मा	199-203
36.	ज्योतिष : मानव जीवन का प्रमुख विज्ञान	डॉ. उमाशंकर शर्मा	204-206
37.	प्राचीन भारतीय संस्कृति और सभ्यता का आधुनिक युग में अभाव एवं अमानवीय कृत्यों का प्रभाव	एस. पी. सिंह	207-209
38.	घरौंदा	डॉ. कविता त्रिपाठी	210-212
39.	वर्तमान समाज में भारतीय संस्कृति का स्वरूप	अंकिता सिंह	213-216
40.	तुम किसके वोटर हो भाई?	राजेश कुमार मिश्र	217
41.	कविता	डाक्टर अरुण कुमार राय	218
42.	कविता	विश्वप्रकाश त्रिपाठी	219-220
43.	कविता	टाशी छेरिङ्	221
44.	हिन्दी राजभाषा	कुन्गा	222-223
45.	राजभाषा सप्ताह समारोह-2021		224-228
46.	राजभाषा नियम, 1976 - राजभाषा (संघ के शासकीय प्रयोजनों के लिए प्रयोग) नियम, 1976 (यथा संशोधित, 1987, 2007 तथा 2011)		229-236
47.	राजभाषा अधिनियम, 1963 (यथासंशोधित, 1967)		237-241
48.	संवैधानिक प्रावधान - भारत के संविधान में राजभाषा से संबंधित भाग-17		242-247
49.	माननीय गृहमंत्री जी का हिंदी-दिवस सन्देश-2021		248-250

•

केन्द्रीय उच्च तिब्बती शिक्षा संस्थान : संक्षिप्त परिचय व विशेषतायें

—प्रो. धर्मदत्त चतुर्वेदी—

भगवान् बुद्ध और उनके करुणामूलक सद्धर्म ने त्याग, सन्तोष, परसेवा काय, वाक् तथा चित्त की शुद्धि, सहिष्णुता, संवेदनशीलता व अहिंसा, मैत्री, समता, क्षमा तथा प्रज्ञा के बल पर विश्व-समाज में अद्वितीय प्रतिष्ठा प्राप्त की है। इस धर्म का प्रमुख कार्य बहुजन हित तथा बहुजन सुख है। इसीलिए बोधिसत्त्व रात-दिन पुण्यार्जन में लगा रहता है और दीन-दुःखी जनों का कष्ट दूर करता रहता है। वह समतामूलक समाज की स्थापना करता है। इस धर्म में अन्धविश्वास, कपोल कल्पना, राग, क्लेश, हिंसा, असमानता व निर्दयता का लेशतः स्थान नहीं है। इसीलिए विश्व के बृहत्तर समाज में यह लोकप्रिय हुआ और विश्वसमाज ने इसे गले लगाया।

बुद्ध, बौद्धधर्म व दर्शन की शिक्षा व उसके अध्ययन, संरक्षण व विस्तार में तिब्बत देश के बौद्ध अध्येता आचार्यों का योगदान अत्यन्त अतुलनीय है। धार्मिक एवं शैक्षणिक दृष्टि से प्रायः आठवीं सदी से तिब्बत भारत का अभिन्न मित्र रहा है। तिब्बती राजा स्रोङ्चन गोनपो ने थोनमी सम्भोट आदि को भारत में उस दौरान नालन्दा, तक्षशिला आदि बौद्धविहारों में अध्ययन के लिये भेजा, जहाँ तिब्बती अध्येताओं ने भाषा, व्याकरण, बौद्ध धर्मदर्शन, तन्त्र, काव्य आदि विद्याओं का श्रद्धापूर्वक अध्ययन किया। पुनः तिब्बती वर्णमाला तथा उसके व्याकरण का स्वरूप विकसित हुआ। तिब्बत में अनेक बौद्ध शिक्षाकेन्द्र सम्ये आदि मठ-विहार स्थापित किये गये। आचार्य पद्मसम्भव तथा शान्तरक्षित जैसे उद्भट बौद्ध मनीषियों को ससम्मान भारत से तिब्बत में आमन्त्रित किया गया, जहाँ बौद्ध धर्म दर्शन, तन्त्र, व्याकरण, काव्य वाङ्मय का टीका सहित संस्कृत से तिब्बती में अनुवाद भारतीय पण्डित तथा तिब्बती अनुवादक आचार्यों ने दीर्घकाल तक किया। इसे दो भागों में विभाजित किया गया। बुद्ध सूत्र-वचनों को कन्ग्युर तथा शास्त्र व टीका आदि को तन्ग्युर नाम दिया गया। भारत में मुस्लिम व अंग्रेज-शासन होने से उस दौरान संस्कृत के मूल बौद्ध ग्रन्थ लुप्त हो गये। 1959 ई. में तिब्बत पर चीनी आधिपत्य हो जाने से परमपावन दलाईलामा जी अपने अनुयायी भक्तों के साथ भारत में शरणार्थी के रूप में आ गये। तभी तिब्बती बौद्ध धर्म साहित्य के संरक्षण व विकास के लिए तत्कालीन प्रथम प्रधानमन्त्री पण्डित जवाहर लाल नेहरू जी के साथ परमपावन जी का विचार-विमर्श हुआ। लुप्त भारतीय बौद्ध वाङ्मय का तिब्बती अनुवाद के आधार पर संस्कृत पुनरुद्धार इत्यादि महत्त्वपूर्ण कार्य, तिब्बती व हिमालयीन बौद्ध संस्कृति शिक्षा के संरक्षण हेतु सारनाथ, वाराणसी में भारत सरकार के अधीन केन्द्रीय उच्च तिब्बती शिक्षा संस्थान की स्थापना 1967 ई. में की गई, जिसमें स्नातकोत्तर अध्यापन व शोध की व्यवस्था की गई। आरम्भ में कुछ वर्षों तक इस संस्था की

परीक्षा प्रणाली सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय, वाराणसी के अधीन रही। पुनः 1988 में भारत सरकार ने इसे मानित विश्वविद्यालय का दर्जा प्रदान कर दिया, जिससे पूर्वमध्यमा से आचार्य कक्षा पर्यन्त समस्त परीक्षा कार्यों का दायित्व संस्थान के हाथ में आ गया। यह संस्थान इस समय संस्कृति मन्त्रालय, भारत सरकार, शास्त्री भवन, नई दिल्ली के अधीन कार्यरत है, जो केन्द्रीय रूप में पूर्णतया अनुदान इसे प्रदान करता है। इसका सुदीर्घ संचालन पूर्व प्राचार्य/निदेशक तिब्बती भिक्षु प्रो. समदोङ् रिनपोछे ने किया। इस समय 2001 से अब तक पद्मश्री गेशे प्रो. एन. समतेन ने इसके कुलपति पद का सुचारु दायित्व निर्वाह किया।

संस्थान में शैक्षणिक अतीश भवन, सम्भोट भवन तथा सुविस्तृत एवं आधुनिक तकनीकी सुविधाओं से सुदृढ़ शान्तरक्षित ग्रन्थालय है। इसके अलावा प्रशासनिक भवन, कुलपति कार्यालय, अनेक छात्रावास तथा शोध विभाग के साथ सोवा-रिग्पा चिकित्सा भवन, निदान केन्द्र, प्रायोगिक चिकित्सा केन्द्र, कुलपति आवास, प्राध्यापक आचार्य एवं अधिकारी, कर्मचारी आवास, खेलकूद-क्षेत्र इत्यादि सुदृढ़ भव्य एवं सुरक्षित भवन हैं।

शैक्षणिक संकाय व विभाग

तिब्बत में प्रचलित प्राचीन 5 महाविद्याओं के नाम पर वर्तमान में 5 संकाय सेवारत हैं। 1. हेतु एवं अध्यात्म विद्या संकाय, 2. शब्दविद्या संकाय, 3. आधुनिक विद्या संकाय, 4. चिकित्सा विद्या (सोवा रिग्पा) संकाय, 5. शिल्पविद्या संकाय। इनका विस्तृत विवरण निम्न है-

1. हेतु एवं अध्यात्म विद्या संकाय

इस संकाय के अन्तर्गत दो विभाग कार्यरत हैं- 1. मूलशास्त्र विभाग, 2. सम्प्रदाय शास्त्र विभाग। मूलशास्त्र बौद्ध अभिधर्म, न्याय प्रमाण, मनोविज्ञान, माध्यमिक मत इत्यादि संस्कृत मूलक बौद्ध शास्त्रों का छात्रों को अध्ययन कराता है। इसमें नागार्जुन के शिष्यों व महासिद्धों के विचारों के पुनरुद्धार एवं उनके युगानुरूप समायोजन पर भी बल दिया जाता है। मूलशास्त्र है तिब्बती में अनूदित संस्कृत बौद्ध धर्म व दर्शन। इसमें स्नातकोत्तर अध्ययन, एम.फिल. व पी-एच.डी. शोधकार्य किया जाता है। इसका अध्ययन पूर्वमध्यमा से लेकर आचार्य पर्यन्त अनिवार्य रूप में निर्धारित है। इसमें शिक्षण व परीक्षा का माध्यम तिब्बती भाषा ही है। स्नातकोत्तर में मूल प्रश्नपत्रों के अतिरिक्त एक प्रश्नपत्र कण्ठस्थ वाक् परीक्षा का भी निर्धारित है। इसमें आचार्य, सह आचार्य तथा सहायक आचार्य पदों पर नियुक्त होकर आचार्यगण शिक्षा प्रदान कर रहे हैं। इसका एक विभागाध्यक्ष भी होता है।

सम्प्रदाय शास्त्र विभाग के अन्तर्गत तिब्बत के प्राचीन परम्परागत सम्प्रदायों में कर्ग्युद, साक्या, गेलुक्, ञिङ्मा तथा बोन सम्प्रदाय के शास्त्रों, टीकाओं की शिक्षा तिब्बती भाषा के माध्यम से दी जाती है। इसमें तिब्बती विद्वानों के द्वारा बुद्धवचन तथा भारतीय आचार्यों के ग्रन्थों

पर प्रणीत व्याख्या टीका तथा कुछ अन्य दार्शनिक ग्रन्थों का शिक्षण किया जाता है। इसमें भी स्नातकोत्तर अध्ययन एवं शोधकार्य छात्र करते हैं। इन सभी सम्प्रदायों में से एक ही सम्प्रदाय लेकर छात्र अध्ययन करते हैं। इस विभाग में प्रत्येक सम्प्रदाय के पृथक्-पृथक् आचार्य, सह आचार्य तथा सहायक आचार्य एवं विभागाध्यक्ष विद्वान् सेवारत हैं। ये दोनों विभाग सामयिक शोध संगोष्ठियों, कार्यशालाओं के आयोजन के साथ ग्रन्थ रचना भी करते हैं। विदेशों से आने वाले छात्रों को भी बौद्ध वाङ्मय की शिक्षा देते हैं तथा उनके शोध कार्य में सहायता भी करते हैं।

2. शब्दविद्या संकाय

इस संकाय के अन्तर्गत मुख्य रूप से तीन विभाग कार्यरत हैं- 1. संस्कृत विभाग, 2. तिब्बती भाषा एवं साहित्य विभाग, 3. प्राच्य एवं आधुनिक भाषा विभाग। इसके अतिरिक्त शिक्षाशात्र विभाग (बी-एड.) को भी बहुत समय बाद इसी के साथ रखा गया है।

यह संकाय विभिन्न भाषाओं के व उनके साहित्य से सम्बन्ध रखता है। जिसमें प्रथमतया **(क) संस्कृत विभाग** का विवरण निम्न है- इसके अन्तर्गत संस्कृत भाषा, व्याकरण, काव्य, नाटक, नीति, छन्द, कोश, अलंकार, रस, उपन्यास, सांख्य, वेदान्त, न्याय आदि संस्कृत बौद्ध दर्शन एवं बौद्धकाव्य इत्यादि विषय निहित हैं। तिब्बती आचार्यों ने पाणिनि व्याकरण से सम्बद्ध रामचन्द्र प्रणीत प्रक्रिया कौमुदी का अनुवाद तिब्बती में बहुत पहले कर दिया था। स्नातक कक्षा पर्यन्त संस्कृत अध्ययन को अनिवार्यता दी गई है। मध्यमा, स्नातक तथा स्नातकोत्तर कक्षा में वैकल्पिक विषय-खवर्ग के रूप में भी संस्कृत अध्ययन प्रचलित है। शास्त्री तथा आचार्य की परीक्षा में प्रश्नोत्तर माध्यम संस्कृत है।

तिब्बती तन्युर से संस्कृत का गहरा सम्बन्ध है। संस्कृत में निहित प्राचीन भारतीय बौद्ध वाङ्मय तथा उसकी टीकाओं, व्याकरण, काव्य इत्यादि विषयों का तिब्बती में अनुवाद पुराकाल में किया गया है, जिसका पुनरुद्धार अनुवाद-समीक्षा आदि कार्य के सम्पादन के लिये बौद्ध विद्वानों को संस्कृत का ज्ञान अपरिहार्य है। तिब्बती व हिमालयी छात्र-छात्रायें अरुणाचल, सिक्किम, असम, बंगाल, लेह, दक्षिण भारत इत्यादि भिन्न-भिन्न क्षेत्रों के विद्यार्थी पुनरुद्धार करने हेतु संस्कृत का अध्ययन अनिवार्य तौर पर करते हैं। मुख्य परीक्षा में संस्कृत को द्वितीय प्रश्नपत्र के रूप में रखा गया है। संस्थानीय छात्र संस्कृत विभाग से संस्कृत में दक्षता प्राप्त कर पुनः पुनरुद्धार, अनुवाद, कोश आदि अनुभागों में विभिन्न पदों पर नियुक्त होकर सेवारत हैं और वे कठोर परिश्रम एवं सत्प्रयास से प्राचीन बौद्ध ग्रन्थों का पुनरुद्धार तथा अनुवाद कार्य कर रहे हैं, जो अभी तक के प्रकाशित ग्रन्थों का अध्ययन करने से विदित होता है। विभाग प्रत्येक अधिसत्र में यथासमय संस्कृत प्रशिक्षण शिविर, संस्कृत नाटकों का मंचन, शोध संगोष्ठियों, भाषण तथा निबन्ध प्रतियोगिताओं का आयोजन कर छात्रों को लाभान्वित करता रहता है। विभाग में आचार्य, सह-आचार्य, सहायक आचार्य व विभागाध्यक्ष कार्यरत हैं।

(ख) तिब्बती भाषा एवं साहित्य विभाग

इस विभाग में तिब्बती भाषा, व्याकरण-सूत्र, काव्य, रस, अलंकार, गद्य, पद्य व नाटक तथा कथा का अध्ययन किया जाता है। तिब्बती भाषा की परीक्षा अनिवार्यतः प्रथम प्रश्नपत्र के रूप में निर्धारित है। अभी दो वर्ष पूर्व से स्नातकोत्तर अध्ययन की शुरुआत भी इस विभाग ने कर दी है। इसमें दण्डी कृत काव्यादर्श, हर्षदेव कृत नागानन्द नाटक तथा साहित्यदर्पण जैसे अनेक संस्कृत काव्य शास्त्रीय ग्रन्थों को पाठ्यक्रम में रखा गया है। एम.फिल. तथा पी-एच.डी. शोध अध्ययन भी इसके द्वारा संचालित है। विभागाध्यक्ष आचार्य, सहाचार्य व सहायक आचार्य इसमें नियुक्त हैं। तिब्बती भाषा में दक्षता प्राप्त कर छात्र बौद्ध धर्म दर्शन के अध्ययन में समर्थ होते हैं।

(ग) प्राच्य एवं आधुनिक भाषा विभाग

इस विभाग के अन्तर्गत विद्यार्थी स्नातक पर्यन्त अनिवार्य रूप से हिन्दी या अंग्रेजी भाषा का अध्ययन करते हैं। मुख्य परीक्षा में इसका प्रश्नपत्र तृतीय होता है। इसमें हिन्दी तथा अंग्रेजी में से किसी एक ही भाषा का छात्र अध्ययन कर सकते हैं। हिन्दी भाषा में गद्य, पद्य, उपन्यास, नाटक, कथा तथा निबन्ध विधाओं के प्रशस्त ग्रन्थों को पाठ्यक्रम में रखा गया है। इसी के साथ हिन्दी व्याकरण की शिक्षा भी दी जाती है। स्नातकोत्तर में भी इसे एक वैकल्पिक प्रश्नपत्र के रूप में पढ़ा जाता है। साहित्य शास्त्र के सिद्धान्त व समीक्षा साहित्य को भी स्थान दिया गया है। इसी तरह अंग्रेजी भाषा में प्राचीन से अर्वाचीन साहित्य तक की शिक्षा दी जाती है। साथ ही भाषा का इतिहास व उसके विविध आयामों को सम्मिलित किया गया है। यथासमय विशिष्ट विद्वानों के व्याख्यान, शोध संगोष्ठियाँ, कार्यशालाएँ तथा वाद-विवाद प्रतियोगितायें भी आयोजित की जाती हैं।

इसके अलावा पालि अध्ययन भी इसी विभाग में समाहित है। पालि थेरवाद का अध्ययन वैकल्पिक खवर्ग के एक प्रश्नपत्र के तौर पर स्नातकोत्तर पर्यन्त होता है। पालि भाषा संबन्धी प्रशिक्षण कार्यशाला, विशिष्ट व्याख्यान भी इसमें आयोजित किये जाते हैं।

(घ) शिक्षाशास्त्र विभाग

इस विभाग का संचालन तिब्बती प्रशासन विभाग धर्मशाला (हिमाचल प्रदेश) द्वारा होता है। इसमें छात्रों के लिये बी.ए.बी.एड., बी.एस.सी बी.एड. ये चार पाठ्यक्रम संचालित होते हैं। इसमें बी.एड. कोर्स द्विवर्षीय है तथा चार साल का एकीकृत बी.ए.बी.एड. इनोवेटिव कोर्स संचालित होता है। इसमें अनुशासन, प्रशासन, स्वास्थ्य, मनोविज्ञान, तर्कशास्त्र, मन विज्ञान, बौद्धदर्शन, तत्त्वमीमांसा, तान्त्रिक विज्ञान तथा संज्ञानात्मक विज्ञान की शिक्षा दी जाती है। अपने निर्धारित उद्देश्यों की पूर्ति के लिये विभागीय सदस्य यथाकालिक व्याख्यान, वेबिनार इत्यादि कार्यक्रमों का कुशल संचालन करते हैं। इस विभाग में निदेशक (सी.टी.ई.) कार्यालय सहायक, पुस्तकालयाध्यक्ष तथा अनेक सहायक आचार्य नियुक्त होकर अपनी श्लाघनीय सेवा दे रहे हैं।

उपाधि प्राप्त अनेक छात्र केन्द्रीय तिब्बती विद्यालय, मठ तथा बौद्ध विहारों में रोजगार प्राप्त कर शिक्षक पद पर कार्यरत हैं।

3. आधुनिक विद्या संकाय

इस संकाय के अन्तर्गत अभी एकमात्र समाजशास्त्र विभाग संचालित होता है। इसमें तिब्बती इतिहास, एशिया इतिहास, राजनीति विज्ञान तथा अर्थशास्त्र विषय का अध्ययन वैकल्पिक 'खवर्ग' एक प्रश्नपत्र के रूप में स्नातक कक्षा पर्यन्त किया जाता है। छात्र इन उपर्युक्त विषयों में से किसी एक को ही अध्ययन का विषय बना सकते हैं। इन सभी विषयों का बौद्ध साहित्य से गहरा सम्बन्ध है। सामाजिक, राजनीतिक व ऐतिहासिक विचारों के साथ छात्र बौद्ध धर्म दर्शन के विचारों की तुलना करते हैं। इस विभाग ने अभी तत्काल तिब्बती इतिहास में स्नातकोत्तर अध्ययन, एम.फिल. तथा पी-एच.डी. कोर्स भी प्रारम्भ कर दिया है। सभी विभागीय सदस्य छात्रों के ज्ञान व अनुभव के विस्तार के लिए यथाकालिक शैक्षणिक भ्रमण, संगोष्ठी, कार्यशाला व विशिष्ट व्याख्यान का आयोजन भी करते रहते हैं। विभाग में विभागाध्यक्ष तथा संकायाध्यक्ष के अतिरिक्त आचार्य, सह-आचार्य तथा सहायक आचार्य परिश्रमपूर्वक दृढ़ निष्ठा के साथ अपने दायित्व का भलीभाँति निर्वाह करते हैं।

4. शिल्पविद्या संकाय

इसके अन्तर्गत तिब्बती चित्रकला तथा तिब्बती काष्ठकला ये दो विभाग कार्यरत हैं। इसमें तिब्बती पट चित्र निर्माण के साथ बौद्ध दर्शन चित्रकला-इतिहास, हस्तकला दर्शन एवं इतिहास, भारतीय पाश्चात्य कला इतिहास व सौन्दर्य शास्त्र, तिब्बती भाषा एवं साहित्य, हिन्दी तथा अंग्रेजी की शिक्षा दी जाती है। प्राचीन विद्वानों से प्राप्त चित्रलेखन कला की धरोहर तथा उसकी तकनीक सिखायी जाती है। तिब्बती काष्ठ कला के साथ बौद्ध दर्शन आदि का ज्ञान प्रदान करने के लिये यह विभाग कृत संकल्प है। चित्रलेखन में प्रयुक्त उपकरण आदि को सूक्ष्म पद्धति से सिखाया जाता है। विभाग काष्ठ पर कप-प्लेट, चम्मच आदि भोजनपात्र तथा सजावट की विविध वस्तुओं को तैयार कर उच्च कार्यक्रमों के आयोजन पर उनकी प्रदर्शनी भी लगाता है।

इसके अतिरिक्त छात्रों के लिये शैक्षणिक भ्रमण, प्रासंगिक गोष्ठियों, विशिष्ट व्याख्यान आदि का आयोजन भी कराता है।

सोवा-रिग्पा एवं भोट ज्योतिष संकाय

इस संकाय के अन्तर्गत (क) सोवा-रिग्पा (ख) भोट ज्योतिष ये दो विभाग सेवारत हैं। प्रथम का परिचय निम्न है-

सोवा-रिग्पा विभाग

प्राचीन तिब्बती स्वास्थ्य रक्षा की परम्परा के संरक्षण एवं संवर्धन के लिये 1993 ई. में इस संकाय की स्थापना की गई। तिब्बती चिकित्सा पद्धति का संरक्षण संवर्धन व जनसामान्य एवं

विपुल समाज को स्वास्थ्य सेवायें प्रदान करना संकाय का लक्ष्य है। इसमें स्नातकोत्तर (एम.डी. आयुर्वेदाचार्य) अध्ययन की व्यवस्था की गई है। इसके अतिरिक्त पी-एच.डी., एम.फिल. आदि शोधकार्य भी संचालित हैं। इस संकाय के वाग्भट्ट-पुस्तकालय में 130 खण्डों में तिब्बत में मुद्रित व प्रकाशित दुर्लभ तिब्बती चिकित्सा की पाण्डुलिपियाँ खरीदी गयीं।

संकाय में फार्माकोपिया इकाई के तहत पारम्परिक औषधि की पहचान, शुद्धता व प्रभावकारिता साबित की जाती है। इस समय औषधकोश ग्रन्थ भी तैयार किया जा रहा है, वहीं चरकसंहिता का संस्कृत से तिब्बती में अनुवाद भी चल रहा है। औषधि के निर्माण का तरीका भी सिखाया जाता है। हिमालयीन क्षेत्र से दवा खरीदी जाती है।

निदान केन्द्र में चिकित्सकों के द्वारा मरीजों के विभिन्न रोगों का निदान किया जाता है। जिसमें छात्र प्रति सप्ताह वहाँ जाकर उसका व्यावहारिक ज्ञान लेते हैं, साथ ही हीमेटोलॉजी यूरिन सुटम स्टूल आदि के ज्ञानवर्धन हेतु कक्षायें चलाई जाती हैं। प्रायोगिक पद्धति से छात्रों को हर स्तर पर शिक्षा दी जाती है। दूरदराज से मरीज विभिन्न रोगों का उपचार कराकर औषधि ले जाते हैं। चिकित्सा खंड थेरेपी विंग चिकित्सा सुविधा भी जुलाई 2019 से युथोक सोवा-रिग्पा चिकित्सा खंड में 10 शय्या अन्तरंग चिकित्सा-उपचार की व्यवस्था की गई है। बी.एस.आर.एम.एस. के छात्रों को चिकित्सकीय प्रभाव व शिक्षण प्रक्रिया भी बताई जाती है। अस्थि, मालिश, हड्डी जोड़ने सम्बन्धी कार्यों का प्रशिक्षण छात्रों को दिया जाता है।

संकाय की विशिष्ट योजनाओं में तवांग परियोजना मेन्मेग्याला, पट्टा आधारित भूमि पर वृक्षारोपण, वृक्षारोपण भूमि योजना, औषधि-पौधों की प्रदर्शनी इत्यादि योजनायें प्रगति पथ पर अग्रसर हैं। अभी भारत सरकार द्वारा प्रदत्त विपुल अनुदान से नवीन भव्य चिकित्सालय का निर्माण चल रहा है जिसमें 4 चिकित्सा भवन तैयार हो चुके हैं। शेष निर्माण कार्य भी द्रुतगति से चल रहा है।

संकाय में आचार्य, सह आचार्य, सहायक आचार्य पदों पर तिब्बती विद्वान् शिक्षण कार्यरत हैं। ये विद्वान् नाड़ी देखकर रोग के लक्षण को जानकर तदनुरूप निदान भी करते हैं। इसी के साथ औषधालय सहायक, अतिथि प्राध्यापक, चिकित्सक, फर्मकोपिया सहायक, औषधि वितरक, नर्स आदि अत्यन्त निष्ठापूर्वक जनसेवा में तत्पर होकर कुशलता के साथ समर्पित हैं।

(ख) भोट-ज्योतिष विभाग

परम्परागत प्राचीन भोट ज्योतिष की शिक्षा इस विभाग के द्वारा स्नातकोत्तर पर्यन्त दी जाती है। इसके द्वारा भारतीय पञ्चाङ्ग की तरह भोट वार्षिक पञ्चाङ्ग भी प्रकाशित किया जाता है। इसके अतिरिक्त शोधकार्य भी संचालित है। भारतीय ज्योतिष में प्रारम्भिक शीघ्रबोध, होड़ाचक्र, मुहूर्त चिन्तामणि आदि शास्त्रों की संस्कृत में शिक्षा भी दी जाती है। विभाग देशी-विदेशी ज्योतिष विद्वानों के विशिष्ट व्याख्यान, संगोष्ठियों तथा प्रायोगिक कार्यशालाओं का

आयोजन भी यथासमय करता रहता है । विभाग में विभागाध्यक्ष के अलावा आचार्य, सह आचार्य तथा सहायक आचार्य शिक्षण कार्य करते हैं।

शोध विभाग

संस्थानीय शोध विभाग संस्थान के निर्धारित प्रमुख लक्ष्य व संकल्प से साक्षात् सम्बन्ध रखता है। यह संस्थान की कार्य योजना में अत्यन्त महत्त्वपूर्ण भूमिका प्रस्तुत करता है। तिब्बती भाषा में प्राचीन भारतीय संस्कृत बौद्ध शास्त्रों की परम्परा का भरपूर स्वागत हुआ । तिब्बती आचार्यों ने अनुवाद के माध्यम से भारतीय ज्ञान-परम्परा को सुरक्षित बनाये रखा, ऐसा जानकर किस भारतीय अध्येता मनीषी का हृदय प्रसन्न नहीं होगा ? मूल संस्कृत बौद्ध शास्त्रों के लुप्त हो जाने से यह विभाग संस्थान के आरम्भकाल से ही तिब्बती अनुवाद के आधार पर संस्कृत में उनका पुनरुद्धार-अनुवाद आदि कार्य में दत्तचित्त है। यह कार्य संस्कृत पण्डितों की सहायता से किया जाता है।

इस विभाग के चार उपविभाग हैं। पुनरुद्धार, अनुवाद, दुर्लभ बौद्ध ग्रन्थ शोध विभाग तथा कोश विभाग। इनमें प्रत्येक का विवरण निम्न है-

(क) पुनरुद्धार विभाग

इस विभाग ने नागार्जुन आर्यदेव, शान्तरक्षित, कमलशील, अतीश, दीपंकर इत्यादि अनेक आचार्यों के शास्त्रों का संस्कृत पुनरुद्धार, समीक्षा तथा हिन्दी अनुवाद के साथ सम्पन्न कर तथा उसे प्रकाशित कराकर अत्यन्त महत्त्वपूर्ण कार्य किया है । पुराकाल में तिब्बती में अनूदित हर प्राचीन पोथी में एक या दो भारतीय पण्डितों तथा तिब्बती अनुवादक का नाम अन्त में उल्लिखित मिलता है। इस शोध कार्य से संस्कृत मूल प्राप्त हो जाने से शोधार्थियों का निश्चित रूप से उपकार हुआ तथा विदेशी बौद्ध अध्येताओं के शोध-अध्ययन में यह कार्य सहायक सिद्ध हुआ । तिब्बत में अनुवाद कार्य कई शताब्दियों तक चलता रहा, जिसे तिब्बती शरणार्थी एवं राहुल सांकृत्यायन जैसे विद्वान् जिस किसी तरह से पराधीन तिब्बत से भारत लाने में सफल रहे। इस विभाग में कार्यरत विद्वान् संस्कृत विभाग से संस्कृत का अध्ययन कर व उसमें दक्षता प्राप्त कर इस उत्कृष्ट महत्त्वपूर्ण पुनरुद्धार कार्य को संस्कृत मनीषी के पर्यवेक्षण में करते हैं। अपने कार्य में महत्त्वपूर्ण दिशा-निर्देश की प्राप्ति के लिये यथाकालिक संगोष्ठियों, अनुवाद-कार्यशालाओं का आयोजन भी करते रहते हैं। विभाग में अनेक आचार्य, सह आचार्य, सहायक आचार्य तथा शोध सहायक अपना उत्कृष्ट योगदान दे रहे हैं।

(ख) अनुवाद विभाग

शोध कार्य में अनुवाद प्रक्रिया का महत्त्वपूर्ण योगदान है । किसी भी शास्त्र का अनेक भाषाओं में अनुवाद किये जाने से उसकी उपयोगिता बढ़ जाती है। मान लीजिए किसी विदेशी या

स्वदेशी विद्वान् की अंग्रेजी में अधिक दक्षता हो और वह बौद्ध दर्शन विज्ञ भी हो, तब उस बौद्ध दर्शन के ग्रन्थ का विस्तृत परिचय, अनुवाद सन्दर्भ संकेत अंग्रेजी में उपलब्ध होने से उसे अध्ययन में सहायता मिलेगी। इसी तरह जो संस्कृत में विशेष दक्ष नहीं है, तब उसे हिन्दी अनुवाद से उस संस्कृत मूलक ग्रन्थ को समझने में आसानी होगी। इस तरह अनुवादक को तीन-चार सामयिक भाषाओं का ज्ञान अपरिहार्य है।

यह विभाग बुद्धवचन के साथ उन पर प्राचीन भारतीय बौद्ध आचार्यों की टीकाओं तथा भोट आचार्यों द्वारा विरचित ग्रन्थों के अनुवाद एवं भोटपाठ का सम्पादन सहित शोधपरक सन्दर्भों, समीक्षात्मक भूमिका-लेखन द्वारा ग्रन्थों के सतत प्रकाशन में तत्पर है। ऐसे अनेक प्राचीन बौद्ध वाङ्मय के महत्त्वपूर्ण ग्रन्थों का पुनरुद्धार कर, संस्कृत में अनुवाद कर समीक्षा के साथ उन्हें प्रकाशित किया गया है। कुछ ग्रन्थों के अनुवाद तिब्बती, संस्कृत, हिन्दी व अंग्रेजी- इन चार भाषाओं तक में किये गये। अनूदित बौद्ध धर्म व दर्शन के प्रकाशित ग्रन्थों से निश्चित रूप से बौद्ध दार्शनिक प्रक्रिया को समझने तथा गुत्थियों को सुलझाने में अनुसन्धाताओं को पर्याप्त सहायता मिली है। समस्त अनूदित बौद्ध वाङ्मय को संस्थान के प्रकाशन विभाग से प्राप्त किया जा सकता है। विभाग यथासमय अनुवाद की समस्याओं पर विचार-विमर्श एवं बहुमूल्य सुझाव प्राप्त करने हेतु कार्यशालाओं, संगोष्ठियों व विशिष्ट व्याख्यानों का आयोजन करता है। विभाग में आचार्य, सह आचार्य, सहायक आचार्य तथा शोध सहायक अपने दायित्व का परिश्रम पूर्वक निर्वाह करते हैं।

(ग) दुर्लभ बौद्ध ग्रन्थ शोध विभाग

यह संस्थानीय शोध योजना का एक महत्त्वपूर्ण विभाग है। विलुप्त बौद्ध वाङ्मय में विशेषकर बौद्धतन्त्र साहित्य का पुनरुद्धार, सम्पादन व प्रकाशन तथा शोध परिकल्पना के दायित्व का भलीभाँति निर्वाह करता है। विभाग 1985 ई. से सेवारत होकर नेपाल एवं तिब्बत की पाण्डुलिपियों का नेवारी, शारदा, ब्राह्मी इत्यादि लिपियों से देवनागरी में अवतरण कर विशुद्ध सम्पादन करने हेतु पूर्णतया समर्पित है। विमलप्रभा टीका, हेवज्रतन्त्रम्, पञ्चविंशतिसाहस्रिका प्रज्ञापारमिता, सम्पादन के सिद्धान्त और उपादान, भारतीय तन्त्रशास्त्र, गुह्यादि अष्टसिद्धि, ज्ञानोदयतन्त्रम्, दुर्लभ बौद्धग्रन्थ परिचय, बौद्धतन्त्रकोश, लुप्त बौद्ध वचन संग्रह, वसन्ततिलका, डाकिनीजालसंवररहस्य, कृष्णयमारितन्त्रम्, महामायातन्त्रम्, सूत्र-तन्त्रोद्धवाः कतिपयधारणी-मन्त्राः, अध्यात्मसारशतकम्, योगिनीसंचारतन्त्रम्, चर्यामेलापकप्रदीपम्, तत्त्वज्ञानसंसिद्धिः, कुरुकुल्लाकल्पः, चक्रसंवरतन्त्रम्, बौद्धस्तोत्ररत्नाकरः, कालचक्रतन्त्रलघुग्रन्थसंग्रहः इत्यादि ऐसे ही अनेक दुर्लभ तन्त्र ग्रन्थों का प्रकाशन कर इस विभाग ने लुप्त व अप्रकाशित प्राचीन ज्ञान-सम्पदा को उपलब्ध कराकर बौद्ध जगत् का विशेष उपकार किया है। विभाग षाण्मासिकी शोध पत्रिका 'धीः' का यथासमय प्रकाशन कर कार्तिक पूर्णिमा तथा वैशाख पूर्णिमा को उसका

लोकार्पण भी कराता है। अभी तक इसके 60 अंक प्रकाशित किये जा चुके हैं। इसमें अप्रकाशित दुर्लभ लघु ग्रन्थों, तन्त्र विषयक निबन्धों का प्रकाशन होता है। देश-विदेशीय विद्वानों के पास यह पत्रिका प्रेषित की जाती है। विभाग का एक अपना समृद्ध पुस्तकालय भी है। इसमें प्राचीन लिपि विशेषज्ञ आचार्य, सह आचार्य, सहायक आचार्य व शोध सहायक गहन परिश्रम कर यथासमय अपनी कार्ययोजना को सफल बनाते हैं।

4. कोश विभाग

किसी भी ग्रन्थ के पाठ निर्धारण, शब्द समस्या तथा समीक्षा आदि कार्यों की सम्पन्नता के लिये शब्द समुद्र कोश की शरण में जाना ही पड़ता है। जहाँ एक अर्थ के प्रतिपादक सभी शब्द व उनके सन्दर्भ एक ही स्थान पर मिल जाते हैं। कोश संरचना वस्तुतः एक कठिन कार्य है। व्याकरण उपमान, आप्त वचन इत्यादि के अलावा कोश में भी शक्ति ग्रहण की क्षमता होती है। बौद्ध धर्म दर्शन जहाँ अगाध है, विपुल ग्रन्थराशि है। उसके आधार पर सन्दर्भों के अन्वेषण में बड़ा आयास करना होता है। इसी दृष्टि से संस्थान ने शोधकार्य में कोश योजना बनाकर कोश विभाग की स्थापना की। इस योजना में विभाग द्वारा भोट संस्कृत कोश के अभी तक 16 भाग प्रकाशित किये जा चुके हैं। उपलब्ध भोट संस्कृत कोशों में यह कोश एक अत्यन्त प्रशस्त व समृद्ध कोश है। भोट संस्कृत सन्दर्भ निर्देशिका कोश भी प्रकाशित हो चुका है। भोट संस्कृत छात्रोपयोगी कोश, भोट संस्कृत आयुर्विज्ञान कोश, ज्योतिष कोश, अभिधर्मकोश इत्यादि की रचना का कार्य अन्तिम चरण में है। वहीं भावी योजनाओं में बौद्धन्यास कोश, तिब्बती हिन्दी कोश, ग्रन्थकोश, क्रियाकोश इत्यादि भी कार्ययोजना के तहत प्रस्तावित हैं।

विभाग यथासमय कोश के विख्यात सुधीजनों को आमन्त्रित कर संगोष्ठियों तथा कार्यशालाओं का आयोजन करता है। इसमें भी आचार्य, सह आचार्य, सहायक आचार्य तथा शोध सहायक विद्वान् दत्तचित्त होकर अपने दायित्व का यथावत् निर्वाह करते हैं।

5. तिब्बती साहित्य केन्द्र

तिब्बती साहित्य के बृहत् इतिहास को तैयार करने के लिये तिब्बती साहित्य केन्द्र की स्थापना की गई। तिब्बती में संस्कृत से अनूदित ग्रन्थों की संख्या प्रायः 5 हजार तथा तिब्बती विद्वानों की विविध विषयों पर एक लाख से अधिक रचनायें उपलब्ध हैं। इस केन्द्र में एक वरिष्ठ अनुसन्धाता ने बृहत् तिब्बती साहित्य का इतिहास के प्रारूप की चार भागों में रचना कर दी है, जो सम्पन्न होने की स्थिति में है। इसके अतिरिक्त केन्द्र ने अनुवाद व व्याख्या ग्रन्थ के रूप में अन्य साहित्यिक रचनायें भी प्रकाशित की हैं।

शान्तरक्षित ग्रन्थागार

बौद्ध दर्शन शास्त्र के विश्वविख्यात प्राचीनतम नालन्दा आचार्य शान्तरक्षित (8वीं सदी) के नाम पर ग्रन्थालय का नामकरण किया गया है। यह ग्रन्थालय विविध प्राचीनतम पोथियों का

संग्रहालय है। इसमें सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण एवं उपादेय कंग्युर-तंग्युर सेक्सन है। इसमें पत्राकार रूप में काष्ठ फलक तथा पीले रेशमी वस्त्र से लपेट कर पुनः- भोट आचार्यों द्वारा संस्कृत से तिब्बती में अनूदित प्राचीन पाण्डुलिपियों का संग्रह है। व्याकरण, काव्य, बौद्ध धर्म-दर्शन, तन्त्र तथा टीकाओं पर हजारों हस्तलेख हैं। तिब्बती आचार्यों द्वारा रचित स्वतन्त्र ग्रन्थ भी हस्तलेख के रूप में सुरक्षित हैं। इसमें बुद्धवचन को कंग्युर तथा उन पर टीका व्याख्याओं को तंग्युर के रूप में समझना चाहिए। यह कार्य भारतीय आचार्यों तथा भोट आचार्यों के परस्पर सहयोग से हजारों वर्षों की अवधि में बौद्ध संस्कृत ग्रन्थ राशि का तिब्बती में लगातार अनुवाद किया गया था। इसे तिब्बती विद्वान् प्रमुख चोमदेन रिगपई राल्द्री के रूप में जाना जाता है। इसके पश्चात् इस कार्य को सूचीबद्ध कर विशाल कंग्युर व तंग्युर में वर्गीकृत किया गया। 1608 ई. में प्रथम भाग लिथांग कंग्युर प्रस्तुत किया गया था। इसके पश्चात् अनेक संस्करणों में देगे, तंग्युर, ल्हासा कंग्युर, देले थेलपा कंग्युर, नार्थन कंग्युर, लद्दाख तोग कंग्युर, उर्ग कंग्युर इत्यादि में किया गया। इसमें पारम्परिक तिब्बती चिकित्सा, कला (थंका पेन्टिंग) भी संग्रह का एक भाग है। 2019-20 ई. तक विभागीय कोष में 38,997 व्यक्तिगत किताबें तिब्बती भाषा में विद्यमान हैं। इसमें काष्ठोत्कीर्णित ग्रन्थ भी सुरक्षित हैं।

शान्तरक्षित ग्रन्थालय माइक्रोफिच, माइक्रोफिल्म, आडियो, वीडियो प्रलेख जैसी आधुनिक तकनीकी सुविधाओं से समृद्ध एवं सशक्त है। यह देश विदेशीय अध्येताओं व अनुसन्धाताओं के लिये उपयोगी साबित हो रहा है। इसके अन्तर्गत अवाप्ति, तकनीकी, इनफ्लिब्नेट, सामयिकी पत्र-पत्रिका, सन्दर्भ, तिब्बती कंग्युर तंग्युर, आदान-प्रदान, संचयागार, मल्टीमीडिया तथा कम्प्यूटर आदि अनुभाग कार्यरत हैं। इसमें पुस्तकालयाध्यक्ष, सहायक पुस्तकालयाध्यक्ष, तकनीकी अधिकारी, प्रलेखन अधिकारी, प्रोफेसनल असिस्टेन्ट, सेमी-प्रोफेसनल असिस्टेंट तथा अनेक संविदा नियुक्ति पर कर्मचारी सेवारत हैं।

प्रशासन विभाग

इसमें प्रधान कार्यपालक अधिकारी कुलपति होते हैं। उसके बाद कुलसचिव, उपकुलसचिव, सहायक कुलसचिव जैसे महत्त्वपूर्ण पदों पर अधिकारी कार्यरत हैं। इसमें सोसाइटी समिति, प्रबन्ध परिषद्, विद्वत्परिषद्, वित्त समिति, योजना एवं प्रबोधक परिषत् तथा प्रकाशन समिति गठित हैं जो पृथक्-पृथक् निर्धारित कार्य-योजनाओं पर यथासमय आहूत की जाती हैं। इसके अन्तर्गत प्रशासन प्रथम, प्रशासन द्वितीय, परीक्षा, अनुरक्षण, वित्त तथा प्रकाशन प्रमुख अनुभाग संस्थानीय प्रबन्धन का दायित्व निर्वाह करते हैं। शैक्षणिक कर्मचारियों की पत्रावलियों का रखरखाव, नियुक्ति प्रक्रिया, प्रशासनिक कार्य, परीक्षा सम्बन्धी गोपनीय कार्य, परिसर की स्वच्छता, बागवानी, भण्डारण वस्तु सुरक्षा, वित्तलेखा बजट, बिलों का भुगतान व वेतन सम्बन्धी कार्य समस्त शैक्षणिक व गैर-शैक्षणिक विभागों के लिये आवश्यक संसाधनों को

प्रदान करना, भवन-भूमि की सुरक्षा व निर्माण इत्यादि अनेक महत्त्वपूर्ण कार्यों को सभी सदस्य नियमित रूप से सम्पादित करते हैं। इसमें निजी सचिव कुलपति, निजी सचिव कुलसचिव, अनुभाग अधिकारी, वरिष्ठ सहायक, वरिष्ठ लिपिक, स्टेनो टाइपिस्ट, इलेक्ट्रीशियन, बहु उद्देश्यीय कर्मचारी, कम्प्यूटर टाइपिंग-इन्स्ट्रक्टर, माली, सफाई, कर्मचारी तथा सेवा-निवृत्त कर्मचारी कार्यरत हैं।

प्रकाशन अनुभाग

शोध पुनरुद्धार, अनुवाद, कोश, दुर्लभ बौद्ध ग्रन्थ तथा शिक्षण विभागीय सदस्यों द्वारा सम्पादित व व्याख्यायित ग्रन्थराशि तथा बाहरी विद्वानों के द्वारा भी रचित बौद्ध अध्ययन ग्रन्थों को विशुद्ध रूप में प्रकाशित करना एवं उनके क्रय-विक्रय की व्यवस्था करना अनुभाग का प्रमुख कार्य है।

पुस्तकों के प्रकाशन, प्रूफ-संशोधन, रखरखाव के दायित्व का निर्वाह नियुक्त कर्मचारी दृढ़ता से करते हैं। भारत के अलावा विदेशों से भी मांगपत्र पर पत्रालय सेवा के द्वारा ग्रन्थों का सम्प्रेषण यथासमय किया जाता है। संस्थानीय एवं बाह्य लेखकों की पाण्डुलिपियों का गठित समिति परीक्षण भी करती है, वहीं सुन्दर आकर्षक प्रकाशन पर भी ध्यान देती है । यही विभाग सारस्वत सामग्री को शोधार्थियों तथा उत्कृष्ट विद्वानों तक पहुँचाकर वाङ्मय का विकास करता है। आस्ट्रिया, टोकियो, जापान, वेरलाग जर्मनी, हैम्वर्ग जर्मनी, चेन्नई, नई दिल्ली, लेह लद्दाख, देहरादून, मैसूर इत्यादि स्थानों पर पुस्तक-विनिमय का कार्य कर अपने प्रकाशन के स्तर को उच्चीकृत किया जाता है।

प्रोफेसर
के.उ.ति.शि.सं., सारनाथ, वाराणसी
मो.नं.-9451570835

नई राष्ट्रीय शिक्षा नीति और भाषा का प्रश्न

—डॉ. रामसुधार सिंह—

देश की शिक्षा-व्यवस्था और भाषा के सवाल को लेकर कुछ कहने-सुनने के पहले मेरे मन में दो सन्दर्भ अनायास उभर आते हैं। पहला गाँधी जी के एक वक्तव्य से सम्बन्धित है। देश को आजादी मिलने के बाद बी.बी.सी. के एक साक्षात्कार में गाँधी जी ने कहा था कि 'पूरी दुनिया को बता दो कि गाँधी अंग्रेजी नहीं जानता है।' दूसरा सन्दर्भ कवि केदारनाथ सिंह की एक कविता का है, जिसमें अपनी माँ की अस्थियों को गंगा में समर्पित करते कवि कहता है कि 'गंगा मेरी माँ का ख्याल रखना, क्योंकि इसे भोजपुरी छोड़ कोई दूसरी भाषा नहीं आती।' ये दोनों प्रसंग अबूझे चाहे जितने हों, किन्तु इनका मन्तव्य हर कोई समझ सकता है।

मनुष्य के जीवन की सबसे बुनियादी आवश्यकता शिक्षा है। शिक्षा वह विधा है जिसके द्वारा मानव का निर्माण होता है। इसके साथ ही शिक्षा का उपयोग मानव कल्याण एवं राष्ट्र के विकास के लिए होता है। शिक्षा का उद्देश्य केवल पाठ्य शिक्षा नहीं, बल्कि मनुष्य के जीवन का सर्वांगीण विकास है। एक पूर्ण एवं परिपक्व मनुष्य का निर्माण शिक्षा के माध्यम से ही हो सकता है। नई शिक्षा के प्रारूप में यह उल्लिखित है कि शिक्षा वह उचित माध्यम है, जिससे देश की समृद्ध प्रतिभा और संसाधनों का सर्वोत्तम विकास और संवर्द्धन व्यक्ति, समाज, राष्ट्र और विश्व की भलाई के लिए किया जा सकता है। यही कारण है कि आजकल मानव को श्रम न मानकर एक पूँजी माना गया है तथा मानव पूँजी निवेश का सर्वोत्तम विकल्प है। विश्व के सभी विकसित देश आजकल वृद्धावस्था की समस्या से जूझ रहे हैं। भारत वह भाग्यशाली देश है जहाँ युवकों की संख्या दिन-प्रतिदिन बढ़ रही है। अगले दशक में भारत दुनिया का सबसे युवा जनसंख्या वाला देश होगा। भारत को वैश्विक ताकत बनाने के लिए यह आवश्यक है कि देश में शिक्षा उद्देश्यपूर्ण हो। पूर्व राष्ट्रपति डॉ. ए.पी.जे. अब्दुल कलाम का कथन है कि- "यदि शिक्षा उद्देश्यपूर्ण हो तो सृजन प्रस्फुटित होता है। जब सृजन प्रस्फुटित होगा तो ज्ञान पूर्णरूप से प्रकाशित होगा और जब ज्ञान पूर्णरूप से प्रकाशित होगा तो जीवन अलंकृत हो जायेगा।"

प्राचीन भारत में शिक्षा का लक्ष्य बहुत ही विशाल था। हमारा देश इसी शिक्षा के बल पर कभी विश्व का मार्गदर्शक रहा है। एक समय था जब विश्व के श्रेष्ठ विचारक, वैज्ञानिक, ज्योतिषशास्त्री और गणितज्ञ अर्थात् जीवन के सभी क्षेत्रों में विश्व के श्रेष्ठ मनीषी हमारे देश में विद्यमान थे। तक्षशिला, नालन्दा, विक्रमशिला जैसे विश्वस्तरीय विश्वविद्यालयों ने अध्ययन के विविध क्षेत्रों में शिक्षण और शोध के ऊँचे प्रतिमान स्थापित किये थे। महान् वैज्ञानिक अल्बर्ट आइन्सटीन ने तो यहाँ तक कहा है कि "हम भारतीयों के ऋणी हैं जिन्होंने हमें गणना करना

सिखाया, जिसके बिना कोई भी अनुसंधान संभव नहीं था ।" किन्तु समय के परिवर्तन तथा लगातार बाहरी आक्रमणों के परिणामस्वरूप हमारी प्राचीन शिक्षा-व्यवस्था पूरी तरह तहस-नहस हो गई। देश की आजादी के बाद शिक्षा के क्षेत्र में आमूल-चूल परिवर्तन को लेकर बातें तो बहुत की गईं, किन्तु राजनीतिक इच्छाशक्ति की कमी के कारण वास्तविक धरातल पर कुछ विशेष परिवर्तन नहीं हो सका। देश की पहली राष्ट्रीय शिक्षा नीति 1968 में कोठारी आयोग 1966 के प्रारूप पर बनी थी। इस शिक्षानीति में मुख्य रूप से 14 साल के सभी बच्चों के लिए शिक्षा को अनिवार्य बनाने पर जोर था। दूसरी शिक्षा नीति जो 1986 में बनी, जिसे 1992 में संशोधित किया गया। इसका मुख्य उद्देश्य विभिन्न सामूहिक समूहों के बीच विषमता को घटाना था। भारतीय शिक्षा-व्यवस्था में अपने पुराने गौरव को प्राप्त करने और समाज में सतत प्रगति तथा देश के आर्थिक विकास के लक्ष्य को प्राप्त करने के उद्देश्य से नई शिक्षा नीति 2020 का प्रस्ताव प्रस्तुत किया गया। 34 वर्ष बाद आयी इस नीति का प्रारूप जाने-माने वैज्ञानिक और इसरो के पूर्व प्रमुख डॉ. के. कस्तूरीरंगन के नेतृत्व में तैयार किया गया है। इस नीति के प्रथम प्रारूप को देश के सभी स्तर ब्लाक, जिला, प्रान्त के शिक्षा से सम्बन्धित व्यक्तियों और शिक्षण संस्थाओं से विस्तृत संवाद कर उनसे महत्त्वपूर्ण सुझाव प्राप्त कर नीति को अन्तिम रूप दिया गया है। यह नीति वर्तमान की 10+2 वाली स्कूली व्यवस्था को 3-18 वर्ष के सभी बच्चों के लिए पाठ्यचर्या और शिक्षण के आधार पर 5+3+3+4 की नई व्यवस्था में पुनर्गठित करने की बात करती है जिससे 3-8, 8-11, 11-14 और 14 से 18 उम्र के विभिन्न पड़ावों पर विद्यार्थियों के विकास की अलग-अलग अवस्थाओं के अनुसार उनकी रुचियों और विकास की जरूरतों पर समुचित ध्यान दिया जा सके।

नई शिक्षा नीति के अन्य पक्षों को छोड़ मैं शिक्षा के माध्यम को लेकर इस नीति में दिये गये प्रस्तावों पर विचार करना चाहूँगा। नीति के विभिन्न आयामों में शिक्षा का माध्यम एक महत्त्वपूर्ण आयाम है। किसी प्रकार का ज्ञान भाषा के माध्यम से ही बालक तक पहुँचता है। अपनी मातृभाषा में बच्चा स्वाभाविक रूप में जल्दी सीखता है। हमारे देश में इस शिक्षा नीति के पूर्व इसे गंभीरता से नहीं लिया गया था। पूर्व की शिक्षा नीतियों में त्रिभाषा सूत्र का मुख्य उद्देश्य भारतीय भाषाओं को बढ़ावा देना था, किन्तु सम्यक् तैयारी के अभाव एवं क्रियान्वयन में शिथिलता के कारण यह सूत्र असफल हो गया। वर्तमान शिक्षानीति में बार-बार भाषा पर जोर देना इसकी गंभीरता को ध्वनित करता है। अपनी मातृभाषा में प्राथमिक शिक्षा प्राप्त कर विद्यार्थी रट्टू शिक्षा से मुक्त होगा और उसकी सर्जनात्मक क्षमता का स्वयमेव विकास होगा। किसी देश की शिक्षा का माध्यम एक विदेशी भाषा बनी रहे, इससे बड़ा दुर्भाग्य दूसरा क्या हो सकता है ? एक षड्यन्त्र के तहत यह भ्रम फैलाया गया कि ज्ञान-विज्ञान की भाषा अंग्रेजी ही है और बिना अंग्रेजी पढ़े कोई अच्छी नौकरी नहीं मिल सकती है। इसका परिणाम यह हुआ कि पूरे देश में

गली-गली कान्वेन्ट स्कूल खुल गये और विद्यार्थी न घर का रहा और न घाट का। मौलिकता के अभाव में उसका व्यक्तित्व आधा-अधूरा होकर रह गया।

नई शिक्षा नीति में प्राथमिक स्तर पर विद्यार्थी के संख्यात्मक ज्ञान, वर्ण, रंग तथा तार्किक योग्यता के साथ बहूत्तरीय खेल की गतिविधियों से परिचित कराया जाएगा। अगर संभव हो सके तो कक्षा आठ तक विद्यार्थी के शिक्षा का माध्यम घर की भाषा/मातृभाषा/स्थानीय भाषा/क्षेत्रीय भाषा होगी। इस व्यवस्था से विद्यार्थी जीवनोपयोगी सामाजिकता, नैतिकता और शिष्टाचार आदि को अपनी भाषा और संस्कृति में उपलब्ध कहानियों, नाटकों और विविध कलारूपों के माध्यम से सहजता के साथ ग्रहण कर सकेगा। विषय ज्ञान और बोध के बीच में माध्यम एक बड़ी चुनौती रही है। रटंत विद्या का सहारा लेना विद्यार्थी की विविशता थी। माध्यम की कठिनाई के कारण बहुत से विद्यार्थी बीच में अपनी पढ़ाई को छोड़ने पर मजबूर हो जाते थे। आगे की शिक्षा के लिए भी इस नीति में भारतीय भाषाओं को विशेष महत्त्व प्रदान किया गया है।

प्रारम्भ में मैंने महात्मा गाँधी का एक वक्तव्य उद्धृत किया है। यहाँ आवश्यक है कि भाषा के सम्बन्ध में गाँधी जी के विचारों को थोड़ा विस्तार के साथ समझा जाय। गाँधी जी की मातृभाषा गुजराती थी और उनकी शिक्षा अंग्रेजी माध्यम से हुई थी, किन्तु वे राष्ट्रभाषा के रूप में हिन्दी के प्रबल समर्थक थे। उनका स्पष्ट मानना था कि अंग्रेजी अन्तर्राष्ट्रीय भाषा है, लेकिन वह राष्ट्रभाषा नहीं हो सकती। अगर हिन्दुस्तान को हमें सचमुच एक राष्ट्र बनाना है तो चाहे कोई माने या न माने राष्ट्रभाषा तो हिन्दी ही बन सकती है। सन् 1921 में उड़ीसा की एक सभा में महात्मा गाँधी से प्रश्न किया गया- "आखिर आप अंग्रेजी शिक्षा के विरुद्ध क्यों हैं? अंग्रेजी शिक्षा ने ही तो राजा राममोहन राय, लोकमान्य तिलक और आपको पैदा किया है।" इस पर गाँधी जी ने उत्तर दिया था- "मैं तो कुछ भी नहीं हूँ, पर लोकमान्य तिलक भी जो आज हैं उससे कहीं अधिक बड़े हुए होते यदि उन्हें अंग्रेजी के द्वारा शिक्षा का बोझ न ढोना पड़ता। राजा राममोहन राय और लोकमान्य तिलक, श्री शंकराचार्य, गुरुनानक, गुरु गोविन्द सिंह और कबीरदास के मुकाबले में कहाँ हैं? आज तो सफर के और प्रचार के इतने साधन मौजूद हैं। उन लोगों के समय में तो कुछ भी नहीं था। फिर भी उन्होंने विचारों की दुनिया में कितनी बड़ी क्रान्ति की थी?" महात्मा गाँधी ने साफ-साफ कहा था कि विदेशी भाषा के माध्यम से शिक्षा की हिमायत करने वाले जनता के दुश्मन हैं। उनके अनुसार विदेशी भाषा द्वारा शिक्षा पाने में दिमाग पर जो बोझ पड़ता है, वह असह्य है। यह बोझ हमारे बच्चे उठा तो सकते हैं, लेकिन उसकी कीमत उन्हें चुकानी पड़ती है। वे दूसरा बोझ उठाने के लायक नहीं रह जाते। इससे हमारे स्नातक अधिकतर निकम्मे, कमजोर, निरंकारी, रोगी और कोरे नकलची बन जाते हैं। उनमें खोज की शक्ति, विचार की शक्ति, साहस, धीरज, वीरता, निर्भयता और अन्य गुण बहुत क्षीण हो जाते हैं। गाँधी की इस स्पष्टोक्ति के बाद भी आजादी के बाद शिक्षा का माध्यम अंग्रेजी को बनाये रखना, देश के लिए दुर्भाग्यपूर्ण रहा।

महापण्डित राहुल सांकृत्यायन तो शिक्षा का माध्यम मातृभाषा (बोलियों) को बनाने हिमायती थे। राहुल तब के सोवियत संघ के शिक्षा एवं भाषा सम्बन्धी मॉडल से बहुत अधिक प्रभावित थे। वे उसी के अनुरूप बार-बार बल दे रहे थे कि भारतवासियों में शिक्षा के सार्वजनिक प्रसार के लिए ये मातृभाषायें ही आधार भाषाएँ बनायी जाएँ, क्योंकि 'कोई स्वतन्त्र समझदार जाति पराई भाषा में आज के ज्ञान-विज्ञान को प्राप्त करने की चेष्टा नहीं करेगी'।

भारतीय भाषाओं के विरोध में और अंग्रेजी के पक्ष में एक विचार यह दिया जाता है कि आज अंग्रेजी ज्ञान की और विशेषतः विज्ञान की भाषा है। सौभाग्य से पिछले दो सौ वर्षों से हमारे लिए यह सशक्त भाषा प्राप्त हुई है और वह स्थापित भी हो गई है। इस तर्क का सतहीपन उजागर करने के लिए थोड़ा सोचना जरूरी है। हम स्वीकार करते हैं कि अंग्रेजी ज्ञान-विज्ञान की भाषा है। लेकिन इसका यह मतलब नहीं कि वही एकमात्र ज्ञान-विज्ञान की भाषा है। असल में यह तर्क उन देशों के बाहर कोई स्वीकार नहीं करता जो अंग्रेजों के अधीनस्थ कभी नहीं रहे। चीन और जापान को सारा ज्ञान-विज्ञान अपनी भाषाओं में लाने में कोई कठिनाई नहीं हुई और आज इन देशों की बौद्धिक, यांत्रिक और वैज्ञानिक प्रगति के बारे में कोई प्रश्न नहीं उठाया जाता। यूरोप का कोई देश ऐसा नहीं है जिसने अपनी भाषा को छोड़कर ज्ञान-विज्ञान के लिए अंग्रेजी का सहारा लिया हो।

इन विचारों के परिप्रेक्ष्य में यह स्पष्ट है कि एक विदेशी भाषा को शिक्षा का माध्यम बनाने से राष्ट्र का विकास कभी संभव नहीं है। नई शिक्षा नीति में भाषा अब शिक्षा और शिक्षार्थी के बीच दीवार बनकर नहीं, बल्कि साधक बनकर उपस्थित है। नई राष्ट्रीय शिक्षा नीति ने भारतीय ज्ञान के संरक्षण और अध्ययन के लिए शास्त्रीय भाषाओं, जिसमें कि हमारी ज्ञान-परम्परा संरक्षित है- संस्कृत, तमिल, तेलुगु, मलयालम, कन्नड़, उड़िया, पालि, प्राकृत और फारसी जैसी भाषाओं को भी सम्मानजनक स्थान दिया गया है। नई राष्ट्रीय शिक्षा नीति में इनके भी अध्ययन पर विशेष जोर दिया गया है। इसके अतिरिक्त भाषा के प्रश्न को लचीला बनाते हुए वैश्विक भाषाओं के शिक्षण को भी नीति में समुचित स्थान प्राप्त है।

सैद्धान्तिक रूप में नई शिक्षा नीति अति आदर्श और महत्त्वपूर्ण है किन्तु व्यावहारिक स्तर पर इसके क्रियान्वयन में चुनौतियाँ भी कम नहीं हैं। भारत एक विविधता से भरा हुआ देश है और यह विविधता ही उसका सौन्दर्य भी है। कुछ क्षेत्र ऐसे हैं जहाँ कई भाषाओं को बोलने वाले निवास करते हैं। ऐसे क्षेत्रों में शिक्षण माध्यम का निर्धारण चुनौतीपूर्ण होगा। साथ ही साथ निर्धारित भाषा में पाठ्यक्रम का निर्माण, शिक्षकों की नियुक्ति तथा उनका प्रशिक्षण एक महत्त्वपूर्ण कार्य होगा। तकनीकी स्तर पर भी भाषा को समर्थ बनाना होगा। यदि इन चुनौतियों को हल करने में हम सफल हो जाते हैं तो नई राष्ट्रीय शिक्षा नीति निःसन्देह हमारे लिए उपयोगी सिद्ध होगी और भारत को उसका प्राचीन गौरव पुनः प्रदान करने में सहायक होगी।

आलेख के प्रारंभ में महात्मा गाँधी एवं डॉ. केदारनाथ सिंह के सन्दर्भ का उल्लेख करते हुए मैंने मातृभाषा के महत्त्व को रेखांकित किया था। अब मैं 'मेरा दाग़िस्तान' के लेखक रसूल हमज़ातोव के कथन को उद्धृत करते हुए आलेख को समाप्त करना चाहता हूँ- "जब बाप मरता है तो वह विरासत के रूप में बेटों के लिए घर, खेत, तलवार और पन्दूरा छोड़ता है। लेकिन मरने वाली पीढ़ियाँ आने वाली पीढ़ियों के लिये विरासत के रूप में भाषा छोड़ती हैं। जिसके पास भाषा है, वह अपने लिए घर बना लेगा, खेत जोत लेगा, तलवार बना लेगा, पन्दूरा को सुर में कर लेगा और उसे बजा लेगा। ... भाषा की मातृभूमि की तरह रक्षा करनी चाहिए।"

विजिटिंग प्रोफेसर
के.उ.ति.शि.सं., सारनाथ, वाराणसी
मो.नं.- 9451890720

हिंदी भाषा : कुछ महत्वपूर्ण प्रश्न

—डॉ. रामजी सिंह—

बहुभाषी राष्ट्र भारत को एकता के सूत्र में बाँधने वाली हिंदी हमारी राष्ट्रीय एकता एवं राष्ट्रभक्ति की प्रतीक है। अतः इसकी मर्यादा (अस्मिता) की रक्षा करना सभी भारतीयों का अनिवार्य एवं पावन कर्त्तव्य है। किसी भाषा की सामर्थ्य एवं समृद्धि का पता उसकी शब्द-सम्पदा से चलता है। हिंदी भाषा की शब्द-शक्ति इतनी प्रबल, सार्थक एवं गतिशील है कि इसकी ज्योति से सभ्यता- संस्कृति, गति- प्रगति, चेतना-संवेदना आदि की झलक स्वतः समस्त समाज को प्राप्त होने लगती है। हिंदी का मूल स्रोत संस्कृत होने के कारण इसके शब्दों के गुम्फन से निर्मित कुछ वाक्य समाज और काल की परम्पराओं, व्यवहारों, अनुभूतियों को पूर्णतः प्रकट कर सशक्त मार्ग को दर्शाते हुए आपसी सम्बन्धों को भी स्थापित करते रहे हैं, जिससे विषयों की गंभीरता के साथ साथ गाम्भीर्य भावों की सार्थकता भी सिद्ध होती रही। हिंदी की एक अन्य बड़ी शक्ति इसकी आमजन की भाषा (लोकभाषा) और बोलियां हैं जो अपने सौन्दर्य के साथ थिरकती हुई, जन-जन तक संपर्क बनाती हुई भारत की संप्रभुता और एकता को बढ़ाती रहीं। इनमें लोकोक्तियों, मुहावरों तथा कहावतों से हिंदी और अधिक समृद्ध होती रही। इसी के साथ हिंदी ने भारतीय भाषाओं तथा तमाम विदेशी भाषाओं से भी अनगिनत शब्दों को ग्रहण किया और उन्हें अपनी प्रकृति के अनुसार ढालकर अपने जैसा बना लिया। हिंदी को छोड़कर अन्य किसी भारतीय भाषा में यह विशेषता नहीं है।

यह सत्य है कि शिक्षा और साहित्य की भाषा परिष्कृत, परिमार्जित और व्याकरणनिष्ठ होती है किन्तु सरलता एवं सहजता किसी भाषा का स्वाभाविक गुण होता है।

कतिपय लोग संस्कृतनिष्ठ तथा क्लिष्ट हिंदी का प्रयोग कर अपने पाण्डित्य का प्रदर्शन करने लगे। सरल सहज और जन जन तक संपर्क बनाने वाली हिंदी को लोकभाषा या जनभाषा कहकर उसकी उपेक्षा की गयी। भाषा के संवर्द्धन एवं राजभाषा के व्यापक प्रचार–प्रसार के लिए जिन आयोगों का गठन हुआ वहां भी यही भूल की गयी। पारिभाषिक शब्दावली के रूप में ऐसे क्लिष्ट शब्द निर्मित किये गए जो उपयोग एवं व्यवहार के धरातल पर स्वीकृत नहीं हो सके। कृत्रिम शब्दों से निर्मित यह भाषा सर्वग्राही न होने के कारण केवल शब्दकोशों की शोभा बनकर रह गयी। मेरा मानना है कि इन पारिभाषिक शब्दों को बनाने में यदि जनभाषा में प्रचलित शब्दों को अपनाया गया होता तो आज स्थिति दूसरी होती। इसी के साथ ज्ञान-विज्ञान और तकनीक-क्षेत्र के अंग्रेजी भाषा के जो शब्द पूरी तरह प्रचलित होकर प्रयोग में आ रहे हैं, जैसे टिकट, रेल, कंप्यूटर आदि उन्हें ज्यों का त्यों स्वीकार करते हुए देवनागरी लिपि में लिखा जाना श्रेयस्कर होगा। राजभाषा के सन्दर्भ में यह बात ध्यान देने की आवश्यकता है कि हिंदी विश्व की प्रतिष्ठित भाषा है। देश के मनीषियों एवं साहित्यकारों ने अपनी लगन, निष्ठा एवं सृजनात्मक क्षमता से इसे समृद्ध बनाया है। व्याकरणिक संरचना, समृद्ध शब्दावली तथा दूसरी भाषा के शब्दों को ग्रहण

कर उसे अपनी प्रकृति के अनुरूप ढाल लेने की क्षमता के कारण हिंदी पूरे देश में संपर्क भाषा के रूप में स्थापित हो चुकी है। इसी विशेषता के कारण यह भारत की राष्ट्रभाषा के रूप में भी मान्य हो चुकी है। मेरी यह भी अवधारणा है कि प्रत्येक भाषा की अपनी चमक हुआ करती है। रहीमदास ने अपने एक दोहे में कहा है कि-

रहिमन पानी राखिये, बिन पानी सब सून।
पानी गए न ऊबरै, मोती, मानुष, चून॥

अर्थात मोती, मानुष, चून की तरह भाषा की चमक के लिए उसके पानी को बचाए रखना चाहिए। यह चमक किसी भी कृत्रिम अथवा यांत्रिक शब्दों से नहीं आ सकती है। अपने ही घरों में चमक रहे हिंदी के सारभूत तत्वों के अस्तित्व को नष्ट होने से बचाए रखने की आवश्यकता है। इससे राजभाषा का मार्ग कठिन न होकर सहज हो जायेगा और राजभाषा की विस्तृत सरिता में नौका विहार करना सहज सुगम हो जायेगा। राजभाषा का प्रशिक्षण प्राप्त कर रहे कर्मचारियों को अपने अधिकारियों के लिए समीचीन शब्दों का उचित ज्ञान लेकर उसका उपयोग करना चाहिए, एतदर्थ कुलपति, कुलसचिव, आचार्य, प्राचार्य, अभियन्ता जैसे सार्थक हिंदी शब्दों का प्रयोग करके विदेशी शब्दों के व्यामोह से बचा जा सकता है और हिंदी की गरिमा को भी संरक्षित किया जा सकता है। आशय यह है कि विदेशी भाषाओं से आगत शब्दों का स्वागत करते हुए अन्तःकरण के कोष में सुरक्षित कर अपनी ध्वनियों, बोलियों से निर्मित नवीन शब्दों को अपनाते हुए हिंदी के उत्कर्ष के लिए सार्थक एवं सुगम शब्दों से राजभाषा को समृद्ध किया जा सकता है। हिंदी भाषा की प्रकृति के अनुसार हम ऐसे शब्दों से सुसज्जित करें कि उससे उत्पन्न ज्ञान रस का पानकर पाठक स्वतः विदेशी भाषाओं की गुलामी से मुक्त होकर अनुशासित तरीके से राष्ट्र के लिए सुपथ का निर्माण कर सके, अन्यथा हिंदी से अंकुरित हो रहे शब्द कक्षस्थ कलिकाओं की भांति कांटे बनकर रह जायेंगे और उन्हें अग्रस्थ कलिकाओं की भांति पुष्पित एवं पल्लवित होने का अवसर भी प्राप्त नहीं हो सकेगा। परिणामतः इसके वास्तविक रूप को जानने के लिए हम सदा बगलें झांकते हुए एक दूसरे के सामने दाँत निपोरते हुए करवटें ही बदलते रहेंगे।

राजभाषा हिंदी को लेकर कुछ सहज प्रश्न मेरे मन में उठते रहें हैं। प्रथमतः प्रश्न यही है कि क्या भाषा केवल अभिव्यक्ति का माध्यम मात्र है अथवा इसका अन्य कोई वजूद भी है ? क्या राष्ट्रीय अस्मिता का बोध भी कुछ अर्थ रखता है या नहीं, यदि हाँ, तो अपनी राजभाषा का प्रयोग हमें गौरवान्वित करेगा या नहीं ? इन प्रश्नों के उत्तर तलाशने की कोशिश हमें भाषा के सच्चे स्वरूप से परिचित करा सकती है। अपनी भाषा में कार्य करना व्यक्ति के व्यक्तित्व को अलग से निखारता है। अपनी भाषा हमें मौलिक बनाती है। आवश्यकता है कि हिन्दी भाषा को बोलने और लिखने में हम लज्जित न हों, अपितु गर्व का अनुभव करें।

सहायक आचार्य
के.उ.ति.शि.सं., सारनाथ, वाराणसी
मो.नं.- 8450955586

राष्ट्रीय आन्दोलन के दौरान हिन्दी का राष्ट्रभाषा के रूप में विकास

—डॉ. अनुराग त्रिपाठी—

भाषा के अच्छे प्रयोग के बिना प्रत्येक व्यक्ति पिछड़ा हुआ और प्रत्येक राष्ट्र लंगड़ा सा प्रतीत होता है। यद्यपि भाषा नदी की तरह सदा चलती बहती रहती है। यदि कोई उसे बलपूर्वक रोकना भी चाहे, तो वह उसके बन्धन को तोड़कर आगे निकल जाती है। यह उसकी स्वाभाविक प्रवृत्ति है। विश्व की प्रत्येक भाषा के इतिहास में प्रायः ऐसी बात देखी जाती है।

किसी भी देश की पहचान वहाँ की भाषा व उससे जुड़े साहित्य से होती है तथा इस पहचान के सृजन के पीछे एक लम्बी कथा छिपी होती है। भाषाई रूप से भारत एक बृहद् संमृद्ध राष्ट्र है। यहाँ की भाषाएँ अलग-अलग सामाजिक अस्मिताओं के प्रकटीकरण का माध्यम होने के साथ-साथ साहित्यिक रूप से भी सभी एक-दूसरे की ताकत हैं। भाषाओं के इस विविधतापूर्ण परिवेश में हिन्दी का एक सशक्त विशिष्ट स्थान है।

भारतीय संघ की राजभाषा के रूप में हिन्दी आज सारे देश की भाषा है। हिन्दी के प्रचार-प्रसार एवं विकास का इतिहास संघर्षों तथा विरोधों का रहा है। तभी तो अनेक बाधाओं के उपरान्त हिन्दी राजभाषा बन पाई। इसीलिये अनेक सामाजिक, धार्मिक साहित्यिक तथा राजनीतिक आन्दोलनों से इसे गुजरना पड़ा। कभी संस्कृत, कभी पालि, कभी प्राकृत तथा कभी अपभ्रंश के रूप में विघटित होने के बाद हिन्दी के रूप में प्रचलित हुई। दसवीं शताब्दी के आस-पास हिन्दी अन्य आधुनिक भारतीय भाषाओं की तरह अपना रूप ग्रहण कर चुकी थी। देश की राजनैतिक उथल-पुथल में हमारे देश में अरबी-फारसी का वर्चस्व था तो ब्रिटिश काल में अंग्रेजी का। स्वराज प्राप्ति के संघर्ष में भाषा क्षेत्र को भी लोग राष्ट्रीयता की दृष्टि से देखने लगे।

वस्तुतः स्वाधीनता संघर्ष का श्रीगणेश सन् 1857 से होता है और इसकी इतिश्री 1947 में। इस प्रकार यह संघर्ष पूरे 90 वर्ष चला। संघर्ष के दौरान विदेशी सरकार ने राजनीतिक, सामाजिक, धार्मिक, ऐतिहासिक और आर्थिक परिस्थितियों के आरोह-अवरोह लाकर भारतीय जन-जीवन को प्रभावित किया। इसकी प्रतिक्रिया स्वरूप नवीन वैज्ञानिक साधन पनपे, नवजागरण आया, जिसके परिणामस्वरूप देश में एकसूत्रता बढ़ी। इस एकसूत्रता को पुष्ट करने के लिए अभिव्यक्ति साधन के रूप में हिन्दी को अपना राष्ट्रीय कर्तव्य निर्वाह करने का अवसर ही नहीं मिला, बल्कि उसने अपना राष्ट्रीय रूप भी प्राप्त किया। विदेशी वस्तु हो या भाषा उसके बहिष्कार में राष्ट्रीयता का आभास मिला। उपर्युक्त परिस्थितियों में राष्ट्रभाषा की संकल्पना को, राष्ट्रभाषा प्रेम की, देश-प्रेम की संज्ञा दी जाने लगी। स्वामी दयानन्द का उद्घोष, "भाई मेरी आँखें

तो उस दिन को देखने को तरस रही हैं जब कश्मीर से कन्याकुमारी तक सब भारतीय एक भाषा समझने और बोलने लग जाएँ।" स्वामी जी ने अपनी पुस्तकों एवं साहित्य के प्रकाशन में हिन्दी का प्रयोग करके हिन्दी को राष्ट्रीय स्वरूप प्रदान करने में उल्लेखनीय और प्रेरणादायक प्रयास किया। बंगाल के जस्टिस केशवचन्द्र सेन ने कहा, "हिन्दी अखिल भारत की जातीय भाषा या राष्ट्रभाषा बनने योग्य है।" जैसा कि सर्वविदित है कि बाल गंगाधर तिलक, लाला लाजपत राय, महात्मा गाँधी, सुभाषचन्द्र बोस, मदनमोहन मालवीय और डॉ. राममनोहर लोहिया के उदय के साथ भारतीय राजनीति को एक नयी दिशा मिली। राष्ट्रीय आन्दोलन के साथ नवीन कल्पना और भावना के स्रोत उद्भूत हुए और नेताओं ने राष्ट्रभाषा हिन्दी को राष्ट्रभाषी रूप देने में, अखिल भारतीय प्रयोग व प्रचार-प्रसार में सहायता की।

लोकमान्य बाल गंगाधर तिलक उन जन-नायकों में से एक हैं, जिन्होंने विदेशी सत्ता एवं शासन के विरुद्ध झण्डा उठाया। "स्वराज्य मेरा जन्म सिद्ध अधिकार है, उसे मैं प्राप्त करके ही रहूँगा।" नारा देने वाले क्रान्ति के उद्घोषक तिलक ने हिन्दी का प्रबल समर्थन किया। 'केसरी' नामक पत्र का हिन्दी में प्रकाशन किया। लाला लाजपत राय हिन्दी के प्रमुख समर्थक थे। उनका कर्म क्षेत्र पंजाब था। उन्होंने पंजाब विश्वविद्यालय में हिन्दी का पाठ्यक्रम बनवाया। कांग्रेस के 40वें अधिवेशन में अपना भाषण हिन्दी में दिया।

"देश की एकता के लिए एक भाषा का होना जितना आवश्यक है, उससे अधिक आवश्यक है देश भर के लोगों में देश के प्रति विशुद्ध प्रेम तथा अपनापन का होना। अगर आज हिन्दी मान ली गई है तो वह अपनी सरलता, व्यापकता और क्षमता के कारण। वह किसी प्रान्त विशेष की भाषा नहीं, बल्कि सारे देश की भाषा हो सकती है।" -सुभाषचन्द्र बोस

राष्ट्रपिता महात्मा गाँधी बहुमुखी प्रतिभा सम्पन्न महापुरुष थे। उच्चकोटि के समाज सुधारक, कुशल राजनीतिज्ञ तथा महान संगठनकर्त्ता एवं लोकप्रिय नेता थे। उन्होंने हिन्दी का प्रबल समर्थन किया। हिन्दी को राष्ट्रभाषा बनाने में उनकी महत्त्वपूर्ण भूमिका है। दक्षिण भारत हिन्दी प्रचार सभा तथा राष्ट्रभाषा प्रचार समिति, वर्धा के वे संस्थापक थे। उन्होंने गुजरात विद्यापीठ तथा काशी विद्यापीठ की स्थापना की। गाँधी जी ने कहा- "हिन्दी भाषा की भूमि सिर्फ उत्तर प्रान्त होगी तो साहित्य का प्रदेश संकुचित रहेगा। यदि हिन्दी भाषा राष्ट्रीय भाषा होगी तो साहित्य का विस्तार भी राष्ट्रीय होगा। हिन्दी भाषा वह भाषा है जिसको उत्तर में हिन्दू व मुसलमान दोनों बोलते हैं।" गाँधी जी इस बात को स्वीकार करते थे, कि राष्ट्रभाषा राष्ट्रीय एकता की कड़ी है, सांस्कृतिक, सामाजिक तथा सार्वजनिक जीवन मूल्यों की आध्यात्मिक शक्ति है। इस सम्बन्ध में महात्मा गाँधी का यह कथन उल्लेखनीय है- "समूचे हिन्दू समाज के साथ व्यवहार करने के लिए हमको भारतीय भाषाओं में एक ऐसी भाषा की जरूरत है जिसे आज ज्यादा से ज्यादा तादाद में लोग जानते और समझते हों और बाकी लोग इसे आसानी से सीख सकें। इसमें शक नहीं, हिन्दी ही ऐसी भाषा है।"

हिन्दी के प्रचार-प्रसार एवं विकास में दयानन्द सरस्वती, महात्मा गाँधी की कड़ी में महामना मदन मोहन मालवीय का नाम श्रद्धापूर्वक लिया जाता है। वे राष्ट्र सेवा, राष्ट्र स्वाधीनता और हिन्दी भाषा प्रेम का व्रत लेकर हिन्दी पत्रकार के रूप में अवतरित हुए थे। उन्होंने उत्तर प्रदेश की अदालतों एवं दफ्तरों में हिन्दी का प्रवेश कराकर महत्त्वपूर्ण कार्य किया तो दूसरी ओर सरकारी देवनागरी लिपि की वजह रोमनलिपि के प्रस्ताव का घोर विरोध किया। मालवीय जी के कुशल नेतृत्व में सन् 1893 ई. में नागरी प्रचारिणी सभा, काशी तथा सन् 1910 में हिन्दी साहित्य सम्मेलन जैसी समाज सेवी एवं साहित्य सेवी संस्थाओं का गठन ही नहीं हुआ, अपितु आजीवन संरक्षण भी मिला।

गाँधी जी के बाद हिन्दी को राष्ट्रभाषा और राजभाषा के पद पर आसीन करवाने में राजर्षि पुरुषोत्तम दास टण्डन का नाम अग्रणी है। उन्होंने मालवीय जी के उत्तराधिकारी के रूप में, 'लोक सेवा मण्डल' के सदस्य और अध्यक्ष पद से, 'हिन्दी साहित्य सम्मेलन' के मंच पर, प्रान्तीय हिन्दी सम्मेलनों के समाजनिष्ठ पदों से एक प्रहरी, नेता व साहित्यकार की भूमिका का निर्वाह कर हिन्दी के भण्डार को भरा पूरा कर दिया।

सूर्यकान्त त्रिपाठी निराला ने लखनऊ से प्रकाशित जून 1930 के 'सुधा' मासिक में कहा था- "हम राष्ट्रभाषा के लिए उसी भाषा को चुनें, जो सरलता से सीखी जा सके, सहज में जिसका उच्चारण हो सके, जिसका अधिक प्रचार और प्रचलन हो। यदि हम इन पाँचों दृष्टियों से देखें, तो हमें यह स्वीकार करना पड़ेगा कि हिन्दी ही राष्ट्रभाषा बनने की अधिकारिणी है। संस्कृत से सीधा सम्पर्क रखने के कारण भारतीय सभ्यता और संस्कारों की जैसी अभिव्यक्ति हिन्दी करती है और कर सकेगी, वैसी और कोई भाषा नहीं।"

इस प्रकार राजनीतिक, राष्ट्रीयता के विकास के साथ राष्ट्रभाषा की कल्पना राष्ट्रीय एकता के प्रतीकों के रूप में पल्लवित होने लगी। राष्ट्रीय सम्मान की दृष्टि से राष्ट्रभाषा की आवश्यकता का अनुभव किया जाने लगा। भिन्न भाषा-भाषी राष्ट्र के सदस्यों के भावों के आदान-प्रदान के लिए एक भाषा की परिकल्पना मूर्त रूप धारण करने लगी। यही नहीं, भावनात्मक एकता के लिए भाषा की एकता का विचार पुष्ट हुआ और तब हिन्दी भी सार्वभौमिकता, व्यापकता, सरलता और सर्वप्रियता के कारण राष्ट्रभाषा के रूप में ग्रहण की गई। ऐसा प्रतीत होता था मानो समूचा राष्ट्र किसी पवित्र कार्य में जुट गया हो। देशवासियों के इन समन्वित प्रयासों का ही परिणाम था कि अंततः 14 सितम्बर 1949 को स्वतन्त्र भारत की संविधान सभा ने हिन्दी को राजभाषा के रूप में मान्यता प्रदान की।

इस प्रकार सभी के सत्प्रयासों के फलस्वरूप वर्तमान वैश्विकीकरण के दौर में जब सूचना तकनीकी के स्कन्ध पर आरूढ़ होकर हिन्दी तीव्रगति से विश्वभाषा का प्रभामंडल बन गयी है। डॉ. करुणाशंकर उपाध्याय के शब्दों में- "हिन्दी को वैश्विक सन्दर्भ प्रदान करने में विश्व-भर में फैले

हुए साढ़े चार करोड़ से ज्यादा प्रवासी भारतीयों का विशेष प्रदेय है। वे हिन्दी के द्वारा अन्य भाषा-भाषियों के साथ सांस्कृतिक संवाद कायम करते हैं। अब हिन्दी विश्व की सभी महाद्वीपों तथा राष्ट्रों जिनकी संख्या एक सौ आठ से भी अधिक है, में किसी न किसी रूप में प्रयुक्त हो रही है। इस समय हिन्दी विश्व की तीन सबसे बड़ी भाषाओं में से है। वह विश्व के विशाल फलक पर नवलचित्र के समान प्रकट हो रही है।"

इस प्रकार हम कह सकते हैं कि हिन्दी चिरकाल से देश की भाषा रही है। इसकी एक महत्त्वपूर्ण विशेषता यह रही है कि यह अपने उद्भव काल में ही साहित्यिक भाषा बन गई। अपने उत्थान एवं पतन की अवधि के दौरान इसने समय-समय पर तुर्की, अरबी, फारसी, पुर्तगाली, फ्रांसिसी, अंग्रेजी आदि अनेक विदेशीय भाषाओं से लोहा लिया और अन्त में अपनी प्रखर क्षमता के कारण यह सबको पीछे छोड़कर दीर्घकालीन संघर्ष में विजयी रही। अन्ततः यह राजभाषा के पद पर आसीन हुई और आज हिन्दी विश्व के सबसे सक्षम मानव-संसाधन की अभिव्यक्त का माध्यम बन गयी है, जिसने अनेक संस्कृति-सभ्यताओं को आत्मसात कर लिया। प्राचीन एवं अर्वाचीन भारतीय साहित्य का विशेषताओं को चुटकी बजाकर बड़ी सहजता से हस्तामलकवत् उपलब्ध करा दिया। नवप्रसूत शिशु के हंसने-रोने-चिल्लाने की आवाज आज हिन्दी बन गयी, ऐसा जानकर किस भारतीय का सिर स्वाभिमान से उन्नत नहीं होगा। आइये हिन्दी को गले लगायें व देश के कोने-कोने में उसके सुगन्धित पुष्पों से वातावरण एवं राष्ट्रीय एकता को मजबूत बनायें।

सन्दर्भ ग्रन्थ-

1. प्रयोजनमूलक हिन्दी - डॉ. विजय पाल सिंह, संजय बुक सेन्टर, गोलघर, वाराणसी, प्रथम संस्करण-1998
2. हिन्दी भाषा स्वरूप और विकास - कैलाशचन्द्र भाटिया एवं मोतीलाल चतुर्वेदी, प्रभात प्रकाशन दिल्ली, प्रथम संस्करण-1989
3. स्वतन्त्रता संग्राम और हिन्दी - डॉ. मीना गौतम, राष्ट्रीय अभिलेखागार जनपथ, नई दिल्ली, 11 सितम्बर-2008
4. हिन्दी का विश्व सन्दर्भ - डॉ. करुणाशंकर उपाध्याय, राधाकृष्णन प्रकाशन, नई दिल्ली, द्वितीय संस्करण-2016
5. हिन्दी युग-युग की भाषा - रमेशचन्द्र, कल्याणी शिक्षा परिषद, नई दिल्ली, संस्करण-2011

सहायक आचार्य
के.उ.ति.शि.सं., सारनाथ, वाराणसी
मो.नं.- 9453244602

प्रशासनिक हिंदी और टिप्पण लेखन

—सुनिल कुमार—

अंग्रेजी में टिप्पणी के लिए Noting शब्द का प्रयोग किया जाता। Noting शब्द लैटिन भाषा के नोट शब्द से बना है, जिसका अर्थ होता है जानना। बाद में इसके लिए कमेंट तथा एनोटेशन शब्दों का भी प्रयोग किया जाने लगा। हिंदी में इसे टिप्पण लेखन कहते हैं। किसी भी सरकारी कार्यालय में टिप्पण लेखन का विशेष महत्व होता है। इसके बिना कोई भी कार्यालयी काम पूरा नहीं होता। सरकारी कार्यालयों में जो भी पत्र आते हैं उन पर आगामी कार्यवाही के लिए कर्मचारियों, लिपिकों व अधिकारियों द्वारा जो पंक्तियां लिखी जाती है, उसे कार्यालयी शब्दावली में टिप्पण कहा जाता है। नालंदा शब्द सागर के अनुसार- "वह छोटा लेख, जिसके द्वारा गूढ़ वाक्य आदि का विस्तृत अर्थ बताया जाय, टिप्पण लेखन कहलाता है।" अतः टिप्पण लेखन वह प्रक्रिया है, जिसके प्रत्येक चरण में सुझाव, संकेत, निर्देश दर्ज किये गए तथ्य, सूचनाएं आदि जो कर्मचारियों अथवा अधिकारियों द्वारा लिखे जाते हैं। संक्षिप्त टिप्पणी के लिए निम्न प्रकार के वाक्य प्रयुक्त किये जाते हैं-

1- देख लिया।
2- मैं सहमत हूँ।
3-आदेशनार्थ प्रस्तुत है।
4- अग्रसारित एवं संस्तुत।
5- आलेख अनुमोदनार्थ प्रस्तुत है।
6- आवेदन स्वीकार कर लिया जाय।
7- मुझे कोई आपत्ति नहीं।
8- श्री..... कृपया अवलोकन हो।
9- आवेदन अस्वीकृत।
10- अवकाश स्वीकृत।
11- कार्यालय टिप्पणी से सहमत हूँ। आदेश जारी कर दिया जाय।
12- इस संबंध में पृष्ठ..... पर दी गई टिप्पणी देखें।
13- इस मामले का शीघ्र निपटारा किया जाय।
14- आमुख कर्मचारी के विरुद्ध अनुशासनात्मक कारवाही की जाय।
15- अवकाश स्वीकृत।

टिप्पण लेखन के प्रकार-

प्रशासनिक (नेमि) टिप्पण (official Noting)- कार्यालयीन कामकाज के एक भाग के रूप में नेमी टिप्पण लिखे जाते हैं। यह टिप्पण रोजमर्रा के कार्य का एक अंग होते हैं। यह टिप्पणी छोटी-छोटी बातों के लिए लिखी जाती है।

समान्य टिप्पण (Simple Noting)- सरकारी कार्यालयों में जो पत्र/ मामले पहली बार प्राप्त होते हैं, उसे प्रस्तुत करने की एक प्रक्रिया के रूप में जो टिप्पण लिखे जाते हैं, उन्हें सामान्य टिप्पण कहते हैं।

अनुभागीय/विभागीय टिप्पण (Sectional Noting)- कुछ मामलों पर सरकारी आवश्यकता के अनुसार विभिन्न विभागों अथवा अनुभागों से आदेश प्राप्त करना जरूरी होता है। ऐसी स्थिति में मामलों के स्वरूप के अनुसार टिप्पणी कर्ताओं को प्रत्येक मामले पर टिप्पण लिखना आवश्यक होता है।

अनौपचारिक टिप्पण (Unofficial Noting)- एक कार्यालय से किसी दूसरे कार्यालय अथवा एक मंत्रालय से दूसरे मंत्रालय को कुछ कार्यालयीन जानकारी देने के लिए अनौपचारिक टिप्पण ही भेजे जाते हैं। अनौपचारिक टिप्पण में सभी कार्यालयीन नियमों तथा शर्तों आदि का सही-सही अनुपालन नहीं किया जाता है। इन टिप्पणों के उत्तर में जो टिप्पणादि प्राप्त होते हैं, उनका स्वरूप भी अनौपचारिक टिप्पण का ही होता है।

सम्पूर्ण टिप्पण-

विस्तृत टिप्पणों को सम्पूर्ण टिप्पण कहा जाता है। कार्यालयों में बहुत बार मामलों की गम्भीरता को ध्यान में रखते हुए उनके पूरे इतिवृत्ति, तर्कवितर्क, प्रसंग आदि को सम्रग रूप से फाइल में रखना होता है ताकि उसके आधार पर उच्चाधिकारी उचित निर्णय लेकर आदेश जारी कर सके। इस प्रक्रिया में टिप्पण में सम्पूर्ण इतिवृत्ति के साथ-साथ पूर्व संदर्भ, पूर्ववर्ती फाइलों के संदर्भ, पुराने फैसले आदि भी देना होता है। इस मामले के बारे में पूरे अध्ययन के साथ विश्लेषणात्मक पद्धति से जो टिप्पण लिखा जाता है, उसे संपूर्ण टिप्पण कहते हैं।

सूक्ष्म टिप्पण (Short Noting)-

कुछ पत्रों पर अनुभाग अधिकारी अथवा संबंधित अधिकारी पत्र के हाशिए पर बाई ओर निर्देश देता है जो सामान्यतया से भिन्न वाक्यों के रूप में होता है, उसे सूक्ष्म टिप्पण कहा जाता है।

टिप्पण लिखते के समय कुछ महत्वपूर्ण बिंदुओं पर हमेशा ध्यान रखना चाहिए-

1- टिप्पणी सदैव मानक नोट शीट पर लिखना चाहिए।
2- टिप्पण लेखन की शैली सीधी ब सरल होनी चाहिए।
3- टिप्पण संक्षिप्त एवं सुसंगत होना चाहिए।

4- रोजमर्रा की नेमी मामलों को छोड़कर समान्यतया आवती पर टिप्पणी न लिखी जाय।

5- विचाराधीन आवती/नई आवती के मुद्दों को फाइल पर ज्यों का त्यों नहीं लिखा जाए और ना ही उसका सार दिया जाए।

6- टिप्पण सदैव सुव्यवस्थित एवं व्यवहारिक हो।

7- आदेश/सुझाव देते समय अधिकारी को टिप्पण के वास्तविक मुद्दों तक ही सीमित रहना चाहिए।

8- लंबी टिप्पणियों के अंत में एक पैरा होना चाहिए जिसमें संक्षेप में और स्पष्ट रुप में विचाराधीन मामले का सार होना चाहिए।

9- नोट शीट के प्रत्येक पृष्ठ के चारों और लगभग एक इंच का हाशिया होना चाहिए।

10- टिप्पण को स्पष्ट करने के लिए अनुच्छेदों में विभाजित कर संक्षिप्त शीर्षक भी दिया जा सकता है।

11- किसी विचाराधीन मामले में बहुत से महत्वपूर्ण मुद्दे उठाये गये हो और प्रत्येक मुद्दों में विस्तृत जांच की आवश्यकता हो तो संक्षिप्त सहायक द्वारा प्रत्येक मुद्दे पर अलग-अलग टिप्पणी होनी चाहिए।

टिप्पण लेखन की विशेषताएं-

भाषा- टिप्पण लेखन की भाषा सुस्पष्ट होनी चाहिए। उसमें वर्णनात्मकता के बजाय भावों की अभिव्यक्ति की तीव्रशक्ति होनी चाहिए। संप्रेषण का उचित माध्यम भाषा को बनाया जाना चाहिए। टिप्पण में ऐसे शब्दों का प्रयोग नहीं करना चाहिए, जिससे कि अर्थ विषयक भ्रम पैदा हो। टिप्पण की भाषा सरल, स्पष्ट तथा संयत होना चाहिए।

क्रमबद्धता- टिप्पणी लिखते समय विषय या तथ्यों को असम्बद्ध तरीके से प्रस्तुत नौकर के क्रम के साथ विचारों की शृंखला को रखना चाहिए। आशय के आकलन के लिए टिप्पण में क्रमबद्धता का होना बहुत जरूरी होता है।

सुस्पष्टता- कार्यालय टिप्पण प्रायः स्पष्ट ढंग से लिखे जाने चाहिए। टिप्पण लेखन में शब्दों या वाक्यांशों अनुचित और भ्रामक प्रयोग नहीं किया जाना चाहिए। उलझनपूर्ण, जटिल तथा कठिन विषय अथवा मामले को भी स्पष्टता के साथ बोधगम्य रीति से प्रस्तुत किया जाना चाहिए।

संक्षिप्तता- टिप्पणी का उद्देश्य ही कम से कम शब्दों में अधिक से अधिक आशय व्यक्त करना होता है। अतः टिप्पण संक्षिप्त तथा स्पष्ट होना चाहिए। अधिकारियों के पास समय की कमी रहती है और इस बात को ध्यान में रखकर आवश्यक हो तो उन बातों में ही सीधे ढंग से प्रस्तुत किया जाना चाहिए ताकि पढ़ने वालों को अपना निर्णय तुरंत देने में कठिनाई महसूस ना हो।

तटस्थता- किसी उत्कृष्ट टिप्पण के लिए तटस्थता का होना भी निहायत जरूरी है । टिप्पण लेखन करते समय पदाधिकारी को चाहिए कि व्यक्तिगत भाव विचारों अनुभूतियों तथा अच्छे बुरे पूर्वाग्रहों से नितांत दूर रहकर केवल आवश्यक बातें एवं तथ्यों को ही टिप्पण में प्रक्षेपित करें।

प्रभान्विति- टिप्पण लिखते समय यह ध्यान रखना चाहिए कि शब्द, विचार, अनुच्छेद आदि के प्रभाव की अन्विति अस्त-व्यस्त न होकर ठीक ढंग से सुगठित रुप में होना चाहिए।

शैली- हिंदी लेखन की शैली अंग्रेजी लेखन शैली से भिन्न होती है । अतः अंग्रेजी में सोचकर हिंदी में अनुवाद के रूप में टिप्पण नहीं लिखा जाना चाहिए । जैसे– "necessary action may kindly be taken at the earliest"... इसको हिंदी में लिखते समय-" कृपया तुरंत आवश्यक कार्रवाई करें" लिखा जाना चाहिए।

सहायक कुलसचिव
के.उ.ति.शि.सं., सारनाथ, वाराणसी
मो.नं.- 7007270180

राजभाषा हिन्दी और उसकी स्थिति

—भगवान पाण्डेय—

भाषा अभिव्यक्ति का माध्यम होती है। भाषा के माध्यम से ही विचारों का आदान-प्रदान किया जा सकता है। पहले भाषा सांकेतिक रही होगी जैसे ट्रेन संचालन के लिए विभिन्न रंग की झंडियों के माध्यम से संकेत की भाषा एवं पशुओं की भाषा आदि। धीरे-धीरे मानव विकास की तरफ अग्रसर हुआ एवं सांकेतिक भाषा के साथ-साथ लिखित भाषा का विकास हुआ।

किसी भी राष्ट्र के सर्वांगीण विकास के लिए अन्य बातों जेसै संम्प्रभुता, भूभाग आदि के साथ ही एक भाषा का होना आवश्यक है। भाषा केवल सम्प्रेषण का सशक्त माध्यम ही नहीं अपितु एक व्यक्ति की संस्कृति, सभ्यता एवं पहचान का मुख्य आधार है। व्यक्ति अपनी भाषा के माध्यम से ही अपनी भावना की अभिव्यक्ति मूलरूप से कर सकता है। इसी दृष्टिकोण को ध्यान में रखते हुए स्वतन्त्रता प्राप्ति के उपरान्त संविधान निर्माण के क्रम में भाषा के विषय में गहन चर्चा हुई। क्योंकि भारत राज्यों का संघ है एवं राज्य विविध भाषा-भाषी हैं। अतः निर्णय हेतु उक्त विषय पर तीन दिनों तक बहस के उपरान्त मुंशी-आयंगर फार्मूला के तहत 14 सितम्बर, 1949 को संविधान सभा द्वारा हिन्दी को राजभाषा का दर्जा प्रदान किया गया।

हिन्दी भारोपीय परिवार की आर्य वर्ग की भाषा है। संस्कृत इसकी जननी है, अतः इसके अधिकांश शब्द मूलतः संस्कृत के ही हैं। यह देवनागरी लिपि में लिखी जाती है। आज का तिब्बत हजारों साल पहले का सुमेरु पर्वत है। कहा जाता है कि प्राचीन सभ्यता सुमेरु पर्वत के नीचे जन्मी, पनपी और फैलती गई। उसका विस्तार ग्रीक, रोम, मेसोपोटामिया से लेकर सिंधु घाटी तक था। समूचे प्राचीनतम सभ्यता का स्थल यही क्षेत्र रहा है। सुमेरु का अर्थ मेरुदंड अर्थात आधारशिला है। सुमेरु पर्वत के नीचे धीरे-धीरे जिस सभ्यता ने जन्म लिया, वह विश्व बंधुत्व का केन्द्र थी। रोम और मेसोपोटामिया में जो सिंह और सूर्य के चक्र मिले हैं वही सिंधु घाटी में भी हैं। यहां के निवासियों का रहन-सहन तथा धर्म लगभग एक समान था। वर्षों तक एक तारतम्य था, जो सुमेरु सभ्यता को बांधे था और समूची मनुष्य-जाति को एक ही तरह से रहना, खाना-पीना और विकास के तौर-तरीके समझाए थे। तब इनकी भाषा भी बहुत मिलती-जुलती थी, शिला लेख इसके प्रमाण हैं। यद्यपि सुमेरु के समूचे क्षेत्र में देवनागरी लिपि का विस्तार था, उसी देवनागरी से क्रमशः हिंदी भी विकसित हुई है। हिंदी का उद्गम देववाणी संस्कृत से हुआ है। संस्कृत दुनिया की सबसे पुरानी भाषा है और अन्य कई भाषाएं संस्कृत से ही संबद्ध हैं। वास्तव में पश्चिमी ज्ञान में काफी हद तक संस्कृत, हिंदी और उससे जुड़े लेखों से ही उधार लिया गया है।

महात्मा गांधी ने कहा था कि "देश की प्रगति के लिए राष्ट्रीय व्यवहार में हिंदी भाषा को कार्य में लाना एक अहम कदम होगा"। मेरा स्वयं का मानना है कि यदि भारत का विकास शिक्षा, विज्ञान और प्रौद्योगिकी के क्षेत्र में करना है तो हमें हिंदी को सक्षम बनाना होगा। आज के

वैश्वीकरण के दौर में हिंदी को महत्त्व देना अनिवार्य बन गया है। हिंदी भाषा आज वैश्विक स्तर पर एक प्रभावशाली भाषा बन गई है। आज भारत के अलावा 150 से अधिक देशों में हिंदी पढ़ाई जाती है। विश्व में चीनी, मंडारिन और अंग्रेजी के बाद हिंदी तीसरी अति प्रचलित भाषा के रूप में विद्यमान है। ज्ञात आंकड़ों के अनुसार आज सम्पूर्ण विश्व में 64 करोड़ लोगों की 'मातृभाषा' हिंदी है तथा 24 करोड़ लोगों की दूसरे स्थान वाली भाषा है। आज हिंदी भाषा विश्व में 206 देशों में बिना किसी संकोच के उपयोग की जाती है। आज वैश्वीकरण के युग में सभी विकसित देशों में हिंदी को महत्त्व दिया जा रहा है। हमारे देश के प्रशिक्षित लोग विदेशों में जाकर हिंदी भाषा का विस्तार और सेवा देने के कार्य में प्रवृत हो रहे हैं।" भारतीय संविधान के अनुच्छेद 353 के अनुसार संघ की राजभाषा हिंदी और लिपि देवनागरी होगी तथा अंकों का रूप भारतीय अंकों का अन्तर्राष्ट्रीय रूप होगा एवं आवश्यकतानुसार तत्संबंधी नियम बनाए जा सकते हैं। राजभाषा का आदर्श है राज-काज की भाषा सरकार द्वारा आमजन के लिए किये जाने वाले कार्यों की भाषा। वर्ष 1975 में राजभाषा विभाग की स्थापना की गई और यह दायित्व सौंपा गया कि सभी केन्द्र सरकार के कार्यालयों/मंत्रालयों/उपक्रमों/बैंको आदि में अधिक से अधिक कार्य हिंदी में किया जाना सुनिश्चित किया जाए। उक्त के अनुपालन के लिए 1975 से ही राजभाषा विभाग केन्द्र सरकार के सभी कार्यालयों और विभागों में हिंदी को बढ़ावा देने के लिए अहम भूमिका का निर्वहन कर रहा है। राजभाषा को गति देने के लिए 1968 में एक संकल्प पारित किया गया एवं उसके अनुपालन में 1969 से प्रतिवर्ष लक्ष्य निर्धारित करते हुए एक वार्षिक कार्यक्रम जारी करता है एवं उसकी समीक्षा करता है। उक्त क्रम में वर्तमान सचिव राजभाषा ने राजकीय प्रयोजनों में राजभाषा हिंदी के प्रयोग-प्रसार को बढ़ाने तथा विकास की गति को तीव्र करने संबंधी संवैधानिक दायित्वों को पूर्ण करने के संबंध में प्रभावी रणनीति बनाते हुए राजभाषा के सफल कार्यान्वयन के लिए, राजभाषा विभाग, गृह मंत्रालय द्वारा बारह 'प्र' की रणनीति- रूपरेखा की संरचना की है। जो निम्न प्रकार है-

1. प्रेरणा (Inspiration And Motivation)

प्रेरणा (Inspiration) का सीधा तात्पर्य पेट की अग्नि (Fire in the belly) को प्रज्वलित करने जैसा होता है। हम सभी यह जानते हैं कि प्रेरणा में बड़ी शक्ति होती है और यह प्रेरणा सबसे पहले किसी भी चुनौती को खुद पर लागू कर दी जा सकती है। प्रेरणा कहीं से भी प्राप्त हो सकती है लेकिन यदि संस्थान का शीर्ष अधिकारी किसी कार्य को करता है तो निश्चित रूप से अधीनस्थ अधिकारी/कर्मचारी उससे प्रेरणा प्राप्त करते हैं।

2. प्रोत्साहन (Encouragement)

मानव स्वभाव की यह विशेषता है कि उसे समय-समय पर प्रोत्साहन की आवश्यकता पड़ती है। राजभाषा हिंदी के क्षेत्र में यह प्रोत्साहन अत्यंत महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है।

अधीनस्थ अधिकारियों/कर्मचारियों को समय-समय पर प्रोत्साहित करते रहने से उनका मनोबल ऊँचा होता है और उनके काम करने की शक्ति में बढ़ोतरी होती है।

3. प्रेम (Love And Affection)

वैसे तो प्रेम जीवन का मूल आधार है किंतु कार्य क्षेत्र में अपने शीर्ष अधिकारियों द्वारा प्रेम प्राप्त करना कार्य क्षेत्र में नई ऊर्जा का संचार करता है। राजभाषा नीति सदा से ही प्रेम की रही है यही कारण है कि आज पूरा विश्व हिंदी के प्रति प्रेम की भावना रखते हुए आगे बढ़ रहा है।

4. प्राइज अर्थात् पुरस्कार (Rewards)

राजभाषा विभाग, गृह मंत्रालय द्वारा प्रत्येक वर्ष 'राजभाषा कीर्ति पुरस्कार' और 'राजभाषा गौरव पुरस्कार' दिए जाते हैं। 'राजभाषा कीर्ति पुरस्कार' केंद्र सरकार के मंत्रालयों/विभागों/बैंकों/उपक्रमों आदि को राजभाषा के उत्कृष्ट कार्यान्वयन के लिए दिए जाते हैं और 'राजभाषा गौरव पुरस्कार' विभिन्न मंत्रालयों/विभागों/उपक्रमों/बैंकों आदि के सेवारत तथा सेवानिवृत्त अधिकारियों/कर्मचारियों द्वारा हिंदी में लेखन कार्य को प्रोत्साहित करने के लिए प्रदान किए जाते हैं। ये पुरस्कार 14 सितंबर, 'हिंदी दिवस' के दिन माननीय राष्ट्रपति महोदय द्वारा प्रदान किए जाते हैं। पुरस्कारों का महत्व इस बात से समझा जा सकता है कि देश के कोने-कोने से इन पुरस्कारों के लिए प्रविष्टियाँ आती हैं। जब मैंने राजभाषा विभाग का कार्यभार संभाला, उस समय स्मृति आधारित अनुवाद टूल 'कंठस्थ' के अंदर डेटाबेस को मजबूत करने के लिए स्वस्थ प्रतियोगिता एवं सचिव (रा.भा.) की ओर से प्रशस्ति-पत्र देने का निर्णय किया। इस कदम का यह परिणाम हुआ कि लगभग छह महीने के अंदर ही 'कठस्थ' का डाटा 20 गुना से ज्यादा बढ़ गया। इसलिए हम यह कह सकते है कि प्रतिस्पर्धा एवं प्राइज यानि पुरस्कार का महती योगदान होता है।

5. प्रशिक्षण (Training)

राजभाषा विभाग, गृह मंत्रालय केंद्रीय हिंदी प्रशिक्षण संस्थान तथा केंद्रीय अनुवाद ब्यूरो के माध्यम से प्रशिक्षण का कार्य करता है। पूरे वर्ष अलग-अलग आयोजनों में सैकड़ों की संख्या में प्रशिक्षणार्थी इन संस्थानों के माध्यम से प्रशिक्षण पाते हैं। कहते हैं- "आवश्यकता, आविष्कार और नवीकरण की जननी है।" कोरोना महामारी ने हम सभी के सामने अप्रत्याशित संकट और चुनौती खड़ी कर दी है। समय-समय पर प्रधानमंत्री जी ने राष्ट्र को संबोधित कर हम सभी को इस महामारी से लड़ने के लिए संबल प्रदान किया। इससे प्रेरित होकर राजभाषा विभाग, गृह मंत्रालय ने आपदा को अवसर में परिवर्तित कर दिया। सूचना और संचार प्रौद्योगिकी का आश्रय लेते हुए ई-प्रशिक्षण और माइक्रोसॉफ्ट टीम्स के माध्यम से हमारे दो प्रशिक्षण संस्थान– केन्द्रीय हिंदी प्रशिक्षण संस्थान तथा केन्द्रीय अनुवाद ब्यूरो ने पहली बार ऑनलाइन के माध्यम से प्रशिक्षण कार्यक्रमों का आयोजन किया। माननीय प्रधानमंत्री जी के 'आत्मनिर्भर भारत-स्थानीय के लिए

मुखर हो' । (Be Local for Vocal) अभियान के अंतर्गत राजभाषा विभाग द्वारा प्रशिक्षण कार्यक्रम को स्वदेशी NIC-Video Desk Top पर माइग्रेट किया जा रहा है।

6. प्रयोग (Usage)

यदि आप प्रयोग नहीं करते हैं तो आप उसे भूल जाते हैं (If you do not use it, you lose it)। हम जानते हैं कि यदि किसी भाषा का प्रयोग कम या न के बराबर किया जाए तो वह धीर-धीर मन-मस्तिष्क के पटल से लुप्त होने लगती है। इसलिए यह आवश्यक होता है कि भाषा के शब्दों का व्यापक प्रयोग समय-समय पर करते रहना चाहिए। अपने अधिक से अधिक काम में मूल रूप से हिंदी का प्रयोग करें ताकि अनुवाद की बैसाखी से बचा जा सके और हिंदी के शब्द भी प्रचलन में रहें।

7. प्रचार (Advocacy)

संविधान ने हमें राजभाषा के प्रचार का एक महत्वपूर्ण दायित्व सौंपा है, जिसके अंतर्गत हमें हिंदी में कार्य करके उसका अधिक से अधिक प्रचार सुनिश्चित करना है। हिंदी के प्रचार में हमारे शीर्ष नेतृत्व - माननीय प्रधानमंत्री जी तथा माननीय गृह मंत्री जी राजभाषा हिंदी के मेसकोट- ब्रैंड राजदूत (Brand Ambassadors) के रूप में अत्यंत महत्वपूर्ण भूमिका निभा रहे हैं। देश-विदेश के मंचों पर हिंदी के प्रयोग से राजभाषा हिंदी के प्रति लोगों का उत्साह बढ़ा है। हम जानते हैं कि स्वतंत्रता के संघर्ष के दौरान राजनीतिक, सामाजिक आदि क्षेत्रों में एक संपर्क भाषा की आवश्यकता महसूस की गई। संपर्क भाषा के रूप में हिंदी का पक्ष इसलिए प्रबल था क्योंकि इसका अंतरप्रांतीय प्रचार शताब्दियों पहले ही हो गया था। उसके इस प्रचार में किसी राजनीतिक आंदोलन से ज्यादा भारत के विभिन्न क्षेत्रों में स्थापित तीर्थ स्थानों में पहुंचने वाले श्रद्धालुओं का योगदान था। उनके द्वारा भिन्न-भिन्न भाषा-भाषियों के साथ संपर्क करने का एक प्रमुख माध्यम हिंदी भाषा थी, जिससे स्वतः ही हिंदी का प्रचार होता था। आधुनिक युग में प्रचार का तरीका भी बदला है। तकनीक के इस युग में संचार माध्यमों का बड़ा योगदान है। इसलिए राजभाषा हिंदी के प्रचार में भी इन माध्यमों का अधिकतम उपयोग समय की मांग है।

8. प्रसार (Transmission)

राजभाषा हिंदी के काम का प्रसार करना केंद्र सरकार के सभी कार्यालयों/बैंको/उपक्रमों आदि की प्राथमिक जिम्मेदारी में है और यह संस्था प्रमुख का दायित्व है कि वह संविधान के द्वारा दिए गए दायित्वों, जिसमें कि प्रचार-प्रसार भी शामिल है, का अधिक से अधिक निर्वहन करे। राजभाषा हिंदी का प्रयोग बढ़ाने और कार्यालयीन स्तर पर हिंदी में लेखन को प्रोत्साहित एवं प्रेरित करने में हिंदी गृह-पत्रिकाओं का विशेष महत्व है, इसलिए विभिन्न केंद्रीय संस्थानों द्वारा प्रकाशित सर्वश्रेष्ठ पत्रिकाओं के लिए राजभाषा विभाग द्वारा 'राजभाषा कीर्ति पुरस्कार' दिए जाते हैं। **राजभाषा विभाग द्वारा अपनी वेबसाइट rajbhasha.gov.in पर बनाए गए ई-**

पत्रिका पुस्तकालय के माध्यम से हिंदी के पाठक विभिन्न सरकारी संस्थानों द्वारा प्रकाशित होने वाली ई-पत्रिकाओं से लाभान्वित हो सकेंगे । राजभाषा हिंदी के प्रसार में दूरदर्शन, आकाशवाणी की महत्त्वपूर्ण भूमिका है । इसके साथ-साथ बॉलीवुड ने हिंदी के प्रसार में अद्वितीय योगदान दिया है ।

9. प्रबंधन (Administration And Management)

यह सर्वविदित है कि किसी भी संस्थान को उसका कुशल प्रबंधन नई ऊँचाइयों तक ले जा सकता है । इसे ध्यान में रखते हुए संस्था प्रमुखों को राजभाषा के क्रियान्वयन सम्बन्धी प्रबंधन की जिम्मेदारी सौंपी गई है । राजभाषा नियम, 1976 के नियम-12 के अनुसार केन्द्रीय सरकार के प्रत्येक कार्यालय के प्रशासनिक प्रधान का यह उत्तरदायित्व है कि वह राजभाषा अधिनियम 1963 के नियमों तथा समय-समय पर राजभाषा विभाग द्वारा जारी दिशा-निर्देशों का समुचित रूप से अनुपालन सुनिश्चित कराएं । इन प्रयोजनों के लिए उपयुक्त और प्रभावकारी जाँच-विदु बनवाएं और उपाय करें ।

10. प्रमोशन (पदोन्नति) (Promotion)

राजभाषा हिंदी में तभी अधिक ऊर्जा का संचार होगा जब राजभाषा कार्यान्वयन के लिए नियुक्त अधिकारी एवं कर्मचारी केंद्रीय सचिवालय राजभाषा सेवा संवर्ग के सदस्यगण सभी उत्साहवर्धक और ऊर्जावान हों और अपना कर्तव्य पूरी निष्ठा और समर्पण से निभाएं । समय-समय पर प्रमोशन मिलने पर निश्चित रूप से उनका मनोबल बढ़ेगा और इच्छाशक्ति सुदृढ़ होगी ।

11. प्रतिबद्धता (Commitment)

राजभाषा हिंदी को और अधिक बल देने के लिए मंत्रालय/विभाग/सरकारी उपक्रम/राष्ट्रीयकृत बैंक के शीर्ष नेतृत्व (माननीय मंत्री महोदय, सचिव, संयुक्त सचिव (राजभाषा), अध्यक्ष और महाप्रबंधक) की प्रतिबद्धता परम आवश्यक है । माननीय संसदीय राजभाषा समिति के सुझाव अनुसार और राजभाषा विभाग के अनुभव से यह पाया गया है कि जब शीर्ष नेतृत्व हिंदी के प्रगामी/उत्तरोत्तर ही नहीं, अपितु अधिकतम प्रयोग के लिए स्वयं मूल कार्य हिंदी में करते हैं तब उनके उदाहरणमय नेतृत्व (Exemplery Leadership) से पूरे मंत्रालय/विभाग/उपक्रम/बैंक को प्रेरणा और प्रोत्साहन मिलता है । जब वे हिंदी के लिए एक अनुकूल और उत्साहवर्धक वातावरण बनाते हैं और बीच-बीच में हिंदी के कार्यान्वयन की निगरानी (Monitoring) करते हैं तब हिंदी की विकास यात्रा और तीव्र होती है **जैसे कि गृह मंत्रालय और शिक्षा मंत्रालय में देखा गया है ।** अभी हाल में ही राजभाषा विभाग ने सबको पत्र लिखकर आग्रह किया है :

(क) हर माह में एक बार सचिव/अध्यक्ष अपनी अध्यक्षता में जब वरिष्ठ अधिकारियों की बैठक करते हैं तब इसमें हिंदी में काम-काज की प्रगति और राजभाषा के नियमों के कार्यान्वयन की मद भी अवश्य रखें और चर्चा करें ।

(ख) अपने मंत्रालय/विभाग/संस्थान में अपने संयुक्त सचिव (प्रशासन)/ प्रशासनिक प्रमुख को ही हिंदी कार्यान्वयन का उत्तरदायित्व दें और हर तिमाही में उनकी अध्यक्षता में विभागीय राजभाषा कार्यान्वयन समिति (OLIC) की बैठक करें।

12. प्रयास (Efforts)

राजभाषा कार्यान्वयन को प्रभावी रूप से सुनिश्चित करने की दिशा में यह अंतिम 'प्र' सबसे महत्वपूर्ण है। इसके अनुसार, हमें लगातार यह प्रयास करते रहना है कि राजभाषा हिंदी का संवर्धन कैसे किया जाए। **यहाँ कवि सोहन लाल द्विवेदी जी की पंक्तियां एकदम सटीक बैठती हैं कि**

लहरों से डर कर नौका पार नहीं होती
कोशिश करने वालों की हार नहीं होती

नन्हीं चीटी जब दाना लेकर चलती है
चढ़ती दीवारों पर सौ बार फिसलती है
मन का विश्वास रगों में साहस भरता है
चढ़कर गिरना, गिरकर चढ़ना न अखरता है
आखिर उसकी मेहनत बेकार नहीं होती
कोशिश करने वालों की हार नहीं होती

डुबकियां सिंधु में गोताखोर लगाता है
जा जाकर खाली हाथ लौटकर आता है
मिलते नहीं सहज ही मोती गहरे पानी में
बढ़ता दुगना उत्साह इसी हैरानी में
मुट्ठी उसकी खाली हर बार नहीं होती
कोशिश करने वालों की हार नहीं होती

असफलता एक चुनौती है, स्वीकार करो
क्या कमी रह गई, देखो और सुधार करो
जब तक न सफल हो, नींद-चैन को त्यागो तुम
संघर्ष का मैदान छोड़ मत भागो तुम
कुछ किये बिना ही जय-जयकार नहीं होती
कोशिश करने वालों की हार नहीं होती

संवैधानिक दायित्वों को पूर्ण करते हुए राजभाषा हिंदी को और अधिक सरल बनाने के लिए राजभाषा विभाग दृढ़ संकल्प और निरंतर प्रयासरत है। विभाग सूचना और संचार

प्रौद्योगिकी (Information and Communication Technology) का भी आश्रय ले रहा है। विभाग का मानना है कि राजकीय प्रयोजनों में हिंदी की गति को तीव्र करने के लिए ये दोनों **आवश्यक परिस्थितियां (Necessary Conditions) हैं। इस दिशा में और गति देने के लिए शीर्ष नेतृत्व की प्रतिबद्धता और प्रयास पर्याप्त परिस्थितियां (Sufficient Conditions) हैं।**

संघ की राजभाषा नीति के अनुसार, हमारा संवैधानिक दायित्व है कि हम राजभाषा सम्बन्धित अनुदेशों का अनुपालन तत्परता और पूरी निष्ठा के साथ करें। हम स्वयं मूल कार्य हिंदी में करते हुए अन्य अधिकारियों/कर्मचारियों से भी राजभाषा अधिनियमों का अनुपालन सुनिश्चित कराएं। ताकि प्रशासन में पारदर्शिता आए और आमजन सभी सरकारी योजनाओं व कार्यक्रमों का लाभ निर्वाध रूप से उठा सके। मुझे पूर्ण विश्वास है कि इन **बारह 'प्र'** को ध्यान में रखकर राजभाषा हिंदी का प्रभावी कार्यान्वयन करने की दिशा में सफलता प्राप्त होगी और हम सब मिलकर माननीय प्रधानमंत्री जी के **'एक भारत, श्रेष्ठ भारत, सुदृढ़ आत्मनिर्भर भारत'** के सपने को साकार करने में सफल होंगे।

राजभाषा परामर्शी
के.उ.ति.शि.सं., सारनाथ, वाराणसी
मो.नं.- 6387521396

राजभाषा हिंदी : उपलब्धि और समस्याएं

—डॉ. सुशील कुमार सिंह—

भारत में राजभाषा संबंधी जो सवाल पचास साल पहले हमारे सामने थे कमोवेश आज भी जस के तस बने हुए हैं, बल्कि यों कहें कि कुछ ज्यादा ही उग्र हुए हैं। हमारे देश में अंग्रेजी का मसला इतना महत्वपूर्ण हो गया है कि उसने हिंदी और अन्य भारतीय भाषाओं को दूसरे-तीसरे दर्जे पर पहुंचा दिया है। परंतु हमें यह ध्यान रखना चाहिए कि भाषा किसी देश के संस्कृति की पहचान होती है। भाषा के महत्व पर विचार रखते हुए आचार्य नरेंद्र देव लिखते हैं कि- "संस्कृति चिंतन की खेती है। इस चिंतन की सर्वाधिक मूर्त अभिव्यक्ति भाषा है क्योंकि भाषा ही मानवीय मूल्यों, नैतिकता और सामाजिकता का सक्रिय बोध कराती है।"

आजादी के समय से ही हिंदी अत्याचार और दमन के खिलाफ प्रतिरोध की भाषा रही है क्योंकि अपने भीतर के समस्त भाव को जितने सहज ढंग से हम अपनी भाषा में प्रकट कर सकते हैं उतनी सहजता से किसी अन्य भाषा में नहीं कर सकते। हिंदी के महान साहित्यकार अज्ञेय ने लिखा है कि "हिंदी की अपनी परंपरा सत्ता में रहने कि नहीं, सत्ता के विरुद्ध खड़ा रहने की रही है और आज उस परंपरा को हर स्तर पर पुनर्जीवित करने की जरूरत है।" भाषा के सवाल पर हिंदी के प्रसिद्ध कवि त्रिलोचन कहते हैं कि-

"भाषा की लहरों में
जीवन की हलचल है
ध्वनि में क्रिया भरी है,
और क्रिया में बल है।"

किसी देश की भाषा वहां की संस्कृति, सभ्यता, दर्शन, चिंतन और जीवन का प्रमाणिक दस्तावेज होती है। भाषा विचार विनिमय का साधन ही नहीं बल्कि वह हमें सोचना भी सिखाती है। हमारे सारे बुद्धि, वैभव, कला, साहित्य, राजनीतिक, आर्थिक, सामाजिक और सांस्कृतिक सरोकार भाषा से ही निर्मित हुए हैं।

राजभाषा से तात्पर्य उस भाषा से है जिसके माध्यम से किसी राज्य अथवा देश की शासन व्यवस्था संचालित होती है। स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद 14 सितंबर 1949 को हिंदी संवैधानिक रूप से देश की राजभाषा बनी। इसके पूर्व भारत पर अंग्रेजों का प्रभुत्व था अतः अंग्रेजी ही देश के सभी प्रशासनिक कार्यों के लिए प्रयुक्त होती थी। अपनी सरलता एवं सहजता के कारण हिंदी ने उत्तरोत्तर विकास किया। आज देश में हिंदी बोलने और लिखने वालों की संख्या निरंतर बढ़ी है। देश की कुल आबादी के तीन-चौथाई से अधिक लोग अपने सामान्य जीवन में हिंदी भाषा का

प्रयोग कर रहे हैं। इसे बोलने वालों में केवल हिंदी प्रदेश के लोग ही नहीं हैं अपितु हिंदीत्तर क्षेत्र के लोग भी शामिल हैं। सत्य तो यही है कि आज हिंदी किसी विशेष अंचल की भाषा नहीं रह गई है बल्कि यह समूचे देश की भाषा बन गई है।

राजभाषा बनने के बाद हिंदी ने काफी प्रगति की है। यही नहीं इसने देश की विभिन्न भाषाओं से जुड़कर अपने को समृद्ध किया है। ज्ञान-विज्ञान, उद्योग-व्यापार, शिक्षण-प्रशिक्षण, यात्रा-पर्यटन एवं संपर्क स्थापन सभी क्षेत्रों में हिंदी ने अपना यथोचित स्थान बनाया है। यह विदित है कि राजभाषा बनने के बाद हिंदी के विकास में जो गति आई है वह और भी तीव्र होती यदि भारतीय मानसिकता अंग्रेजी के मोह से मुक्त होती और हिंदी को जीविका की भाषा के रूप में अंग्रेजी के स्थान पर संवैधानिक रूप से प्रतिष्ठित कर दिया गया होता। स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद राजभाषा के रूप में प्रतिष्ठित होकर हिंदी ने जो विकास किया है उसे दो रूपों में व्यक्त किया जा सकता है । प्रथम यह की गैर सरकारी स्तर पर हिंदी विकसित हुई है और दूसरा यह कि हिंदी को राजभाषा का दर्जा मिलने के बाद केंद्र सरकार के कार्यालयों में हिंदी के प्रयोग में वृद्धि हुई है हालांकि यह वृद्धि उस स्तर तक नहीं है जिसकी परिकल्पना उसे राजभाषा बनाने के समय की गई थी। हिंदी की अपनी आंतरिक क्षमता तो बहुत पहले से ही विकसित है। आज न्यायपालिका, लोक सेवा संघ तथा प्रौद्योगिकी के क्षेत्र में भी हिंदी विकसित हो रही है। यदि उच्च प्रशासक, समृद्धशाली वर्ग, बड़े वाणिज्यिक संस्थान तथा बड़े-बड़े पब्लिक स्कूल अंग्रेजी का विमोह त्यागकर देश की एकता, सांस्कृतिक अस्मिता एवं राष्ट्रीय गौरव के रक्षार्थ अपना सक्रिय योगदान देते रहे तो हिंदी बहुत कम समय में देश के जनमानस की भाषा तथा जनतंत्रात्मक भारत की राजभाषा बन जाएगी।

एक तरफ जहां हिंदी ने राजभाषा के रूप में काफी प्रगति की है तो वहीं दूसरी तरफ उसके राह में अनेक रुकावटें भी खड़ी हैं जिसके कारण हिंदी को अनेक समस्याओं का सामना करना पड़ा है। भारत के राजभाषा अधिनियम में यह व्यवस्था की गई है कि जब तक एक भी राज्य असहमत रहेगा तब तक हिंदी को अनिवार्य रूप से संघ की राजभाषा नहीं बनाया जाएगा। यह एक गंभीर संवैधानिक समस्या है। इस प्रकार के अधिनियम को देखकर तो यही लगता है कि कहीं न कहीं जानबूझकर हिंदी को राजभाषा पद से वंचित करने का एक षड्यंत्र है, क्योंकि जिस दिन भारतीय संविधान में सर्वमत से यह निर्णय ले लिया जाएगा कि देश के हर सरकारी कार्यालयों में चाहे वह राज्य के अधीन हो या संघ के सबको हिंदी में कार्य करना अनिवार्य होगा उस दिन यह समस्या स्वत: समाप्त हो जाएगी। हमें 'नाउ ऑर नेवर' पर विचार करते हुए पूरे राष्ट्र को निर्णय लेना होगा अन्यथा यह समस्या सदैव बनी रहेगी। यदि हम यह निर्णय नहीं ले पाते हैं तो हिंदी की स्थिति त्रिशंकु जैसे होकर रह जाएगी वह न तो राजभाषा का दर्जा प्राप्त कर स्वर्ग जा सकती है और ना ही गिर कर धरती पर आ सकती है। हिंदी की दुर्दशा के लिए हमारी शासन

व्यवस्था ही सबसे ज्यादा जिम्मेदार है। राजभाषा की नई व्यवस्था के अंतर्गत यह प्रावधान है कि यदि केंद्र सरकार द्वारा पत्र हिंदी में भेजे जाएं तो उत्तर हिंदी में ही दिया जाए। तात्पर्य यह है कि यदि पत्र अंग्रेजी में आए तो उत्तर हिन्दी में दिया जा सकता है जबकि वास्तविकता तो यही है कि केंद्र के ज्यादातर पत्र अंग्रेजी में ही जारी होते हैं और उसके जवाब भी अंग्रेजी में ही दिए जाते हैं। इससे हिंदीकरण का प्रश्न अनिश्चितकाल के लिए टलता रहेगा।

कुल मिलाकर कहने का तात्पर्य यह है कि आज हम भूमंडलीकरण के दौर से गुजर रहे हैं। जहां व्यापार, उदारीकरण, बाजारीकरण तथा उपभोक्तावादी संस्कृति तीव्र गति से आगे बढ़ रही है और स्थानीय देशी तथा मौलिक संस्कृति को चुनौती दे रही है। ऐसी परिस्थिति में भारतीय संस्कृति एवं अस्मिता के प्रतीक के रूप में हिंदी भाषा का संरक्षण एवं संवर्धन नितांत आवश्यक है अन्यथा हम इस असंख्य भीड़ में गुमनाम होकर रह जाएंगे और हमारी हजारों वर्ष पुरानी संस्कृति लुप्त हो जाएगी। इसलिए सभी बुद्धिजीवियों, सरकारी कर्मचारियों, भाषाविदों, राजनेताओं और सामान्य जन से यह अपील है कि वे जहां हैं और जिस लायक हैं वहां से राजभाषा को आगे बढ़ाने का पुनीत प्रयत्न करें तभी जाकर हिंदी का कुछ भला हो सकेगा।

अतिथि प्राध्यापक
के.उ.ति.शि.सं., सारनाथ, वाराणसी
मो.नं.- 8005304374

राजभाषा का महत्व

—जे. पी. विश्वकर्मा—

प्रस्तावना-

जब मैं पक्षियों को चहचहाते हुए, सिंहो को दहाड़ते हुए, हाथियों को चिग्घाड़ते हुए, कुत्तों को भौंकते हुए तथा घोड़ों को हिनहिनाते हुए सुनता हूँ, तो अचानक मुझे ख्याल आता है कि ये सब अपनी भाषा में कुछ कहना चाहते हैं, बातचीत करना चाहते हैं। अपने प्रेम, क्रोध, घृणा अथवा ईर्ष्या को अपने भावों में अभिव्यक्त करना चाहते हैं, किन्तु मैं इनकी भावनाओं को पूरी तरह नहीं समझ पाता हूँ। तभी मैं सोचने लगता हूँ कि मानव कितना महान है कि उसे अपनी बात कहने के लिए लिखित भाषा का वरदान मिला है।

हर मनुष्य अपने भावों की अभिव्यक्ति किसी भाषा के माध्यम से ही करता है। भाषा के अभाव में न तो किसी सामाजिक परिवेश की कल्पना की जा सकती है और न ही सामाजिक व राष्ट्रीय प्रगति की। साहित्य, विज्ञान, कला, दर्शन सभी का आधार भाषा है। अतः किसी भी देश के निवासियों में राष्ट्रीय एकता और परस्पर सम्पर्क बनाये रखने के लिए एक ऐसी भाषा अवश्य होनी चाहिए, जिसका राष्ट्रीय स्तर पर व्यवहार किया जा सके।

भाषा के विभिन्न रूप-

पहले क्षेत्रीय या प्रादेशिक भाषा, राष्ट्रभाषा और राजभाषा के अन्तर को स्पष्ट करना उचित होगा। किसी देश के प्रदेश विशेष की भाषा को प्रादेशिक या क्षेत्रीय भाषा कहते हैं। जैसे- भारत में बंगला, मराठी, गुजराती, हिन्दी-पंजाबी इत्यादि हैं। जब कोई प्रादेशिक भाषा किन्हीं राजनीतिक, ऐतिहासिक या साहित्यिक कारणों से समूचे देश में फैलकर विभिन्न प्रदेशवासियों का पारस्परिक व्यवहार का माध्यम बन जाती है, तो उसे राष्ट्रभाषा कहते हैं। इसका आशय यह है कि किसी प्रदेश विशेष के निवासी आपसी व्यवहार में तो अपनी प्रादेशिक भाषा का ही प्रयोग करते हैं, किन्तु अलग-अलग भाषा-भाषी दूसरे प्रदेश वालों के साथ व्यवहार के समय एक ऐसी भाषा का प्रयोग करने को बाध्य हो जाते हैं, जो सारे देश में थोड़ी-बहुत समझी एवं बोली जाती है। इसी को राष्ट्रभाषा कहते हैं। भारत में मध्यकाल से ही हिन्दी को राष्ट्रभाषा बनाने का गौरव प्राप्त है। सरकार की ओर से ही नहीं, अपितु जनता की ओर से ही राजभाषा स्वीकार की जाती है।

राजभाषा से तात्पर्य एवं उसकी आवश्यकता-

किसी भी देश में सबसे अधिक बोली एवं समझी जाने वाली भाषा ही वहाँ की राष्ट्रभाषा राजभाषा होती है। प्रत्येक राष्ट्र अपना एक स्वतंत्र अस्तित्व रखता है। उसमें अनेक जाति, धर्म व

भाषाओं के बोलने वाले लोग रहते हैं। अतः राष्ट्रीय एकता को सुदृढ़ बनाने के लिए एक ऐसी भाषा की आवश्यकता होती है, जिसका प्रयोग प्रत्येक नागरिक कर सके। राष्ट्र के महत्वपूर्ण कार्य तथा केन्द्रीय सरकारी कार्य उसी के माध्यम से किया जा सके। ऐसी व्यापक भाषा ही राजभाषा कही जाती है। दूसरे शब्दों में राष्ट्रभाषा से तात्पर्य जनता की भाषा होती है।

राजभाषा मनुष्य के मानसिक एवं बौद्धिक विकास के लिए आवश्यक है। मनुष्य चाहे कितनी ही भाषाओं का ज्ञान प्राप्त कर ले, पर अपनी भावनाओं को व्यक्त करने के लिए उसे अपनी भाषा की शरण लेनी पड़ती है। इससे उसे मानसिक सन्तोष का अनुभव होता है। अतः राष्ट्रीय एकता को बनाये रखने के लिए उसे राष्ट्रभाषा व राजभाषा की ही आवश्यकता होती है।

राजभाषा का महत्व

राष्ट्र अथवा राज-भाषा का प्रयोग किसी देश तथा उसमें रहने वाले नागरिक तथा जनता दोनों के लिए होता है। देश के समस्त कार्य में प्रकाशन के क्षेत्र में विचार-विनिमय के लिए राजभाषा का अत्यन्त महत्व है। राजभाषा ही विभिन्न भाषा-भाषियों को एक सूत्र में बाँधे रखती है। अतः निश्चित रूप से यह कहा जा सकता है कि राजभाषा के माध्यम से ही देश की एकता की नींव को मजबूत आधार दिया जा सकता है।

भारत में राजभाषा की समस्या-

स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात् देश के सामने अनेक समस्याएँ विकराल रूप से खड़ी थीं। उन समस्याओं में राजभाषा की समस्या भी एक थी। इस समस्या का समाधान कानून बनाये जाने पर भी नहीं किया जा सका। इसका मुख्य कारण है कि भारत अनेक भाषा-भाषियों का विशाल देश है। अतः किसी न किसी स्थान से कोई न कोई विरोध राजभाषा की समस्या पर प्रश्नचिह्न लगता रहा है। अपने ही देशवासियों के विरोध के कारण भारत में राजभाषा की समस्या सबसे जटिल समस्या बन गई है।

राष्ट्रभाषा के रूप में हिन्दी की मान्यता-

संविधान के निर्माण के समय यह प्रश्न उठा कि कौन सी भाषा को राष्ट्रभाषा बनाया जाय? प्राचीनकाल में संस्कृत राष्ट्रभाषा थी। परन्तु धीरे-धीरे अन्य प्रान्तीय भाषाओं की उन्नति हो गई और संस्कृत अपनी पूर्व स्थिति से अलग हो गई। अंग्रेजी के शासनकाल में अंग्रेजी पूरे देश की भाषा बन गई। अंग्रेजी हमारे जीवन में इतनी बस गई कि अंग्रेजी शासन समाप्त हो जाने पर भी देश में अंग्रेजी के प्रति लगाव समाप्त नहीं किया जा सका। भारतीय संविधान द्वारा हिन्दी को राष्ट्रभाषा घोषित कर देने पर भी उसका उचित उपयोग नहीं किया जा रहा है। परन्तु फिर भी अनेक हिन्दी व अहिन्दी भाषी विद्वानों ने राष्ट्रभाषा के रूप में हिन्दी भाषा का ही समर्थन किया है तथा आज भी हिन्दी को उसका पूर्ण गौरव का दर्जा नहीं मिल पाया है।

हिन्दी हमारे देश की उन भाषाओं में है, जिसके द्वारा हमारे सभी सुधारकों, चिन्तकों एवं साहित्यकारों ने अपने विचारों का खुले तौर से प्रचार किया था। भारत की स्वतंत्रता से पूर्व ऐसे अनेक नेता और समाज सुधारक इस देश के अनेक क्षेत्रों में जन्मे हैं, जिन्होंने अहिन्दी भाषी होते हुए भी हिन्दी भाषा के उन्नयन एवं विकास में अपना महत्वपूर्ण योगदान किया है।

राजभाषा से लाभ-

हिन्दी के राजभाषा व राष्ट्रभाषा हो जाने से हमें अनेक लाभ हैं, जैसे-

राष्ट्रीय एकता- अंग्रेजी विदेशी भाषा है। उसने देश में एकता लाने का चाहे जितना प्रयत्न किया हो, वह सर्वथा असमर्थ रहेगी। क्योंकि इसमें अधिकांश जनता इसे अच्छी तरह से सीख नहीं पाई है। जबकि हिन्दी सभी सरलता से सीख सकते हैं। इसे सीख लेने पर आपस में विचारों का आदान-प्रदान सरलता से हो सकेगा। जिससे देश में एकता की भावना जागृत होगी।

शिक्षा की प्राप्ति में सफलता- अंग्रेजी अध्ययन में सभी छात्रों को अत्यन्त कठिनाई होती है। निरन्तर प्रयास के बावजूद वे ठीक से बोलना तथा लिखना नहीं सीख पाते। इस तरह हिन्दी के व्यवहार से इस समस्या से निजात पा सकते हैं।

राजभाषा हिन्दी के प्रति हमारा कर्तव्य- हिन्दी हमारी राष्ट्रभाषा / राजभाषा है। इसकी उन्नति ही हमारी उन्नति है। इस संबंध में भारतेन्दु हरिश्चन्द्र जी कहा भी है-

निज भाषा उन्नति अहै, सब उन्नति को मूल।
बिन निज भाषा ज्ञान के, मिटत न हिय को सूल॥

उपसंहार-

राष्ट्रभाषा / राजभाषा हिन्दी का भविष्य उज्ज्वल है। यदि हिन्दी विरोधी अपनी कुण्ठाओं को त्याग दें और हिन्दी-भाषी भी धैर्य, संतोष, प्रेम से काम लें, तो हिन्दी भाषा भारत के लिए समस्या न बनकर राष्ट्रीय जीवन का आदर्श बन जायेगी। हिन्दी को हम राष्ट्रभाषा / राजभाषा मानते हैं। वह राष्ट्रीय होने के लायक है। वही भाषा राष्ट्रीय भाषा बन सकती है, जिसे अधिक संख्या में लोग जानते एवं समझते हों, जो सीखने में सरल हो।

वरिष्ठ सहायक
के.उ.ति.शि.सं., सारनाथ, वाराणसी
मो.नं.- 6392344464

देवनागरी लिपि : विश्व की आधुनिकतम लिपि

—डॉ. बुद्धिनाथ मिश्र—

भारतीय ऋषि-मुनियों ने अपने ज्ञान को चिर-संचित रखने के लिए श्रुति-स्मृति यानी वाचिक परम्परा को ही विशेष निर्भर योग्य माना। इसलिए वाणी की शुद्धता पर अधिक जोर दिया। यहाँ तक कि भारत में सदियों 'शिक्षा' का अर्थ उच्चारण का शिक्षण ही रहा। व्याकरण के पितामह महर्षि पाणिनि ने 'अष्टाध्यायी' में सूत्र रूप में जो भाषिक व्यवस्था की, उसे स्पष्टतर करने के लिए दो सौ वर्ष बाद महर्षि कात्यायन ने उन सूत्रों पर वार्तिक लिखा और बचे-खुचे प्रश्नों के समाधान के लिए महर्षि पतंजलि ने 'महाभाष्य' रचा, जो भाषा के दर्शन की विशद व्याख्या है। इतना सब होते हुए भी पाणिनि की स्थापनाओं के अनुशीलन के लिए उनके अनुयायियों ने 'पाणिनीय शिक्षा' की रचना की, जिसमें मुख्यतः उच्चारण की बारीकियों को समझाया गया है। इसलिए कि जब सारी विद्या कंठस्थ रखने की अनिवार्यता है, जब सारा ज्ञान, सारी विद्या 'वाङ्मय' है, तब वाणी को शुद्ध रखना ही पड़ेगा। उच्चारण की विधि बताते हुए उसमें कहा गया है कि जैसे बाघिन अपने नवजात शिशु को अपने दाँतों से संतुलित ढंग से पकड़कर एक जगह से दूसरी जगह ले जाती है, वैसे ही शब्दों का उच्चारण अत्यंत सावधान होकर करना चाहिए। उसमें उच्चारण की महत्ता प्रतिपादित करने के लिए वृत्रासुर की कथा दी गयी है, जिसने इंद्र के वध के लिए बहुत बड़ा यज्ञ किया था, मगर उसमें हवन के मन्त्र 'इन्द्रशत्रुर्वर्धस्व' के उच्चारण में होताओं द्वारा उदात्त-अनुदात्त की भूल के कारण परिणाम उलटा हो गया! इसलिए, गुरुकुल में सारी वैदिक विद्या (धनुर्विद्या आदि सहित) शिष्यगण आचार्यों के पास बैठकर ही सीखते थे। वैदिक शास्त्रों को लिखना और लिखित शास्त्र को पढ़ना दोनों अधम कार्य माना जाता था। एक ओर यह कहा गया कि 'लिखितो अधम पाठकः' यानी लिखित वेद (शास्त्र) को पढ़नेवाला अधम है, तो दूसरी ओर माना गया कि 'कण्ठस्थे या तु सा विद्या' अर्थात कंठस्थ विद्या ही समय पर काम आनेवाली विद्या है। इसका प्रभाव अभी हाल तक रहा ,जब संस्कृत की श्लोकबद्ध 'लीलावती' (गणित की पुस्तक) 'अमरकोश' (शब्दकोश) आदि को बचपन में ही रटा दिया जाता था। उसीका प्रताप है कि जब अन्य भाषा के कवि शब्दों की तलाश में दिन-रात एक किये रहते हैं, हम जैसे संस्कृत की पारम्परिक शिक्षा पानेवाले विद्यार्थियों के सामने शब्द स्वयं हाथ जोड़े खड़े रहते हैं। एक-एक शब्द के बीस-बीस पर्याय और हर पर्याय का अलग-अलग अर्थ-वैशिष्ट्य! तीन-चार दशक पहले जिन बच्चों ने गुरूजी के डंडे के डर से सवैया-अढैया जैसे पहाड़े याद कर लिए, आज वे कंप्यूटर से होड़ ले रहे हैं। जो नहीं कर पाए, उन्हें आज छोटा-सा कैलकुलेटर नचा रहा है। सारांश यह कि भारत में ज्ञान-विज्ञान के

संरक्षण के लिए लिपि की आवश्यकता सहस्राब्दियों तक अनुभव नहीं की गयी, इसलिए लिपियों का अविष्कार यहाँ बाद में हुआ और वह भी अत्यंत सीमित प्रयोजनों के लिए। लिपि का मूल वैशिष्ट्य यह रहा कि जब स्मरण शक्ति जवाब दे, तब वह आगे बढ़कर सहयोग दे, क्योंकि वह 'अक्षर' अर्थात कभी नष्ट न होनेवाली है। वाचिक परम्परा पर आश्रित रहने के कारण ही हमारे पूर्वजों का दिव्य वैदिक ज्ञान आज की पीढ़ी तक अक्षुण्ण चला आया है। सोचता हूँ, यदि वह शुरू में ही लिपिबद्ध हो जाता, तो प्रस्तरों पर उत्कीर्ण विश्व के अन्य साहित्यों की भांति हमारा प्राचीन साहित्य भी न पढ़े जाने योग्य लिपियों में कैद होता!

मानव सभ्यता के भाषिक विकास में जो तीन महत्वपूर्ण पड़ाव रहे हैं, वे हैं -आंगिक संकेतों को ध्वनि-समूह में परिवर्तित कर शब्द बनाना, उन शब्दों को बोलना और फिर उन्हें लिपिबद्ध करना । इन तीनों भाषिक क्रांतियों में हमारे पूर्वजों ने अग्रणी भूमिका निभाई, जिसके कारण भारत सहस्राब्दियों तक विश्व-गुरु रहा । आज चौथी क्रांति के रूप में 'संगणक तंत्र' का युग आया है, जिसमें सबसे उपयुक्त लिपि होते हुए भी हमारी जड़ता के कारण देवनागरी लिपि समुचित स्थान नहीं पा रही है, जिसका नुकसान भारत को ही नहीं, संपूर्ण विश्व को हो रहा है । यदि थोड़ा विस्तृत फलक पर सोचें, तो देवनागरी वर्णमाला केवल संस्कृत, हिन्दी, मराठी, मैथिली और कुछ आदिवासी भाषाओं की ही वर्णमाला नहीं है, बल्कि सभी भारतीय भाषाओं के साथ-साथ श्रीलंका की सिंहली, तिब्बत की तिब्बती, नेपाल की नेपाली, म्यांमार की बर्मी, थाईलैंड की थाई, यहाँ तक कि इंडोनेशिया और मलेशिया तक की भाषाओं की वर्णमाला है। उनकी लिपियों की आकृतियाँ भिन्न भले दिखती हैं, मगर सभी के जीन्स एक हैं। जैसे एक माँ-बाप की संतानें आकृतियों से भले भिन्न हों, मगर सबके भीतर एक ही जीन्स है। अन्य विकसित राष्ट्रों की भाँति अगर हमने अपनी वर्णमाला के वैशिष्ट्य को समय से जान लिया होता तो चौथी (कंप्यूटर) क्रांति के दौर में हम नहीं पिछड़ते ! कितनी बड़ी विडंबना है कि विश्व की सिलिकन वैली में भारतीय युवकों का दबदबा होते हुए भी भारतीय वर्णमालाएँ विश्व की अन्य प्रमुख वर्णमालाओं की तुलना में बहुत पीछे हैं। अपनी मानसिक गुलामी की वजह से भारत का शिक्षित वर्ग अंग्रेजी को ही ओढ़ता-बिछाता रहा और दुनिया उसपर हँसती हुई आगे बढ़ गयी !

पृथ्वी पर समस्त प्राणी अपनी अभिव्यक्ति के लिए पृथक-पृथक ध्वनि का प्रयोग करते हैं। मानव ने सर्वप्रथम नाद से शब्द की परिकल्पना की। फिर उसे स्थायित्व देने के लिए चित्रलिपि का आविष्कार किया । गुहचित्रों से अक्षरों का आविष्कार हुआ । तदनंतर वर्णमाला विकसित हुई। अक्षरमाला पर आधारित लिपि में केवल ध्वनियों के चिह्न ही सीखने होते हैं। इन चिह्नों को जोड़कर उस भाषा के सभी शब्द पढ़ सकते हैं । अपरिचित शब्दों को भी पढ़ कर उच्चारित किया जा सकता है । इसके विपरीत, चीनी-जापानी भाषा की चित्रलिपियों में सैंकड़ों- हज़ारों

चिह्न सीखने पड़ते हैं। लेकिन इसका एक बड़ा लाभ भी है। चीनी और जापानी भाषा में 猫 चिह्न को देखकर चीनीभाषी और जापानीभाषी दोनों 'बिल्ली' का अर्थ प्राप्त करते हैं, लेकिन जापानी इसे 'नेको' पढ़ते हैं और मंदारिन में चीनी लोग इसे 'माओ' पढ़ेंगे।

भारतीय मनीषियों ने ध्वनि के उच्चारण में शरीर के विभिन्न अवयवों की हरकतों को पहचानकर शरीर-विज्ञान के अनुरूप भारतीय वर्णमाला की रचना की। सर्वप्रथम स्वर और व्यंजन दो पृथक वर्ग बनाये । फिर व्यंजनों में कंठ-तालु-मूर्धा-दन्त-ओष्ठ से उच्चरित व्यंजनों को वर्णमाला में क्रमशः स्थान दिया। ऋषियों ने यह भी पाया कि प्रत्येक वर्ग के पांचों अक्षर-क ख ग घ ङ—का एक क्रम से उच्चारण करने पर शरीर की ऊर्जा कम खर्च होती है। स्वरों में उदात्त-अनुदात्त-स्वरित और व्यंजनों में महाप्राण-अल्पप्राण के भेद किये गए। इसी क्रम में ध्वनि के उच्चारण से उत्पन्न मंत्र शक्ति को साधने के लिए कुंडलिनी, षट्चक्र आदि कि संकल्पना की गयी। साधकों के अनुसार,षट्चक्र की प्रत्येक पँखुडी पर एक-एक अक्षर विद्यमान हैं। उन अक्षरों पर ध्यान केंद्रित करने से चक्र-सिद्धि होती है। इसीलिए हमारे यहाँ मान्यता है कि अमंत्रमक्षरम् नास्ति । अर्थात वर्णमाला के प्रत्येक अक्षर में मंत्र-शक्ति है । विश्व की अन्य तीन प्रमुख वर्णमालाओं (चीनी, यूरोपीय और अरबी-फारसी) में यह सूक्ष्म विवेचन नहीं है।

भारत में लेखन का इतिहास भी कम प्राचीन नहीं है । वेदों को लिखना मना था, मगर महाभारत को तो महर्षि व्यास ने गणेशजी को कहकर लिखवाया था। मतलब यह कि वाचिक परंपरा का वर्चस्व होते हुए भी लिपि का आविष्कार विधिवत हो चुका था,क्योंकि संस्कृत के श्लोकों को लिपिबद्ध करना मामूली बात नहीं थी । वैसे, भारत की सबसे पहली लिपि **सरस्वती लिपि** (सिन्धु लिपि) मानी जाती है। इसी प्राचीन सरस्वती लिपि से ब्राह्मी लिपि निकली । सरस्वती लिपि के तिरोहित होने के बाद संस्कृत लिखने के लिए ब्राह्मी लिपि ही प्रचलन मे आयी। यह वैदिक शिक्षा पर आधारित लिपि है और आज की देवनागरी की भाँति बाँये से दाँये की ओर लिखी जाती थी । यह मात्रात्मक लिपि थी, यानि व्यंजनों पर मात्रा लगायी जाती थी । वर्णों का क्रम वही है जो आधुनिक भारतीय लिपियों में है। कुछ व्यंजनों के संयुक्त होने पर उनके लिए 'संयुक्ताक्षर' का प्रयोग भी हुआ है। ब्राह्मी लिपि से निकली कई लिपियाँ भारतीय भाषाओं के साथ-साथ पार्श्ववर्ती देशों की भाषाओं की लिपि भी बनी। आज से दो हजार वर्ष पूर्व विकसित ये लिपियाँ वर्णों की आकृतियों में कुछ-कुछ भिन्नता लिए हुए हैं- तमिल लिपि, देवनागरी लिपि, मैथिली-बांग्ला-असमिया-ओडिया लिपि, गुजराती-गुरुमुखी लिपि, मलयालम लिपि, सिंहल लिपि, कन्नड़ लिपि, तेलुगु लिपि, तिब्बती लिपि, भुंजिमोल, कोरियाली, थाई, बर्मेली, लाओ, ख्मेर लिपि आदि।

भारत के पश्चिमोत्तर सीमा प्रांतों में चौथी-तीसरी शताब्दी ई.पू. में खरोष्ठी लिपि भी प्रचलित थी, जो अरबी लिपि की तरह दांये से बांये को लिखी जाती थी। इसका एक नाम गान्धारी लिपि भी है। खरोष्ठी के अधिकतर शिलालेख प्राचीन गंधार देश में ही मिले हैं। यह लिपि गान्धारी और संस्कृत भाषा को लिपिबद्ध करने में प्रयोग में आती रही। कुषाण काल में इसका प्रयोग भारत में बहुत हुआ। भारत में इस्लामी शासन के साथ जैसे अरबी-फ़ारसी लिपि के आधार पर दाईं ओर से बाईं ओर लिखी जाने वाली उर्दू लिपि बनाई गयी, उसी प्रकार भारत के पश्चिमोत्तर प्रदेश पर ईरानियों का अधिकार हो जाने के बाद वहां ई.पू. पांचवी शताब्दी में आरमेई लिपि के आधार पर दाहिनी ओर से बाईं ओर लिखी जाने वाली खरोष्ठी लिपि का निर्माण हुआ। ईरान के हखामनी शासन-काल में संपूर्ण पश्चिम एशिया में आरमेई भाषा तथा लिपि का प्रचार था। तक्षशिला से भी आरमेई लिपि में लिखा हुआ एक शिलालेख मिला है। सिकन्दर के भारत-आक्रमण (326 ई.पू.) के बाद, पश्चिमोत्तर प्रदेश तथा बल्ख पर शासन स्थापित होने के बाद यूनानियों ने भी अपने सिक्कों पर खरोष्ठी लिपि का ही उपयोग किया। यूनानियों से पहले ईरानी शासकों के चांदी के सिक्कों पर खरोष्ठी के ठप्पे मिलते हैं। यूनानियों के बाद शक, क्षत्रप, पह्लव, कुषाण तथा औदुंबर राजाओं ने भी इस लिपि का प्रयोग किया।

भाषाओं को लिखने के लिए प्रयुक्त मानक प्रतीकों के क्रमबद्ध समूह को वर्णमाला (=वर्णों की माला यानी समूह) कहते हैं। देवनागरी की वर्णमाला में अ आ इ ई उ ऊ ऋ ॠ ऌ ॡ ए ऐ ओ औ अं अः क ख ग घ ङ। च छ ज झ ञ। ट ठ ड ढ ण। त थ द ध न। प फ ब भ म। य र ल व श ष स ह को 'देवनागरी वर्णमाला' कहते हैं और a b c d ... z को रोमन वर्णमाला (रोमन अल्फाबेट) कहते हैं। देवनागरी लिपि में प्रत्येक वर्ण और उसका नाम एक ही है। रोमन, अरबी आदि में यह वैज्ञानिक व्यवस्था नहीं है। वर्णमाला का पर्याय 'अल्फाबेट' भी ग्रीक वर्णमाला 'अल्फा, बेटा' को संयुक्त कर बना है, जो अ और ब वर्ण का नाम है। अरबी में भी 'अलिफ़ बे' अ और ब का ही नाम है। देवनागरी की असीम वैज्ञानिकता के कारण ही अमेरिकी अंतरिक्ष संस्थान 'नासा' के वैज्ञानिक इसकी मदद से सर्वश्रेष्ठ कंप्यूटर भाषा विकसित करने में लगे हैं। इस लिपि में सामान्य और विशिष्ट ध्वनियों के पृथक वर्णों की प्रचुरता, उनका परस्पर स्पष्ट आकार-भेद, लिखावट में सरलता, स्थान-लाघव और प्रयत्न-लाघव। अन्य लिपि की वर्तनी में जो अराजकता है, उससे नागरी सर्वथा मुक्त है। प्रयोक्ता की दृष्टि से नागरी इसलिए सहज है कि यह सुस्पष्ट और सम्पूर्ण है। महर्षि पाणिनि ने ईपू 4थी सदी में न केवल संस्कृत भाषा का मानकीकरण किया, बल्कि नागरी लिपि का भी परिष्कार किया। उसके बाद भी 12वीं शताब्दी तक इसमें संशोधन होता रहा। परिवर्तन की गति तब और तीव्र हो गयी जब हिंदी

को स्वतन्त्र भारत की राष्ट्रभाषा के रूप में स्वतंत्रता सेनानियों ने देखना प्रारम्भ किया। हिंदी साहित्य सम्मेलन और नागरी प्रचारिणी प्रचारिणी सभा ने इसमें ऐतिहासिक भूमिका निभाई। स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद केंद्र सरकार ने संविधान के निर्देशों का पालन करते हुए केन्द्रीय हिंदी निदेशालय को यह काम सौंपा, जिसके बाद प्रशानिक दृष्टि से इसमें कुछ अपेक्षित परिवर्तन किये गए। इस निदेशालय ने एक परिवर्धित देवनागरी लिपि विकसित की है, जिसमें अन्य बहुत सी भाषाओँ की ध्वनियों का समावेश कर लिया गया है।

इस समय देवनागरी के समक्ष सबसे बड़ी चुनौती है कम्प्यूटर के साथ इसका तालमेल बिठाना । नागरी लिपि पूर्ण तर्क-संगत, आधुनिकतम और सर्वाधिक वैज्ञानिक होने के बावजूद भारतीयों में विलुप्त राष्ट्रीय स्वाभिमान के कारण आज के दौर में पिछड़ रही है। यदि भारतीय विकसित देशों की ओर नजर दौड़ाएँ तो उन्हें पता चलेगा कि कितनी कठिनाइयों को झेलकर जापानियों ने अपनी चित्रलिपि को कंप्यूटर की लिपि बनायीं। इसी तरह रोमन जैसी अराजक लिपि कंप्यूटर के उपयुक्त लिपि बन गयी, मगर राष्ट्रीय स्तर पर शिक्षितों की उपेक्षा की शिकार हिंदी उत्तरोत्तर पिछड़ रही है । स्वतन्त्र भारत के उज्ज्वल भविष्य के लिए यह अच्छा लक्षण नहीं है। हमारी वर्णमाला और उसमें संरक्षित विशाल ज्ञान-भण्डार तभी बच पाएगी, जब अगली कई सदियों पर राज करने वाले कम्प्यूटर तंत्र से इसे पूरे मन से और पूरी ऊर्जा से जोड़ दिया जाए।

पूर्व मुख्य प्रबंधक (राजभाषा)
ओ.एन.जी.सी., देहरादून
मो.नं.- 6397677279

हिन्दी-प्रयोग में अशुद्धियाँ :
सम्मान-भाव की कमी या सहज अनावधानता

—ओम धीरज—

सृष्टि की सर्वोत्तम कृति मनुष्य है। यह सम्भव हुआ है, उसमें निहित चेतना की वृद्धिमान शक्ति के कारण। वस्तुत: 'चेतना मनुष्य को मिला सबसे उज्ज्वल वरदान है'। चेतना की अभिव्यक्ति के लिए भाषा का उपहार भी मनुष्य को ही मिला है। भाषा ही मनुष्य को अन्य प्राणियों से अलग और विशिष्ट बनाती है। वास्तव में भाषा से समाज की निर्मिति होती है और समाज से राष्ट्र की। भाषा ही समाज को जोड़ती और संस्कारित करती है। हर समाज की अपनी मातृभाषा तो होती ही है, दूसरे समाज में जुड़ने के लिए अन्य भाषाओं का आदान-प्रदान भी चलता है। जिस समाज या राष्ट्र की भाषा जितनी अधिक सहज-सम्प्रेषणीय, सामान्य मानकीकृत और अनुभव-वैविध्य से सम्पन्न होती है, वह उतनी ही अधिक सक्षम और समृद्ध भाषा मानी जाती है। वस्तुत: भाषा जीवन-निर्वाह ही नहीं अपितु सांस्कृतिक प्रवाह का अनिवार्य माध्यम है। यह हमारी जातीय अस्मिता और स्वाभिमान से जुड़ा मामला भी है। जो व्यक्ति या समाज अपनी भाषा का सम्मान और उससे प्रेम नहीं करता, वह अन्य भाषा-भाषी समाज में भी सम्मान और प्रेम का पात्र नहीं होता।

हर देश या राष्ट्र की पहचान उसकी भाषा से ही होती है। पहचान की यही भाषा उसकी राष्ट्र-भाषा कहलाती है। बहुभाषी देशों की भी अपनी एक भाषा सर्वसमावेशी-सार्वदेशिक भाषा होती है जो अन्तर्राष्ट्रीय और अन्तर्देशीय संवाद का माध्यम होती है। अपनी भाषा पर गर्व करना अपनी अस्मिता और अपने अस्तित्व को राष्ट्रीय संवेग से सम्बद्ध करना है। प्रखर राष्ट्रीय पत्रकार अमर शहीद गणेशशंकर विद्यार्थी के साप्ताहिक पत्र 'प्रताप' (1913) मुख्य पृष्ठ पर सदैव संकल्प-वाणी के रूप में छपती रही ये पंक्तियाँ आज भी कितनी सारगर्भित और प्रेरणादायी हैं, सहज द्रष्टव्य हैं–

"जिसको न निज भाषा तथा निज देश का अभिमान है,
वह नर नहीं, नर-पशु निरा है और मृतक समान है।"

हिन्दी के युग-निर्माता आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदी द्वारा रचित ये अमर पंक्तियाँ[1] आज और भी अधिक प्रासंगिक हो उठी हैं, जब भूमंडलीकरण और आर्थिक उदारीकरण के कारण अंग्रेजी जैसी बहुसंख्यक देशों में प्रसरित भाषा का दबाव देशी भाषाओं पर बुरी तरह से बढ़ने लगा है। कहना न होगा कि आज पूरे राष्ट्र में हिन्दी ही इससे सर्वाधिक प्रभावित होने वाली भाषा है। आज महानगर, शहर ही नहीं गाँव-गाँव में कुकुरमुत्ते की तरह उग रहे अंग्रेजी माध्यम के

स्कूलों ने हिन्दी माध्यम की शिक्षा को धीरे-धीरे कमजोर करना शुरू कर दिया है। ऐसे समय में अपनी राष्ट्र-भाषा हिन्दी के प्रति सम्मान-आदर और प्रेम-भाव को बनाए रखना और भी अधिक चुनौतीपूर्ण कार्य है।

हिन्दी हमारी राष्ट्र-भाषा है। स्पष्ट है कि संवैधानिक रूप से यह राष्ट्रीय-सम्मान का हकदार भी है। वस्तुत: राष्ट्रीय चिन्हों-प्रतीकों के प्रति उच्च सम्मान-भाव का अन्तर्निहित दायित्वबोध हमारे नागरिक-शिष्टाचार का एक आवश्यक अंग है। राष्ट्रीय सम्मान के इन प्रतीकों के साथ थोड़ा भी छेड़-छाड़, गलत व्यवहार हमें तिलमिला कर रख देता है। राष्ट्र-ध्वज का गलत तरीके से प्रयोग हो, चाहे राष्ट्र-गान का गलत गायन या फिर राष्ट्रीय चिह्नों का दुरुपयोग, देखते ही हर सजग नागरिक उद्वेलित और आक्रोशित हो उठता है। यह आक्रोश-भाव राष्ट्र-प्रेम, राष्ट्रीय स्वाभिमान और सम्मान-भाव-बोध के कारण ही उत्पन्न होता है। यदि हम इन राष्ट्रीयताबोधी चीजों के प्रति इतना अधिक सम्मान या आदर भाव रखते हैं तो राष्ट्र-भाषा हिन्दी के प्रति क्यों नहीं ? यह एक विचारणीय प्रश्न है।

राष्ट्र-भाषा के नाते हमारे लिए अनिवार्य होना चाहिए कि हर भारतवासी को हिन्दी का सामान्य ज्ञान रहे। इस दिशा में एक ताजा दृष्टान्त रखना प्रसंगत: समीचीन है। अभी कुछ दिनों पहले वाराणसी में एक हिन्दी मासिक पत्रिका के तेरहवें वर्ष में प्रवेश करने के उपलक्ष्य में प्रकाशित विशेषांक के विमोचन के अवसर पर शहर के एक प्रतिष्ठित नेत्र-चिकित्सक ने अत्यन्त आर्द्र स्वर में बतलाया कि इस समय मेरे पास बहुत सारे बच्चे आते हैं, जिनकी दृष्टि-जाँच में हिन्दी-अक्षरों की पट्टिका बेकार हो जाती है, वे नहीं पढ़ पाते। उन्हें अंग्रेजी के अक्षरों की पट्टिका पढ़ने को देनी पड़ती है। उसी समय उनका एक कथन और भी चौंकाने वाला रहा कि एक धर्म-विशेष के बच्चे एक भाषा विशेष की पट्टिका को बाकायदे पढ़ते हैं। तात्पर्य यह कि हिन्दी के प्रति हिन्दी प्रदेश की नयी पीढ़ी का यह व्यवहार अफसोस-जन्य नहीं बेहद चिन्ताजनक है। हिन्दी लिपि से दूर रहने वाले, देश के इन भावी कर्णधारों से राष्ट्रीय-भाषा के गौरव-बोध की कामना करना किसी अन्धे से इन्द्रधनुष के रंगों की पहचान पूछने जैसा है।

प्रसंगवश, हिन्दी-प्रयोग की अशुद्धियों पर विचार किया जाना है। हिन्दी भाषा के प्रति यह उपेक्षाभाव ही है जो उसके बोलने और लिखने के अशुद्ध-प्रयोगों में दिखता है। दूसरे शब्दों में 'सब चलता है' का देसी-बोध गलत-सही के अन्तर की भरपाई कर देता है। दैनन्दिन जीवन में बाजारों, व्यापारिक प्रतिष्ठानों, शिक्षण संस्थानों में हिन्दी की नाम-पट्टिकाओं (साइनबोर्ड) को देखकर आपको अनेक उदाहरण अशुद्ध लेखन के मिल जायेंगे। इस सम्बन्ध में कुछ बुद्धिजीवियों का तर्क होता है कि ये ध्यान आकर्षित करने के लिए जानबूझ कर लिखे होते हैं। माना कि 'बाजार की गणित और उसकी एक अलग भाषा' होती है, परन्तु क्या सचमुच उस गणित से ही नाम-पट्टिकाएँ गलत लिखी गयी हैं, या अज्ञानता-उदासीनता के कारण ? यह भी एक प्रश्न है। जब

किसी सरकारी कार्यालय, शिक्षण-संस्थान के मुख्य-द्वार, कक्ष-द्वार या दीवारों पर लिखी गयी सामग्री में वर्त्तनी या वाक्य-प्रयोग विषयक अशुद्धियाँ दिखती हैं तो क्यों वर्षों-वर्षों उसी तरह पड़ी रहती हैं, क्या यह उपेक्षा भाव या उदासीनता का परिचायक नहीं है ? ये अशुद्धियाँ पढ़े-लिखे लोगों खासकर जिम्मेदार बौद्धिकों को क्यों नहीं खटकतीं ? क्या इसे उनकी अज्ञानता मान ली जाय ? या फिर सहज उदासीनता ?

किसी भी भाषा का आम जनता से साक्षात् संवाद करने का सबसे सशक्त और सर्वाधिक प्रचलित माध्यम अखबार यानी समाचारपत्र ही होता है । इन दैनिक समाचारपत्रों से प्रतिदिन पाठक अपनी रुचि की भाषा से जुड़ता है जिससे उसके शब्द-ज्ञान का भंडार बढ़ता है, वाक्य-प्रयोगों की कुशलता से परिचित होता है और सही एवं शुद्ध वर्त्तनी के प्रति संज्ञान में भी वृद्धि होती है । साप्ताहिक, पाक्षिक आदि पत्र-पत्रिकाएँ भी कमोवेश इस दिशा में योगदान देती हैं, परन्तु इनकी प्रसार संख्या कम होने से दैनिक की तुलना में आम आदमी के संपर्क के अवसर कम होते हैं । कहना न होगा कि स्वतंत्रता प्राप्ति के पूर्व हिन्दी नवजागरण काल एवं स्वाधीनता संघर्ष में समाचार-पत्रों की भूमिका इस दिशा में स्वयं सिद्ध रही है । हिन्दी गद्य एवं काव्य के भाषा-निर्माण में इन पत्रों ने युगान्तरकारी कार्य किया । आजादी के दो-तीन दशक बाद तक इन पत्रों की विश्वसनीयता इस कदर रही है कि शब्दों की वर्त्तनी की शुद्धता के लिए लोग उन दिनों अखबारों का सहारा लेते थे । वस्तुतः उस समय तक तक शब्द-कोशों की उपलब्धता नगण्य-सी थी । सही शब्द के प्रयोग और वर्त्तनी की शुद्धता पर आँख-मूँद कर इन अखबारों पर विश्वास किया जाता था, कारण तत्कालीन पत्रकार एवं सम्पादक प्रायः साहित्यकार होते थे और पत्रकारिता मिशन । दुर्भाग्य से बढ़ते भौतिकवादी जीवन-वृत्ति और बाजारवाद के कारण यह मिशन अब प्रोफेशन में बदल गया है । अखबारों का उद्देश्य भाषा या साहित्य का संवर्द्धन नहीं वरन् धनार्जन हो गया है, जिससे भाषा के प्रति समर्पित योग्य पत्रकारों-सम्पादकों की कमी से समाचारपत्रों का स्तर प्रभावित हुआ है । आये दिन गलत वाक्य-प्रयोग, शब्द-वर्त्तनी के उदाहरण 'ढूँढ़ के नहीं' सरसरी निगाह से भी देखे जा सकते हैं । यह स्थिति भी हमारे 'काम चलाऊ' दृष्टिकोण के कारण ही है । यदि सम्पादन कार्य से जुड़े व्यक्ति अपनी भाषा के सम्मान एवं स्वाभिमान की भावना रखते तो कदाचित यह विश्वसनीयता न घटती ।

समाचार-पत्रों के त्वरित मुद्रण एवं प्रेषण के दबाव से ये त्रुटियाँ हो जाती हैं, जैसे तर्क यद्यपि स्वीकार नहीं किए जा सकते, तथापि यदि यह मान भी लिया जाय तो साहित्यिक कही जाने वाली पत्रिकाओं-पुस्तकों को इसके लिए छूट नहीं दी जा सकती । डॉ. राम शंकर त्रिपाठी के शब्दों में कहा जाय तो "हिन्दी-लेखक-कवि-पत्रकार और ज्ञान विज्ञान के विविध क्षेत्रों में हिन्दी भाषा का प्रयोग करने वाले अध्यापक एवं विद्वान शब्द और भाषा के स्वरूप पर कम ध्यान देते हैं । ज्यादातर किताबें, पत्र-पत्रिकाएँ भाषिक अशुद्धियों से भरी रहती हैं । कम्प्यूटर क्रान्ति से भाषा

के स्वरूप में और मार्जन आना चाहिए था। लेकिन हो रहा है एकदम उल्टा। पहले जब हैण्ड-कम्पोजिंग हुआ करती थी, तब की पुस्तकें-पत्रिकाएँ उठाकर देखिए-क्या मजाल कि कोई शब्द अशुद्ध छपा मिल जाय। अब प्रूफ की भद्दी से भद्दी भूलें बढ़ती जाती हैं।"[2] बताने की आवश्यकता नहीं कि हैण्ड प्रिण्टिंग के समय टेक्नालाजी आज के मुकाबले कितनी पिछड़ी हुई थी, कितनी श्रम-साध्य थी, कितने श्रमिक संसाधन लगते थे, कितने स्तर पर मैनुअल काम होता था, कल्पना करना भी आज मुश्किल है। यह तथ्य तो पूरे एक लेख में भी स्पष्ट नहीं किया जा सकता। ऐसे कठिन समय में मुद्रण की शुद्धता जिम्मेदार लोगों की सत्यनिष्ठा एवं भाषा के प्रति श्रद्धा व सम्मान-भाव के ही कारण थी। उनका यह कार्य तत्समय राष्ट्रीय भावना से भी अनुप्राणित था, वास्तव में 'उस युग में हिन्दी की प्रतिष्ठा एवं उसके भविष्य का प्रश्न राजनीति के पचड़े में नहीं पड़ा, बल्कि यह जातीय संस्कृति का शंखनाद था, जिसे समस्त देशवासियों ने स्वीकार किया।' प्रसिद्ध विद्वान एवं सम्पादक कल्याण मल लोढ़ा ने अपने इस अभिमत के पूर्व यह भी स्पष्ट किया है कि '19वीं एवं 20वीं शताब्दी के प्रारम्भ में हिन्दी का जो पक्ष राष्ट्रीय संस्कृति के परिप्रेक्ष्य में लिया गया था, वह भविष्य की आधारशिला थी।' [3] तात्पर्य यह कि तत्समय की उक्त राष्ट्रीय चेतना अब धीरे-धीरे ह्रासमान होती जा रही है, जो चिन्ता का विषय है।

भाषा-प्रयोग में अशुद्धियाँ कई स्तर पर होती हैं, सही वाक्य विन्यास का न होना, सामासिक शब्दों के प्रयोग में त्रुटि, शब्दों के वर्त्तनी में अशुद्धि आदि। लेख की सीमा एवं मर्यादा में प्रसंगवश कुछ सामान्य सी त्रुटियों का उल्लेख करना ही समाचीन होगा। यह अज्ञात नहीं है कि हिन्दी की लिपि 'देवनागरी लिपि' है। यह लिपि अत्यन्त वैज्ञानिक है। यह संसार की सबसे अधिक ध्वन्यात्मक लिपि है। इसके वर्ण उच्चारण का अनुसरण करते हैं, यानी जो बोला जाता है, वही लिखा जाता है। यदि बोलना या उच्चारण शुद्ध है तो लिपि भी शुद्ध होगी, बशर्ते जानबूझकर अवज्ञा न की जाय। इस सम्बन्ध में एक लेखक का कथन ध्यातव्य है। "हिन्दी भाषा में प्रयुक्त नागरी लिपि के वैज्ञानिक स्वरूप का वर्णन करते हुए माइक्रोसॉफ्ट के संस्थापक विल गेट्स ने अनायास ही नहीं कहा है कि 'जब बोलकर लिखने की तकनीक विकसित हो जाएगी, हिन्दी सर्वाधिक सफल भाषा होगी' प्रसन्नता है कि इस प्रकार की तकनीक के प्रारम्भिक चरण दिखायी पड़ने लगे हैं।"[4] वस्तुतः आज बोलकर लिखने का 'डिवायस' बाजार में आ चुका है। निश्चित ही यह डिजिटल क्रान्ति का युग, भाषा साहित्य और सूचना-तन्त्र को अनेक तरह से प्रभावित करने वाला युग है, जिसका भविष्यत्-प्रभाव अभी परीक्षणाधीन है।

आज सामान्य ढंग से पायी जाने वाली त्रुटियों में सर्वप्रथम अनुस्वार और अनुनासिक ध्वनि-लिपियाँ हैं। आज पाँचों वर्गों के पंचम वर्णों तथा अनुनासिक ध्वनियों को प्रकट करने के लिए एक ही चिन्ह (ऊपरबिन्दु) प्रायः प्रयोग होने लगा है। जबकि वर्तमान में कुछ छूट देते हुए प्रथम दो पंचमाक्षर क वर्ग तथा च वर्ग में अनुस्वार (ऊपरबिन्दु) की मान्यता तो दे दी गयी, यहाँ

तक कि 'ट' वर्ग के अन्तिमाक्षर 'ण' को भी बाहर कर अनुस्वार का प्रयोग प्रचलन में आ गया, परन्तु 'त' वर्ग का 'न' तथा 'प' वर्ग के 'म' के प्रयोग के बदले अनुस्वार का प्रयोग उच्चारण की सुविधा एवं पाठक की समझ के लिए अत्यन्त कठिन है। अनुनासिक ((चन्द्रबिन्दु) का लोप कर दिये जाने से भी तमाम विसंगति उत्पन्न होती हैं। चाँद, फाँसी, साँप, आँख, ऊँट, काँटा चाँटा, जाँता, बाँह, आदि अनुनासिक युक्त शब्दों के स्थान पर यदि चांद फांसी आदि लिखा जाता है और इसी तरह चंद, हंस जैसे शब्द भी प्रयोग में लाये जाते हैं तो सामान्य हिन्दी पाठक या अन्य भाषा-भाषी को हिन्दी सीखने में क्या कठिनाई आयेगी, सहज ही समझा जा सकता है। कुछ उदाहरण देखें– चांद (चाँद) को चंद (चन्द) लोग आज भी मामा कहते हैं, इसी तरह 'विमला हंस को देखकर हंस (हँस) रही थी।' यह वर्तनी-विपर्यय अनुमान-साध्य है, जो सहज साध्य नहीं कहा जा सकता। इसी तरह हिन्दी को (हिंदी) सन्त्रास को (संत्रास), सन्ताप को (संताप) सन्तान को (संतान) लिखा जाना कहाँ तक उचित है ! यदि इस तरह की अशुद्धि के साथ 'हिंदी' के बगल में 'मेंहदी' लिखी हो तो दोनों बिन्दियों को नया हिन्दी सीखने वाला भला कैसे उच्चारित करेगा ! यदि इसी तरह के प्रयोग से अभ्यस्त व्यक्ति 'उपन्यास' को उपंयास या 'जन्म' को जंम, 'विन्यास' को विंयास भी लिखने लगे तो कैसा अनर्थ होगा।

स्वरहीन म-कार की बात की जाय यानी 'प' वर्ग के प, फ, ब, भ, म इन पाँचो वर्णों के पहले 'म्' (आधा 'म') आये तो उसके स्थान पर अनुस्वार (ऊपर बिन्दु) रखना शब्द के साथ अत्याचार करने जैसा है, जो अब किया जाने लगा है। चम्पा, पम्पा, कम्पन, बिम्ब, कुम्भ, शम्भु, आरम्भ आदि की जगह चंपा, पंपा, कंपन, बिंब आदि लिखने वाले सम्मति को संमति, सम्मान को संमान, सम्पत्ति को संपत्ति, सन्मति को संमति आदि लिखेंगे तो आश्चर्य नहीं होगा। यह शब्द सौष्ठव के लिए उचित नहीं है, इनके उच्चारण में दोष होगा जो धीरे-धीरे अशुद्ध बोलने वाले और समझने वालों की संख्या में वृद्धि ही करता जायेगा। यह स्थिति हिन्दी के लिए निश्चित ही शोकदायी होगी।

'ट' वर्ण का एक वर्ण ढ है जिसमें नीचे बिन्दी लगाकर (ढ़) भी लिखा जाता है, जिसका अलग-अलग उच्चारण होता है। सामान्य त्रुटियाँ कुछ यूँ की जाती हैं जहाँ 'ढ' लिखना है, वहाँ 'ढ़' लिख दिया जाता है और कहीं इसका उलट भी किया जाता है। उदाहरण एक वाक्य प्रयोग में देखें- रमेश किताब पढ़ना (पढना) छोड़कर ढाबे (ढ़ाबे) पर चाय पीने चला गया। यहाँ कोष्टक में अशुद्ध लेखन है।

उपर्युक्त कथन उदाहरण मात्र हैं। ऐसी अनेक प्रकार की त्रुटियाँ-अशुद्धियाँ आज प्रयोग में होने लगी हैं। कहीं-कहीं काफी पढ़े-लिखे व्यक्ति भी व्यक्तिगत पत्र में पते के नाम के साथ 'सर्वश्री' लिखने की कवायद कर बैठते हैं। प्रसिद्ध हिन्दी निबन्धकार प्रोफेसर कान्ति कुमार जैन के स्वयं का संस्मरणीय दृष्टान्त उल्लेखनीय है- "कुछ दिनों पहले मेरे पास एक निमन्त्रण पत्र आया

जिसके लिफाफे पर मेरा नाम अंकित था- सर्वश्री कान्ति कुमार जैन। यह निमन्त्रण नगर की एक नवगठित साहित्यिक संस्था की ओर से था जिसके संयोजक विश्वविद्यालय के एक प्रोफेसर साहब थे।"[5] उक्त प्रोफेसर को हिन्दी के पी-एच.डी. डी. लिट उपाधि धारी होने का जिक्र करते हुए वे इस 'सर्वश्री' होने की शरम से पानी-पानी हो गये थे। बताने की आवश्यकता नहीं कि श्री का बहुवचन सर्वश्री है, जो पहले नाम के साथ लगाकर शेष अन्य नामों को जोड़ दिया जाता है, जिससे बार-बार श्री लिखे जाने से मुक्ति मिल जाती है। इसी तरह का एक अन्य 'आँखों देखा दृष्टान्त' मेरे एक साहित्यिक मित्र ने भी सुनाया। उन्हें हिन्दी के एक सहायक प्रोफेसर के घर पर 'नेम प्लेट' पर लिखी गयी अशुद्धि भी भीतर तक कोंच गयी थी-युगल नाम पट्टिका पर पति का नाम तो सही था, परन्तु पत्नी के नाम में अनुस्वार की जगह अनुनासिक का प्रयोग कर दिया था, जैसे-श्रीमती अँजनी सिन्हा। 'सूचनार्थ के लिए', साभार सहित, सुस्वागतम, सज्जन आदमी (जबकि सज्जन ही पर्याप्त है) जैसी गलतियाँ भी कभी-कभार दिख जाती हैं। आशीर्वाद को आर्शीवाद, अन्तर्विरोध को अर्न्तविरोध, कवयित्री को कवियित्री, लिखे जाने जैसी अशुद्धियाँ भी लोग करने लगे हैं। गुरु-शुरु में अन्तर भी प्रायः भूलने लगे हैं लोग। इस तरह की अशुद्धियों के अनेक कारणों में एक कारण शब्द या वर्ण के प्रति उच्चारण की त्रुटि भी है। यदि आपसी संवाद में या सामान्य बोल-चाल में उच्चारण के प्रति असतर्क रहा जाय तो लिखने में भी वह त्रुटि बनी रह जायेगी। पूर्वांचल में 'व' को 'ब' बोलने की उसी तरह आदत है जैसे अँग्रेजी के 'वी' को 'भी'। वन को बन, वृद्धि को बृद्धि, चिह्न को चिन्ह लिखना इसी उच्चारण अशुद्धि के कारण है। इस सम्बन्ध में संस्कृत के एक श्लोक को उद्धृत करना अप्रासंगिक नहीं होगा-

"यद्यपि बहु नाधीषे तथापि पुत्र पठ व्याकरणम्।
स्वजनः श्वजनो माभूत सकलः शकलः सकृच्छकृत।।"

अर्थ अधिक कठिन नहीं है, किन्तु जान लेना ठीक रहेगा। कोई ठीकठाक पढ़ा-लिखा, समझदार पिता अपने विद्या-विमुख, लापरवाह लड़के से कह रहा है-बेटे, व्याकरण पढ़ लो, बहुत अधिक विद्यार्जन करो, न करो। क्योंकि भाषा का, शब्द का मर्म न जानने से तुम 'स्वजन' को 'श्वजन' (चाण्डाल), 'सकल' को 'शकल' (खण्ड, टुकड़ा) और सकृत को 'शकृत' (विष्ठा) बना डालोगे।"[6] कहने की आवश्यकता नहीं कि उच्चारण दोष के कारण अर्थ का अनर्थ तो होता ही है, समाज में बोलने वाले की मर्यादा भी क्षीण होती है। उच्चारण और वर्त्तनी से तालमेल व्यक्ति को सदैव रखना चाहिए क्योंकि किसी भी भाषा का वाक्-सामर्थ्य उसकी वर्त्तनी से साकार-सगुण होता है।

सारांशतः कहा जाय तो इन अशुद्धियों-गलत प्रयोगों के लिए हिन्दी भाषा के प्रति हमारे भीतर सम्मान-भाव की कमी ही मुख्य कारण है। पाँचों वर्ण-वर्गों में अनुस्वार का प्रयोग, चन्द्रबिन्दु की उपेक्षा आदि के लिए प्रायः लोग कम्प्यूटर को दोष देते हैं, यह बिल्कुल गलत है।

कम्प्यूटर-सेट में, कॉमा, फुल-स्टाप, सेमी-कोलन, डैश, हाइफन, बड़े-मझोले-छोटे ब्रैकेट, इनवर्टेड कामा, अपस्ट्रॉफी आदि के सभी चिन्ह मौजूद रहते हैं। आवश्यकता है, प्रयत्न लाघव या शार्ट-कट से बचने की। इन प्रयोगों के प्रति हमारा असावधान रहना भी एक प्रमुख कारण है। ये असावधानियाँ वे भी करते हैं जो उर्दू का यत्किंचित नुख्ता प्रयोग करना नहीं छोड़ते, अंग्रेजी के टेढ़े-मेढ़े शब्दों की वर्त्तनी में नहीं चूकते। तात्पर्य यह कि हम हिन्दी के प्रति 'घर की भाषा' समझकर कुछ उसी तरह व्यवहार करते हैं, जिसके लिए एक मुहावरा कहा जाता है-'घर की मुर्गी साग बराबर'। यदि हम अपनी भाषा के प्रति सम्मान भाव नहीं रखते तो दूसरे भाषा-भाषी से कैसे उम्मीद कर सकते हैं ! आज जरूरत है, हिन्दी के प्रति उसी लगाव की, उसी राष्ट्रीय चेतना की, जो स्वाधीनता पूर्व नव जागरण काल में हमारे पूर्वजों में थी, हमारे राष्ट्र–नेताओं में थी। कहना न होगा कि उस विपरीत परिस्थिति में जब हिन्दी का पूर्णतः विकास भी नहीं हुआ था, आर्य समाज के संस्थापक दयानन्द सरस्वती, आचार्य केशवचन्द्र सेन और महर्षि अरविन्द, बाल गंगाधर तिलक, राजगोपालाचार्य, महात्मा गाँधी, सुभाषचन्द्र बोस जैसे अहिन्दीभाषी महनीय व्यक्तित्वों ने हिन्दी के प्रयोग और विकास के लिए अपना महत्वपूर्ण योगदान दिया। आगे चलकर विनोबा भावे, काका कालेलकर, के. एम. मुंशी, श्रद्धाराम फुल्लौरी, मोटुरि सत्यनारायण, नवीनचन्द्र राय, विष्णुराव सखाराव पराड़कर जैसे अनेक नाम इस श्रंखला में जुड़ते हैं। राजर्षि पुरुषोत्तम दास टंडन, पं. मदन मोहन मालवीय जैसे शताधिक हिन्दी भाषी महापुरुषों का नाम तो उस कड़ी में है ही। ऐसे राष्ट्रीय नायकों के पद चिह्नों पर चलकर हर भारतवासी को अपनी राष्ट्रभाषा हिन्दी के प्रति राष्ट्रीय चेतना से ओत-प्रोत हार्दिक सम्मान भाव रखना चाहिए। इसके लिए प्रथम सोपान हिन्दी व्याकरण का ज्ञान और वर्त्तनी आदि का शुद्ध प्रयोग तथा उच्चारण ही है। अस्तु हर हिन्दी प्रेमी के घर में एक अदद व्याकरण और शब्दकोश का रखा जाना अनिवार्य होना चाहिए। दैनिक प्रयोग में भी शब्दों की लिखावट में अशुद्धियों पर ध्यान देते रहने की आदत विकसित करनी होगी, केवल औपचारिक पत्र या लेख में सतर्क होने से काम नहीं चलेगा। दैनिक प्रयोग और औपचारिक प्रयोग में सतर्कता की मानसिकता में अन्तर के कारण कभी-कभार शब्द विशेष की वर्त्तनी के प्रति द्विधा की स्थिति उत्पन्न होती है। ऐसी स्थिति में शब्द कोष का सहारा लेना चाहिए। अध्येता को चाहिए कि वह संशय की स्थिति में सही वर्त्तनी का ज्ञान होने पर कहीं नोटबुक में लिख भी ले ताकि भविष्य में उस शब्द के लिए बार-बार शब्द कोष न पलटना पड़े। शब्द कोश और व्याकरण को कभी-कभार पढ़ते रहने से शब्द एवं वाक्य प्रयोगों की त्रुटि की संभावना से बचा जा सकता है। वास्तव में भाषा-प्रयोग की शुद्धता हमारे सामाजिक सम्मान के लिए भी आवश्यक है।

इतिशुभम्

♦

सन्दर्भ सूची–

1. गणेशशंकर विद्यार्थी, संचयन, सं. सुरेश सलिल, पृष्ठ-20
2. शब्दों का सम्मान और वर्त्तनी स्नेह, पृष्ठ-50
3. समकालीन सृजन पत्रिका, अंक 18, पृष्ठ-66
4. अलह राम छूट्या भ्रम मोरा, डॉ. उदय प्रताप सिंह, पृष्ठ-113
5. इक्कीसवीं शताब्दी की हिन्दी, डॉ. कान्ति कुमार, पृष्ठ-49
6. वही क्रमांक-2, पृष्ठ-46

पूर्व अपर आयुक्त, वाराणसी
मो.नं.- 9415270194

राजभाषा हिन्दी बनाम जनभाषा हिन्दी

—प्रकाश उदय—

जनभाषा हिन्दी और राजभाषा हिन्दी में एक अन्तर तो यह है कि हिन्दी जनभाषा 'है', राजभाषा यह 'बनी है' । बनी भी नहीं है, 'बनाई गई है' । बनी तो फिर भी नहीं है, पूरे मन से, इसलिए कि पूरे मन से शायद बनाई भी नहीं गई है, लेकिन उसकी बात बाद में, अभी उसकी बात जो हिन्दी बिना किसी किन्तु-परन्तु के है। जनभाषा। जो कि वह किसी संवैधानिक जिक्र के बिना भी है । सच तो यह है कि हिन्दी का ही नहीं, किसी भी भाषा का जीवितमात्र होना ही उसके जनभाषा होने के लिए काफी से कहीं ज्यादा है । इस लिहाज से हिन्दी, सिर्फ और सिर्फ 'हिन्दी' कही जाकर भी जनभाषा है, लेकिन राजभाषा कहने के लिए उसे 'राजभाषा हिन्दी' कहना जरूरी है शायद। फिर भी कोई राजभाषा हिन्दी कर के हिन्दी है, इससे बेहतर किस्म की बात है यह, कि कहें कि हिन्दी राजभाषा है । हालाँकि हिन्दी के राजभाषा होने में कोई संशय जरूर है जो इसे अलग से 'राजभाषा हिन्दी' कहने को उकसाता है । संभव है कि इसी संशय की छूत उसके जनभाषा होने को भी लग गई हो, जिसके चलते उसे 'जनभाषा हिन्दी' कहना भी, जितना विचित्र है, उतना रह नहीं गया है। विचित्र तो यह भी है, लेकिन है तो है, कि हिन्दी के राजभाषा होने ने उसके जनभाषा होने को, और उसके जनभाषा होने ने उसके राजभाषा होने को एक चुनौती-सी दे रखी है। इस विमर्श-विषय 'राजभाषा हिन्दी बनाम जनभाषा हिन्दी' के चयन में भी उस चुनौती को महसूस किया जा सकता है।

हिन्दी के साथ लगा हर विशेषण, चाहे वह राजभाषा हो या जनभाषा, हिन्दी के लिए निर्भ्रांत रूप से घाटे का सौदा है, लेकिन इससे भी इन्कार का कोई मतलब नहीं रह गया है कि घाटे के हो या मुनाफे के, ये विशेषण अब हिन्दी के मत्थे लगभग मढ़े जा चुके हैं। ऐसे में इनकी तरफ से सकारात्मक तरीके से कुछ सोचना भी बनता तो है ही । हिन्दी, एक खास तरह से, खास तवज्जो के साथ 'जनभाषा' कही जाए, ऐसी है भी । इसलिए कि इसकी एक बड़ी भूमिका स्वतंत्रता-आंदोलन को 'जन'-आंदोलन में बदलने में रही है। गांधी जी और सुभाष चंद्र बोस जैसे अनेक इतर भाषा-भाषी नेताओं ने इसके 'जन'-जागरण और 'जन'-संवाद-सामर्थ्य की पहचान की थी। हालाँकि, लगता नहीं कि देश में 'जन'-तंत्र लाने वाली भाषा के बतौर इसे 'जन'-भाषा कहने का कोई रिवाज चला हो, लेकिन हो सकता है कि किसी गुपचुप तरीके से ऐसा हो भी। तरीके से तो राजतंत्र के साथ ही 'राज'-भाषा जैसी अवधारणा को भी विदा हो लेना चाहिए था, जनतंत्र के लिए, वैसे भी, राजभाषा की तुलना में 'जन'-भाषा संबोधन जरा ज्यादा मुफीद तो है ही। लेकिन, जनभाषा तो इस देश की हर चलती भाषा है, हर भाषा के अपने जन हैं, और आजादी की लड़ाई

में भी, भला किस भाषा की, किस भाषा के जन की भूमिका से इन्कार किया जा सकता है ! ऐसे में सवाल यह है कि हिन्दी की स्थिति उनसे अलग क्या है, कैसे है ? वह सिर्फ ऐसे है कि जो भोजपुरी जन हैं, जो अपने जन से भोजपुरी में बतियाते हैं, और जो गढ़वाली जन हैं, जो अपने जन से गढ़वाली में बतियाते हैं वे भोजपुरी और गढ़वाली जन एक-दूसरे से देश की जिस भाषा में बतियाते हैं, बतियाऽ सकते हैं, वह हिन्दी ही है। वह भारत की कई जनभाषाओं के संवाद-परस्पर की भाषा के तौर पर जनभाषा है। वह जनभाषा, जो देश के किसी भिन्न भाषा-भाषी को देश के किसी भिन्न भाषाभाषी समूह में भिन्न होने, विजन में होने के अहसास से बचाती है, बचा सकती है। हिन्दी ने अपने इस सामर्थ्य को एक हद तक हिन्दी-परिवार के बाहर की भाषाओं के बीच भी साबित किया है । किसी पंजाबी-भाषी और किसी गुजराती-भाषी के संवाद-परस्पर की भी सर्वाधिक सहज-संभव भाषा हिन्दी ही है, और अगर नहीं भी है तो वही हो सकती है। यह जरूर है कि दक्षिण भारतीय भाषाओं के बीच की भाषा बनने की क्षमता हिन्दी ने अभी अर्जित नहीं की है, लेकिन ऐसा भी नहीं कि उस दिशा में उसके कदम बढ़े ही नहीं हैं, और यह तो तय है कि उस क्षमता को अर्जित करने की क्षमता अगर किसी भारतीय भाषा में है, तो वह सिर्फ और सिर्फ हिन्दी है। हालाँकि उसके पीछे कुछेक लेकिन जरूर लगे हैं। उन लेकिनों को समझने के लिए इस हिन्दी को इसके राजभाषा वाले सिरे से समझने की कोशिश करते हैं।

हिन्दी को राजभाषा का दर्जा दिया गया तो उसके पीछे यह वजह तो थी नहीं कि वह अन्य भारतीय भाषाओं से अधिक साहित्य-संपन्न भाषा है। इस मामले में दूसरी कई भारतीय भाषाएँ उससे, तब तो थीं ही, आज भी आगे हैं। वह सबसे बड़े भूभाग और सबसे बड़ी जनसंख्या की भाषा है, यह एक वजह संभव है कि हो। इसकी संभावना इसलिए भी ज्यादा है कि इस बड़े भूभाग और बड़ी जनसंख्या के चलते उसे राजभाषा ही कहा गया, राष्ट्रभाषा नहीं कहा गया, क्योंकि भारत के समस्त भूभाग और समस्त जनसंख्या की भाषा वह तब तो नहीं ही थी, अब भी नहीं है। लेकिन, जो बड़ा वाला भूभाग और बड़ी वाली जनसंख्या हिन्दी की कही जाती है वह भी दरअसल दूसरी-दूसरी भाषाओं का भूभाग है, दूसरी-दूसरी भाषाओं की जनसंख्या है, यह भी सच है। मेरठ के आसपास की कौरवी या सरहिन्दी का आधार लेकर विकसी हिन्दी की विकास-यात्रा में उसकी आधार-भाषा के रूप में दूसरी भी बहुतेरी भाषाएँ जुड़ती गई हैं और इसके चलते एक सच तो यह है कि आज हिन्दी जिस रूप में है उस रूप में सिर्फ कौरवी का भाषा-भूगोल ही उसका अपना नहीं रह गया है, दूसरा सच यह है कि कौरवी का भाषा-भूगोल भी उसका अपना नहीं रह गया है, वहाँ की भी पहली भाषा, मातृभाषा वह नहीं है। ऐसे में हिन्दी को राजभाषा का दर्जा देने का एक आधार तो यह है कि वह देश की इकलौती भाषा है जो कहीं की मातृभाषा नहीं है, पहली भाषा नहीं है, और इस नाते देश की दूसरी किसी भाषा से इसकी कोई होड़ नहीं है, दूसरी वजह यह है कि दूसरी भाषा के रूप में जितनी जमीन और जितनी जनसंख्या हिन्दी के पास

है उतनी दूसरी किसी भारतीय भाषा के पास नहीं है । हो सकता है कि अधिक-से-अधिक भाषाओं के लोगों को एक-दूसरे से जोड़ने की जो अनन्य भूमिका हिन्दी ने स्वतंत्रता-संग्राम के 1850-57 से 1942-47 के दौर में निभाई थी, उसी के आभार-प्रदर्शन के रूप में उसे राजभाषा का दर्जा दे दिया गया हो, इस भरोसे के साथ कि हिन्दी अपनी इस भूमिका को आगे भी निभाएगी, भरसक विस्तार भी देगी । यह तो दिखता है कि जिस दक्षिण भारत से हिन्दी नहीं बतिया5 पाती थी, और उससे बतियाने की भाषा संस्कृत के बजाय अंग्रेजी हो चली थी, उस अंग्रेजी को भी 15 बरस के लिए हिन्दी के साथ लगा लिया गया, इस उम्मीद में शायद कि इतने बरसों में हिन्दी उधर से भी अपने बल पर बतियाने की बेंवत बना लेगी ।

लेकिन काश कि ऐसा होता ! सच तो यह है कि एक जनभाषा को हमने, चाहे जिस उत्साह में, राजभाषा बना तो लिया, लेकिन हम जानते थे कि आजादी हासिल कर लेने के बावजूद हमने व्यवस्था नहीं बदली है, व्यवस्था जो अंग्रेजों ने बनाई थी, वही हमने ज्यों-की-त्यों स्वीकार कर ली है, और वह जो अंग्रेजों की बनाई व्यवस्था है, वह जाहिर है कि अंग्रेजी के हिसाब से है, हिन्दी के हिसाब से नहीं है, वह अंग्रेजी से ही चलेगी, अंग्रेजों और अंग्रेजी से लड़ती रहने की आदती हो चली हिन्दी से वह चलेगी नहीं । इसलिए अंग्रेजी को राज-काज में रखे रहने की मजबूरी कुछ-कुछ वैसी ही थी जैसी आजादी के बाद भी कुछ काल तक अंग्रेज वायसराय को उसके पद पर बनाए रखने की मजबूरी थी । राज-काज में 15 साल अंग्रेजी के साथ के जो निर्धारित किए गए थे, हम जानते हैं कि आज तक वे पूरे नहीं हुए । पूरे नहीं हुए तो इसलिए कि इन 15 वर्षों को हमने व्यवस्था को धीरे-धीरे हिन्दी के हिसाब से, जिसका मतलब है कि हिन्द के हिसाब से, हिन्दुस्तान के हिसाब से, बदलने में नहीं खर्च किया, हमने उसे हिन्दी को ही व्यवस्था के हिसाब से बदलने में खर्च किया । और क्या-क्या किया हमने इस हिन्दी को राजभाषा के लायक बनाने के लिए, कितना-कितना, इसका अगर लेखा-जोखा सामने रखें, कितने आयोग, कितने विभाग, कितने अधिकारी, कितनी प्रतियोगिताएँ, कितने अनुवाद, कितनी किताबें, कितने पुरस्कार तो एक पहाड़ खड़ा हो जाए । उस पहाड़ को खोदें तो उम्मीद करनी चाहिए कि कुछ तो निकलेगा ही, वह 'नाकामी' ही क्यों न हो ! हिन्दी आजतक अकेले दम राज-काज के लायक नहीं हो पाई । 15 साल के लिए साथ लगाई गई अंग्रेजी बेचारी को आज तक उसे ढोना पड़ रहा है ! वह हिन्दी की हिन्दी ही रह गई, अंग्रेजी नहीं हो पाई । हमने जो तय किया था कि जमीन पर रह कर तैरना सीख लेगी तभी इस हिन्दी को पानी में उतारेंगे, दुर्भाग्य से वह हो नहीं पाया । जितने गौर से उसे किनारे खड़े होकर अंग्रेजी के पानी में तैरने के तरीकों को देखना और समझना चाहिए था, उतने गौर से वह देख नहीं पाई, उतनी गहराई से समझ नहीं पाई । ऊँचे दर्जे की कचहरियों और ऊँचे दर्जे की पढ़ाइयों को तो खैर, पहले ही दिन से पता था, लेकिन अच्छी बात यह हुई कि इन 70-75 वर्षों में इस देश के आम आदमी तक भी यह बात लगभग पहुँच गई कि हिन्दी एक ना-

लायक भाषा है, जब खुद उसे ढंग से कुछ सीखने नहीं आता, तो उसे सीखने से भला क्या होना, क्या पाना !

कोई यह कहे कि हिन्दी अपने दम आज तक राजभाषा नहीं हुई, यह हमारी विफलता है, तो इसका मतलब यह हुआ कि हमलोगों ने सचमुच यह सोच लिया था कि कुछ सरकारी इमदादों से, कुछ अफसरीय और विद्वत्प्रयत्नों से राजकाजी हिन्दी के रूप में एक नई भाषा बनाई जा सकती है, और अगर ऐसा है तो इसका एक मतलब यह भी हुआ कि हम उस देश के हैं ही नहीं, जिस देश को पाणिनि-पतंजलि-भर्तृहरि-कात्यायन जैसे भाषा-विमर्शकारों के साथ जीने का गौरव हासिल है। भाषा को लेकर भला इतना विज्ञान-विरुद्ध हम सोच भी कैसे सकते हैं ! ऐसे में कुछ अच्छा-अच्छा सोचने की कोशिश करते हैं । हम मान लेते हैं कि आजादी पाने के दौर में राष्ट्रभक्ति के नशे में चूर हम हिन्दुस्तानियों पर राष्ट्रभाषा का एक खुमार जो चढ़ा था, उसे सहलाने भर के लिए ही हमने हिन्दी को राजभाषा का दर्जा दे दिया था, और उस नशे और खुमार को उतारने के लिए ही उसके साथ अंग्रेजी को भी जोड़ दिया था। अब अगर हम यह समझते हैं कि हमारे लोगों ने इस हिन्दी को एक नए रूप में, राजभाषिक स्वरूप में ढालने के लिए पन्द्रह वर्षों का समय लिया था, और इस तरह भाषा के विज्ञान के विरोध में जाकर कोई संकल्प ले लिया था, तो हम गलत समझते हैं। हमने इसका दिखावा भर किया था क्योंकि इसका दिखावा ही किया जा सकता था। दस वर्ष वस्तुतः हमने इसलिए लिए थे कि जनता की भाषा जनता के लिए है, सत्ता के लिए नहीं है, इसे लोग, भले ही दस वर्ष लग जाएँ, लेकिन बिना समझाए समझ जाएँ। और इस तरह, हमने धर्म के नाम पर अभी-अभी खून से नहाए इस देश को, दरअसल, भाषा के नाम पर एक और रक्त-स्नान से बचाया भी, यह श्रेय भी ले सकते हैं। हिन्दी को राजभाषा बनाकर हिन्दी को लेकर जरूरत से ज्यादा ही कुछ हम हुलसितों को और उसके साथ ही अंग्रेजी को रख कर, हिन्दी से उतना नहीं जितना हमारे हुलास से झुलसितों को भी, एक तो चुप करा दिया गया था, और दूसरे, सत्ता के पूर्ववत सुचारु संचालन का जुगाड़ भी जुटा लिया गया था। हमारी विफलता यह नहीं है कि हम 15 क्या, 70-75 बरस लगाकर भी हिन्दी को राजकाज के लायक नहीं बना पाए, हमारी विफलता यह है कि उसके राजकाज के नाकाबिल होने की बात अपनी जनता को बिना समझाए समझाने में हमें दस क्या, 70-75 बरस लग गए, और तब भी बात अभी पूरी तरह से बनी नहीं है, इतनी ही बनी है कि आज जब अपने कुछ प्राथमिक माध्यमिक सरकारी स्कूलों को हम मॉडल स्कूल बनाने के नाम पर अंग्रेजी स्कूल बनाने की तैयारी कर रहे हैं, तो कहीं से किसी के झनकने-पटकने की आवाज नहीं आ रही है। हमें उम्मीद रखनी चाहिए कि जैसे हमारे सिनेमा के सुपरस्टारों को यह समझ आ गई है कि हिन्दी महज पर्दे पर डायलॉगबाजी के-लिए और के-लायक ही है, वह भी रोमन में लिखी हिन्दी, व्यूज और इंटरव्यूज के-लिए भी और के-लायक भी, अंग्रेजी ही है ; वैसे ही हमारे सत्ताधारी भी, समझते तो खैर हैं ही, लेकिन आज नहीं

तो कल, थोड़ी हिम्मत भी करेंगे और कुबूल भी करेंगे, खुलेआम, कि हिन्दी जनता से महज वोट माँगने के लिए और लायक तो है, उसपर राज करने के लिए और लायक वह नहीं ही है, यह एक बात, और दूसरी बात कि उसके लिए भी और उसके लायक भी अंग्रेजी ही है, इसलिए कि उसे राज करने का अनुभव है, यह एक बात, और दूसरी बात कि खास हम पर, हमारे लोगों पर राज करने का अनुभव है। एक तीसरी बात भी है, जिसकी पहले भी चर्चा आई है, कि जो राज हम चला रहे हैं, वह वही वाला है लगभग, आज भी, जो अंग्रेज चला रहे थे। विद्यालय होकर भी स्कूल स्कूल ही रहे, उनकी वही पढ़ाइयाँ हैं, कचहरियों की वही सुनवाइयाँ हैं, दरोगाजियों से मिलने वाली वही रुसवाइयाँ हैं। जो हमारे अंग्रेज हाकिमों ने चलाया, उनके चले जाने पर भी अगर वही चल रहा है, तो उसके लायक अंग्रेजी ही है, यह भी तय है, और हिन्दी नहीं है उसके लायक, यह भी तय है। ऐसे में हमें धैर्यपूर्वक और विश्वासपूर्वक उस दिन का इन्तजार करना चाहिए जिस दिन हिन्दी को राजभाषा न होते हुए भी राजभाषा हुए रहने की और राजभाषा होते हुए भी राजभाषा न होने की दुहरी साँसत से मुक्ति मिलेगी।

ऐसा जिस दिन होगा वही दिन हिन्दी का असली हिन्दी दिवस होगा। उस दिन गुमान से कहा जा सकेगा कि हिन्दी ने उस भूमिका में आने से इन्कार कर दिया जिस भूमिका में आकर फारसी और अंग्रेजी ने एक तरह से यह तय कर दिया था कि सत्ता की भाषा जनता की भाषा से भिन्न होती है या होनी चाहिए, कि हिन्दी ने जनभाषा से भिन्न किसी राजभाषा में ढलने से इन्कार कर दिया। दुर्भाग्य यह है कि यह भी नहीं होने का, इसलिए कि भारत में अंग्रेजी के भव्य भवन के निरापद निर्माण के लिए हिन्दी की ओट एक जरूरी जरूरत के तौर पर पहचान ली गई है। उसका बने रहना अंग्रेजी के तने रहने के लिए जरूरी है। भय दरअसल यह है कि हिन्दी को राजभाषा के जिस सिंहासन पर बिठा दिया गया है उससे उतारते ही एक तो कि वह फिर से अपने देश के भिन्न-भिन्न भाषा-भाषियों को जोड़ने की अपनी पुरानी भूमिका में उसी जोर-शोर से लग जाएगी, दूसरे, कि हिन्दी-हितैषियों का अभी चैन से सोया पड़ा हिन्दी-प्रेम फिर से भड़क उठेगा। अब, भड़के हुए प्रेम से कोई किसी के भले की उम्मीद तो नहीं ही रखें ! वैसे भी, हिन्दी की ऐसी-तैसियों को तय करने में जितनी जोरदार भूमिका हिन्दी के हितैषियों की रही है, उतनी न तो उन अंग्रेजों की रही है, जो बेचारे चले गए, न उस अंग्रेजी बेचारी की रही है, जिसे वे जितना ले गए उससे कहीं ज्यादा छोड़ गए। उदाहरण के लिए, जो सबसे उल्लेखनीय कार्य किया हमारे हिन्दी-हितैषियों ने, अपने प्रेम-मद में, वह यह कि हिन्दी या हिन्दुस्तानी नाम की इस भाषा के लिए जो भाषा-भूगोल प्रस्तावित किया गया था, समूचा हिन्द या समूचा हिन्दुस्तान, उसे उससे छीन लिया। अपने अतिरिक्त, कि तो अति से कुछ अधिक ही रिक्त अपने उत्साह में उन्होंने अपनी-अपनी मातृभाषाओं -- मगही, मेवाड़ी, मेवाती, अवधी, कुमाउँनी वगैरह -- के भूगोल को अपनी मातृभाषाओं से छीन कर हिन्दी के नाम लिख दिया। इससे यह तो हुआ कि बिहार, उत्तर प्रदेश,

मध्यप्रदेश, राजस्थान वगैरह का एक मिला-जुला बहुत बड़ा भूगोल हिन्दी का अपना कहने को हो गया, लेकिन यह भी हो गया कि मराठी, बंगला, तमिल, तेलुगु की जमीन उसके लिए पराई हो गई। हिन्द का एक बड़ा हिस्सा उसका हो गया, लेकिन वह पूरा-का-पूरा हिन्द, जिसे उसका होना था; जो उसका हो, इसके लिए बड़े अरमान से गांधी जी ने उसे साफ-साफ 'हिन्दुस्तानी' कहना पसंद किया था, वह उसका होने से रह गया। हिन्दी के पक्ष में होने की होड़ में हिन्दी-हितैषियों ने खुद ही उसका एक विपक्ष रच दिया। हिन्दी का हित अपनी-अपनी मातृभाषाओं का रहते हुए ही हिन्दी का होने में है, इसे दरकिनार करते हुए हमने यह जो किया कि य्ये छोड़ी अपनी भोजपुरी और हिन्दी के हो लिए, य्ये छोड़ी अपनी ब्रजभाषा और हिन्दी के हो लिए, उसने उन सबके लिए हिन्दी का होना असंभव कर दिया, जिनका हमारे जैसा मातृहंता मन नहीं था, जिनके लिए मातृभाषाओं से छूटना अपनी माँओं से छूटने जैसा था।

तो जो है सो तो यही है कि हिन्दी राजभाषा है भी और नहीं भी है। व्यवस्था जितना भर हिन्दुस्तानी किस्म की हो पाई है, उतना भर तो है ही। जितना भर अंग्रेजी वाक्य-विन्यास और शब्द-संपदा को हिन्दी अपने में खपा पाई है, उतना भर भी है। और, पारिभाषिक शब्दावली के निर्माण की हमारी कोशिशों ने उसे बदरंग अगर किया है कुछ, तो कुछ तो रंग भी भरे ही हैं। इस दिशा में 'दम लगाकर हइसा' कर के गाड़ी अगर ठेल दी गई है, तो कुछ दूर, कुछ देर तक तो वह ठिली रहनेवाली है ही। उधर, बाजार-व्यापार की जरूरतों ने, मनोरंजन उद्योग ने तो विशेषतः, हिन्दी को अपने हिसाब से पसारा भी है और वह पसरी भी है, इधर हिन्दी की ओट में चल रही अंग्रेजी की बढ़न्ती अब डिठार भी धड़ल्ले से है और होती ही रहेगी, यह भी तय ही है। यह बुरा भी नहीं है, बल्कि अच्छा ही है, जो नहीं अच्छा है वह इतना ही केवल कि यह बढ़न्ती न सिर्फ हिन्दी बल्कि तमाम भारतीय भाषाओं की कीमत पर होने-होने को हुई जा रही है। उधर सत्ता के गलियारे में भी हिन्दी-विरोध ने एक मुकाम हासिल कर लिया है और उसे डिगा पाना अब बहुत आसान नहीं है। समूचे हिन्दी देश के बजाय एक आधा-तिहा हिन्दी प्रदेश और सारे-के-सारे हिन्दुस्तानियों के बजाय एक आधा-तिहा हिन्दी जाति की अवधारणा अगर बन गई है, तो इतनी आसानी से बिगड़ने वाली तो है नहीं। कहीं-की-पहली-भाषा-नहीं और इस नाते देश-भर-की-दूसरी-भाषा-हो-सकने-लायक हिन्दी अगर कई-कई कहीं-कहीं की पहली भाषा करार दी गई है तो इस करार को तोड़ पाना कठिन तो है ही। लेकिन ऐसा भी नहीं कि मिथिला ने अगर आठवीं अनुसूची के जरिए अपनी मैथिली को अपनी पहली भाषा के तौर पर देश के सामने रख दिया है और भोजपुरी, राजस्थानी आदि के लिए इसके प्रयास चल रहे हैं, तो हिन्दी पर किसी खास इलाके का होने का जो आरोप है, उस पर इसका कोई असर नहीं होगा। असर भी होगा, भले ही देर-सबेर, और उम्मीद तो रखनी ही चाहिए कि जैसे-जैसे हिन्दी के बताए जाने वाले इलाकों की अपनी भाषाएँ -- पहली वाली भाषाएँ, मातृभाषाएँ, निजभाषाएँ -- अपनी-अपनी साहित्य-

संपन्नता के साथ अपने को स्थापित करती जाएँगी, वैसे-वैसे हिन्दी ज्यादा-से-ज्यादा हिन्दुस्तान की दूसरी वाली अपनी भाषा होती जाएगी और उसके नाहक किस्म के विरोध की तल्खी भी कम पड़ती जाएगी। तब इस देश की बहुभाषिकता की फीकी पड़ती जा रही चमक भी नए सिरे से निखरेगी और इन बहुभाषाओं को एक सूत्र में पिरो सकने वाली एकभाषिकता की भी, हिन्दी की भी। हिन्दी हमारे लिए हमारी मातृभाषा से भिन्न एक भाषा है, इस समझ के साथ ही, संभव है कि यह समझ भी आए कि हिन्दी हम कथित हिन्दी वालों के लिए भी सीखने की भाषा है, और तब, उसे मातृभाषा मान कर 'वह-हमें-आती-ही-है' का जो भरम बैठ गया है हमारी विशेषतः विद्यार्थी-बिरादरी में, वह भी कुछ हटे-कटे। तब यह भी संभव है कि इस दूसरी भाषा को सीखने में हमें अपनी पहली भाषा को खर्च करने की तमीज आए, मातृभाषा से काम लेने तक में हमारी जो लज्जाजनक ही नहीं, जीवनविरोधी भी, झिझक है, वह भी मिटे, मातृभाषा के काम आने का भी उत्साह जगे, उसकी बारीकियों में उतरें और तब जाहिर है कि उसके जरिए सीखी गई हमारी हिन्दी भी हिन्दी होगी, केवल कहने को हिन्दी नहीं होगी, अंग्रेजी भी अंग्रेजी होगी, केवल कहने को अंग्रेजी नहीं होगी।

अभी तो यह हाल है कि हम जो हिन्दी वाले कहे जाते हैं, उनके पास अपनी एक भूली-बिसरी, और बहुत कुछ भुलाई-बिसारी मातृभाषा है, एक हमें-आती-ही-है के नाते अनसीखी हिन्दी है और एक, इन अनयाद-अनसीखी भाषाओं के जरिए ही जितनी सीखी जा सकी उतनी गिटपिट भर की ही अंग्रेजी है और बेशक, इन सबकी मिली-जुली एक खिचड़ी भाषा भी है। तो जो है सो सब कामचलाऊ है। अनायास नहीं है कि हमारा विरोध, हमारा समर्थन, हमारा सब कुछ कामचलाऊपन का, चलताऊपन का शिकार हुआ जा रहा है, अनजाने ही, हम भाषाहीनता की दिशा में बहे जा रहे हैं, चुप रहने की जगह चिल्लाने लगे हैं, चिल्लाने की जगह चुप रहने लगे हैं, बतियाने की जगह गरियाने लगे हैं, गरियाने की जगह गुनगुनाने लगे हैं। ऐसे में, हमारे लिए, अब सवाल राजभाषा या जनभाषा का उतना नहीं रह गया है, हिन्दी और अंग्रेजी का भी उतना नहीं रह गया है जितना भाषामात्र का हो गया है। यह सवाल हमारे सामने बेशक जरा ज्यादा ही चुभंत अंदाज में खड़ा है, लेकिन खड़ा यह पूरे देश के सामने है। कहीं इसलिए भी कि हिन्दी नीचे दिखने लगी है, कहीं इसलिए भी कि हिन्दी को नीचा दिखाना है। ऐसा भी नहीं कि इस सामने खड़े सवाल का हम सामना नहीं कर रहे हैं, कर रहे हैं, और खुद यह विमर्श भी प्रकारान्तर से उसी भिड़न्त का एक हिस्सा है, लेकिन ठेठ भारतीय संदर्भ में, इस भिड़न्त के लिए, एक बार देखना तो चाहिए ही कि हमारे पुरखे हमारी गठरी में क्या-कुछ सहयोग-सामग्री रख गए हैं। एक तो मातृभाषा ही है। हर सवाल का सबसे सटीक जवाब। वैसे ही जैसे माँ। और माँ हमेशा कोख में ही नहीं रखती, गोद में भी लेती है, और गोद में ही नहीं रखती, धरती पर उतार भी देती है। तो जो दूसरा है हमारी गठरी में, वह है मातृभाषा से बाहर की दुनिया में पग धरना, हर तलमलाने पर माँ

की अँगुली पकड़ लेने के भाव और भरोसे के साथ। भारत-भावित एक तीसरी बात जो है हमारे पास वह यह कि एक ही माँ नहीं है हमें पालने वाली, दादी माँ भी है, नानी माँ भी है और गंगा से लेकर गाय तक माँएँ-ही-माँएँ हैं। कि किसी भाषा को कमतर कर के जानना किसी-न-किसी माँ को, किसी-न-किसी की माँ को कमतर कर के जानना है। भाषाओं के अपने इतिहास को याद करें तो इस मामले में द्वैमातुर तो हम कम-से-कम रहे ही हैं। दो भाषाएँ तो कम-से-कम रही हैं हमारे पास। जनभाषा और राजभाषा के रूप में नहीं, जनभाषा और ज्ञानभाषा के रूप में। जनभाषा हुई व्यवहार की भाषा, चलती भाषा और ज्ञानभाषा प्रयत्नपूर्वक अपेक्षाकृत थिर रखी गई भाषा, कि भाषा के परिवर्तन का प्रवाह ज्ञान की संचित राशि से वंचित न कर दे। संस्कृत इसी नाते इस देश की एक जरूरी जरूरत है। कुछ लोगों को यह साबित करने में एक रसातली किस्म की तृप्ति जरूर मिलती है कि संस्कृत एक मरी हुई भाषा है, लेकिन सचाई यह है कि इस देश से होकर गुजरे भयावह से भयावह झंझावातों में भी वह, निष्कंप, खड़ी-की-खड़ी रह गई भाषा है। उसने भरसक थिर रह कर पालि, प्राकृत, अपभ्रंश की भी ज्ञान-संपदा को यथासंभव संचित किया है, और विश्वास रखना चाहिए कि परायों से अपराजित रही संस्कृत अपनों की उपेक्षा से त्रस्तप्राय हो जाने के बावजूद अंत-पंत आधुनिक भारतीय आर्यभाषाओं के अर्जन-सर्जन को भी यथासंभव सँचेगी ही। बहुत संभव है कि ऐसा भी समय कोई आए जब विश्वमनीषा को दुनिया भर की तमाम भाषाओं से अर्जित ज्ञान-राशि के संचयन में इस स्थैर्यप्राप्त संस्कृत का सदुपयोग सूझे। ईश्वर करे कि उसे सूझे, उसके पहले हमें सूझे।

जब तक नहीं सूझता तब तक यह दायित्व हिन्दी का है। ज्ञान-संचयन का। सृजन-संचयन का। देश की हरेक भाषा से। सब के सब में सब को साझीदार बना लेने का सामर्थ्य ही उसका अपना सामर्थ्य है। वह मलयालम में अर्जित और सर्जित समझ और साहित्य उड़िया को सौंपने में समर्थ है और यही उसका दायित्व है, इसी में उसकी सार्थकता है। व्यक्ति या संस्था, किसी को, अगर सचमुच हिन्दी के लिए कुछ करना है तो उसे प्रशासनिक या व्यावहारिक या प्रयोजनमूलक बनाने के अंदेशे में दुबले होने के बजाय देश की हर भाषा की हर महत्त्वपूर्ण कृति को, चाहे वह जिस संदर्भ की हो, अनिवार्य रूप से हिन्दी में लाने के जतन में लगना है। यही देश का देश तक पहुँचना है, यही देश को देश तक पहुँचाना है, और हिन्दी की सार्थकता और महत्ता इसी का जरिया बनने में है। देश के जन-जन तक जाने का और उनके लिए, उनकी जरूरतों के मुताबिक दुनिया भर से चुन-बीन-धो-पोंछ कर ढो-ढाकर लाने का और दुनिया भर के लिए, उसकी जरूरत के मुताबिक यहाँ से वहाँ ले जाने का जरिया बनने में। राजभाषा बनने से बड़ा काम है यह, और बड़े मन से ही यह होना है, गड़े मन से तो नहीं ही होना है। हिन्दी के लिए भारतेन्दु अपने और बाला सुब्रह्मण्यम पराए नहीं हैं। भारतेन्दु उसके भोजपुरी वाले अपने हैं, बाला सुब्रह्मण्यम तमिल वाले अपने हैं। हिन्दी अगर हिन्दी है तो वह पूरे हिन्द की हो, किसी हिन्दी कहे जाने वाले इलाके

भर की न हो, वह इलाका चाहे जितना बड़ा हो। यह सच है कि जब तक अंग्रेजी उसके साथ लगी है, या सही-सही कहें तो जब तक वह अंग्रेजी के साथ लगी है, तब तक मुकम्मल तौर पर राजभाषा होकर भी नहीं है, लेकिन यह चिन्ता की बात हर्गिज नहीं है, चिन्ता की बात यह है कि वह हिन्दी होकर भी पूरे हिन्द की अभी नहीं हो पाई है, और इस नाते, वह जनभाषा है जरूर, लेकिन मुकम्मल तौर पर नहीं है, जितना उसे होना चाहिए उतनी जनभाषा वह अभी नहीं है, जितने जन की भाषा उसे होना चाहिए उतने जन की भाषा वह अभी भी नहीं है। इसके लिए जो प्राथमिक प्रकार की कोशिशें थीं, हिन्दी के पाठ्यक्रम में किसी विश्वविद्यालय में कुछ तमिल, किसी में कुछ तेलुगु, किसी में कुछ बांग्ला वगैरह को शामिल करने की, वह भी नहीं हुआ, मलयालम के पाठ्यक्रम में कहीं कुछ हिन्दी भी शामिल हो, यह तो खैर, बहुत दूर की बात है। इस सिलसिले में, बल्कि, सुखकर कुछ है तो यह जरूर है कि कोई 'बाहुबली' आई तो हिन्दी में भी आई। सुना है साहित्य अकादमी से पुरस्कार-प्राप्त कृतियों को आठवीं अनुसूची में शामिल सभी भाषाओं में उल्था करते हैं। हो सकता है कि इसमें तुष्टीकरण जैसा भी कुछ हो, लेकिन, फिलहाल, ऐसा भी तो नहीं ही है कि उन्हें केवल हिन्दी में उल्था करें और वे देश भर के सामने आ जाएँ!

तो हिन्दी को कुछ और नहीं, बस हिन्दी होना है। वह जनभाषा है, उसे कुछ और जनभाषा होना है। उसे देश की हर पहली भाषा की अपनी भाषा बनना है, उसे किसी पहली भाषा की जगह नहीं लेनी है और अपने भीतर देश की हर पहली भाषा को जगह देनी है। जहाँ तक राजभाषा का सवाल है, एक ही बात कहनी है कि देश ही नहीं, दुनिया भर में कहीं भी, राज-काज ही नहीं, किसी भी प्रयुक्ति, किसी भी प्रयोजन के लिए, हिन्दी ही नहीं, कोई भी भाषा, अगर वह चलती भाषा है, तो जैसी है, जैसे है, पर्याप्त है, वैसी ही, वैसे ही, अगर उस प्रयुक्ति, उस प्रयोजन को अपने जन के लिए अपारदर्शी नहीं रखना है, तो। भाषा के साथ यह नहीं है कि वह इस काम की हो जाएगी तो इससे यह काम लिया जाएगा, यह है कि उसे इस काम में लीजिए, वह इस काम की हो जाएगी।

अध्यक्ष, हिन्दी विभाग
श्री बलदेव पी.जी. कालेज, बड़ागाँव, वाराणसी
मो.नं.- 9198709575

राष्ट्र की दशा और दिशा में राष्ट्रीय शिक्षा नीति : 2020 का योगदान : कुछ सवाल

—डॉ. बृजेश शर्मा—

विद्या ददाति विनयं विनयाद्याति पात्रताम्।
पात्रत्वाद्धनमाप्रोति धनाध्दर्मं ततः सुखम्॥

विद्या, यानि ज्ञान हमें विनम्रता प्रदान करता है, विनम्रता से मनुष्य योग्यता प्राप्त करता है। विद्या अर्थात ज्ञान आधुनिक रूप में शिक्षा, शिक्षा हमें संस्कार देती है, संस्कार की अपनी महत्ता है। किसी भी सभ्य समाज में संस्कार का विशेष महत्व होता है। समाज निर्माण या राष्ट्र निर्माण में इसकी महती भूमिका है।

शिक्षा किसी भी राष्ट्र की रीढ़ होती है। जैसी शिक्षा होगी वैसा राष्ट्र होगा। किसी भी राष्ट्र के चिंतन, मनन, अनुसंधान प्रयोग, यश, अपयश, वैश्विक सम्मान शिक्षा द्वारा ही प्राप्त होते हैं।

प्राचीन भारत में जिस शिक्षा व्यवस्था का निर्माण किया गया था, वह समकालीन विश्व की शिक्षा व्यवस्था से समुन्नत व उत्कृष्ट थी। लेकिन कालान्तर में शिक्षा व्यवस्था का ह्रास हुआ है। विदेशियों ने यहाँ कि शिक्षा-व्यवस्था को उस अनुपात में विकसित नहीं किया जिस अनुपात में होना चाहिए था। अपने संक्रमण काल में भारतीय शिक्षा को कई चुनौतियों व समस्याओं का सामना करना पड़ा।

राष्ट्रीय शिक्षा नितिः 2020, शिक्षा में आये ह्रास को अपने नीतियों के द्वारा उत्कर्ष पर ले जाने का एक माध्यम बनेगी। 34 साल बाद 29 जुलाई 2020 को केन्द्रिय मंत्रिमंडल ने एक नई राष्ट्रीय शिक्षा नीति को मंजूरी दी है। यह नीति (NEP2020) भारत की शिक्षा प्रणाली में क्रांतिकारी परिवर्तन करने की इच्छा रखती है। यह नीति स्कूल शिक्षा से लेकर उच्च शिक्षा तक में परिवर्तन के निमित्त तैयार की गई है। यह परिवर्तन के लिए तैयार भी है। बाकी बातें नीति लागू होने के बाद ही स्पष्ट हो पायेगी। लेकिन हमारे विद्वानों/मनीषियों ने बड़ी तन्मयता तथा भविष्योन्मुख परिकल्पना के साथ इस नीति का निर्माण किया हैं।

राष्ट्रीय शिक्षा नीतिः 2020 और स्कूल शिक्षा

राष्ट्रीय शिक्षा नीति (एनईपी 2020) 1986 की पिछली नीति को बदलने या बढ़ाने (और सुधारने) के लिए (34 वर्षों के लंबे अंतराल के बाद) आती है। नीति पाठक को भारतीय शिक्षा के वर्तमान प्रणाली में संभावित सुधार और परिवर्तन की एक आशाजनक यात्रा करवाती है। एन ई पी 2020 स्वर्गीय श्री टी एस आर सुब्रमण्यम, पूर्व कैबिनेट सचिव की अध्यक्षता में 2015 में गठित समिति का एक परिणाम है। इस समिति की पहली रिपोर्ट मई 2016 में प्रस्तुत की गई थी,

जिसके आधार पर मंत्रालय ने 'ड्राफ्ट नेशनल एजुकेशन पॉलिसी, 2016 के लिए कुछ इनपुट' तैयार किए थे। बाद में जून 2017 में डॉ. के. कस्तूरीरंगन की देख-रेख में 'ड्राफ्ट नेशनल एजुकेशन पॉलिसी के लिए एक कमेटी' का गठन किया गया, जिसने 31 मई, 2019 को माननीय मानव संसाधन विकास मंत्री को 'ड्राफ्ट एजुकेशन पॉलिसी 2019' सौंपी । विचारों और सुझावों को आमंत्रित करने के लिए ड्राफ्ट राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2019 को एम. एच. आर. डी. (MHRD) की वेबसाइट 'MyGov Innovate' पोर्टल (PIB मुंबई, 2020) पर अपलोड किया गया।

नीति में भारतीय शिक्षा की 'पारंपरिक' प्रणाली पर बहुत जोर दिया गया है, जो किताबी ज्ञान की प्राप्ति से परे है और आत्म प्राप्ति के अवसर प्रदान करती है। नीति 22 सिद्धांतों का पालन करती है, जो शिक्षा प्रणाली के उद्देश्य को व्यक्तियों के विकास के रुप में दर्शाती हैं, जो तर्कसंगत विचारों और कार्यों में सक्षम हैं और नैतिक मूल्यों के साथ करुणा, सहानुभूति, वैज्ञानिक स्वभाव और रचनात्मक कल्पना के अधिकारी हैं। नीति एक 60-पृष्ठ का दस्तावेज़ है जिसमें 27 मुख्य बिंदुओं को चार भागों में विभाजित किया गया है: स्कूल शिक्षा, उच्च शिक्षा, अन्य मुख्य संकेत, और इसे बनाना।

शिक्षा की पारंपरिक स्कूल प्रणाली 10 + 2 संरचना में विभाजित होती है। इस प्रणाली को दो पहलुओं में बदलने का प्रस्ताव है। पहला, स्कूल शिक्षा प्रणाली में प्री-स्कूल वर्षों का समावेश है और दूसरा मौजूदा 10 + 2 पैटर्न को 5 + 3 + 3 + 4 पैटर्न में विभाजित करना है। उत्तरार्द्ध में कुल, पूर्व की तुलना में 3 अधिक है, जो पूर्व-विद्यालय के 3 वर्षों के समावेश को दर्शाता है। नई संरचना में पहले के 6-18 वर्षों (कक्षा 1 से 12) से भिन्न 3-18 (प्री-स्कूल से 12वीं कक्षा) शामिल हैं। नीति के अनुसार, 5 + 3 + 3 + 4 वर्ष क्रमशः संस्थापक, प्रारंभिक, मध्य और माध्यमिक वर्षों के रूप में संदर्भित किए गए हैं।

भाग I स्कूल शिक्षा के तहत ई.सी.सी.ई, पाठ्यक्रम, शिक्षाशास्त्र, मूलभूत साक्षरता, और संख्यात्मकता जैसे कुल आठ बिंदुओं का उल्लेख किया गया है। नीति साल 2030 तक 100 प्रतिशत बच्चों के स्कूल-तैयार होने के लक्ष्य के साथ ई.सी.सी.ई के सार्वभौमिकरण पर ज़ोर देती है। इस नीति में आंगनवाड़ी कार्यकर्ताओं के 'सतत व्यावसायिक विकास' (CPD) के साथ-साथ बाल-सुलभ इमारतों के बुनियादी ढांचे में निवेश का प्रस्ताव है। यह स्कूल शिक्षा विभाग के 'क्लस्टर संसाधन केंद्रों' द्वारा ई. सी. ई. सी. में 6 महीने के प्रमाणित कार्यक्रम के माध्यम से किया जाएगा। 'शिक्षा के लिए सबसे जरूरी शर्त' के रूप में मूलभूत साक्षरता और संख्यात्मकता की आवश्यकता पर ज़ोर देते हुए, साल 2025 तक प्राथमिक विद्यालय में सार्वभौमिक मूलभूत साक्षरता और संख्यात्मकता (ग्रेड 3 द्वारा) को प्राप्त करने पर प्राथमिकता दी गयी है। 'डिजिटल इन्फ्रास्ट्रक्चर फॉर नॉलेज शेयरिंग' (DIKSHA), उच्च गुणवत्ता वाले संसाधनों का भंडार होगा, जो शिक्षकों और छात्रों की मदद करने के लिए एक तकनीकी हस्तक्षेप के रूप में कार्य करेगा।

स्कूल छोड़ने वाले छात्रों को साल 2030 तक स्कूल वापस लाने की प्राथमिकता तय की गई है ताकि माध्यमिक स्तर पर 100 प्रतिशत सकल नामांकन अनुपात (GER) प्राप्त किया जा सके। ऐसा स्कूल के बुनियादी ढांचे में सुधार के द्वारा किया जाएगा।

राष्ट्रीय शिक्षा नीतिः 2020 में कॉलेज शिक्षा के सुझाव

भारत में उच्च शिक्षा प्रणाली को पुनर्जीवित करने के लिए नीति में बड़ी संख्या में सुधार प्रस्तावित किए गए हैं। प्रत्येक कॉलेज को एक स्वायत्त डिग्री देने वाले कॉलेज (ए.सी) या एक विश्वविद्यालय संवैधानिक महाविद्यालय में विकसित करने की परिकल्पना की गई है। 2030 तक यह नीति हर जिले में (या उसके आसपास) कम से कम एक बड़ी बहु-विषयक उच्च शिक्षा संस्थान (एच. ई. आई.) के निर्माण का लक्ष्य रखती है, जबकि 2040 तक, नीति सभी एच. ई. आई. को बहु-विषयक संस्थाएँ बनाने का प्रस्ताव देती है। नीति शिक्षा की प्राचीन प्रणाली का समर्थन करती है, जो कि वैश्विक मुद्दों को समझने के लिए और शिक्षार्थियों को सशक्त बनाने के लिए, भारत के व्यापक साहित्य से लेकर ग्लोबल सिटीजनशिप एजुकेशन (जी.सी.ई.डी) तक के विषयों के साथ समग्र शिक्षा पर ध्यान केंद्रित करती है।

उच्च शिक्षा के सुचारू कार्य को सुनिश्चित करने के लिए, भारत की उच्च शिक्षा आयोग (HECI) नामक एक संस्था की स्थापना की जाएगी जिसकी चार शाखाएँ होंगी: राष्ट्रीय उच्चतर शिक्षा नियामक परिषद (NHERC), राष्ट्रीय प्रत्यायन परिषद (NAC), उच्च शिक्षा अनुदान परिषद (HEGC) और सामान्य शैक्षिक परिषद (GEC)।

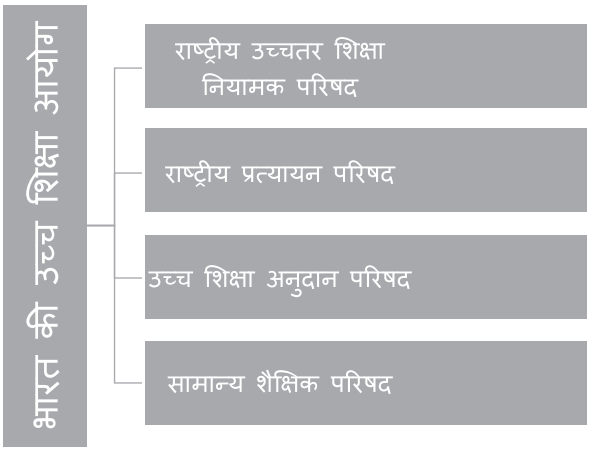

यह प्रस्तावित है कि एच.ई.सी.आई (HECI) अपनी चार शाखाओं की मदद से विनियमन, मान्यता, वित्त पोषण और अकादमिक मानक-निर्धारण सुनिश्चित करने में सक्षम

होगा । उच्च शिक्षा के व्यावसायीकरण को नियंत्रित करने और रोकने के लिए, सभी सार्वजनिक और निजी एच. ई. आई. को बराबर माना जाएगा और दोनों की जांच करने के लिए सामान्य राष्ट्रीय दिशानिर्देश होंगे । नीति के अनुसार, संस्थानों में, बोर्ड ऑफ गवर्नर्स (BoG) (धारा 23.2) की स्थापना की परिकल्पना की गई है, जिसमें योग्य और सक्षम व्यक्ति होंगे, जो बिना किसी बाहरी प्रभाव के संस्था को संचालित करने के लिए सशक्त होंगे । बोर्ड ऑफ गवर्नर्स, NHERC के माध्यम से सभी नियामक दिशानिर्देशों को पूरा करने के लिए जिम्मेदार होंगे ।

नीति राष्ट्रीय शैक्षिक प्रौद्योगिकी मंच (NETF) (धारा 23.3) नामक एक स्वायत्त निकाय के निर्माण से शिक्षा के विभिन्न पहलुओं को बेहतर बनाने के लिए प्रौद्योगिकी के एकीकरण पर जोर देती है, जो स्कूल और उच्च शिक्षा दोनों के माध्यम से सीखने, मूल्यांकन और योजना बनाने में मदद करेगी । नीति के प्रस्तावों को प्राप्त करने के लिए और देश में शिक्षा के दृष्टिकोण को संशोधित करने के लिए केंद्रीय सलाहकार बोर्ड ऑफ एजुकेशन (सी.ए.बी.ई -CABE) को मजबूत किया जाएगा । सी.ए.बी.ई. मानव संसाधन विकास मंत्रालय के साथ सहयोग करेगा, जिसे शिक्षा मंत्रालय (एम.ओ.ई) के रूप में फिर से नामित किया जा सकता है । शिक्षा के लिए जी.डी.पी. योगदान को बढ़ाकर वर्तमान 4.43% के मुकाबले 6% करने का प्रस्ताव रखा गया है। देश की शिक्षा पर व्यय में वृद्धि (सकल घरेलू उत्पाद का प्रतिशत और कुल सरकारी खर्च) की योजना 1968 और 1986 की पिछली नीतियों में भी की गई थी, लेकिन यह अनुशंसित स्तर तक पहुंचने में सक्षम नहीं रहा । नीति का मानना है कि शिक्षा पर धन के स्तर को ठीक से खर्च नहीं किया गया है, जिसने वांछित लक्ष्यों को रोक दिया ।

राष्ट्रीय शिक्षा नीतिः 2020 में मुख्य बातें

तीन दशक से अधिक के अंतराल के बाद जो नीति आ रही है, वह हितधारकों के मन में बहुत उम्मीदें पैदा करती है । शिक्षा के क्षेत्र में अंतिम बड़ा कदम शिक्षा का अधिकार (आर.टी.ई., 2009) अधिनियम था, जिसने 6-14 वर्ष के सभी बच्चों के लिए शिक्षा को 'मुफ्त' और 'अनिवार्य' बनाने की घोषणा की । इस अधिनियम ने भारत को कई अन्य देशों के साथ बराबरी पर ला दिया, जिन्होंने अपने बच्चों को शिक्षा 'अधिकार' के रूप में दी । आर.टी.ई. अधिनियम ने स्कूलों, शिक्षकों और उपयुक्त सरकार की भूमिका को स्पष्ट किया और स्कूल प्रबंधन समितियों का गठन किया ताकि वे सुचारु रूप से स्कूली शिक्षा सुनिश्चित कर सकें । विकलांग बच्चों के लिए आर.टी.ई. अधिनियम के कार्यान्वयन का अध्ययन करने के लिए, सोनी (2013) ने भारत के राज्यों और केंद्र शासित प्रदेशों में एक अध्ययन किया । रिपोर्ट कहती है कि यह देखना महत्वपूर्ण है कि आर.टी.ई. अधिनियम का कार्यान्वयन स्कूल प्रणाली में कैसे किया जाता है जहां विशेष प्रशिक्षण और निर्देश की आवश्यकता है । शिक्षकों की कमी है; छात्र-शिक्षक अनुपात अनुचित है; शिक्षकों को अन्य आधिकारिक कर्तव्य दिए जाते हैं; प्रशिक्षण कार्यक्रमों में व्यस्तता

है और शिक्षकों को ब्लॉक स्तर के कार्यालय में आधार कार्ड और मतदाता पहचान पत्र बनाने जैसे कर्तव्य दिए जाते हैं । साथ ही, विकलांग बच्चों की शिक्षा में शिक्षकों का कोई नियमित प्रशिक्षण नहीं है । दैनिक आधार पर विशेष शिक्षक सहायता की अनुपलब्धता आर.टी.ई. के प्रभावी कार्यान्वयन में एक बड़ी चुनौती है ।

एन.ई.पी. 2020 गुणवत्ता, इक्विटी, पहुंच और प्रौद्योगिकी के मापदंडों के साथ शिक्षा प्रणाली के लिए एक यूटोपियन मानक निर्धारित करता है, लेकिन इसे ज़मीनी तौर पर कैसे लागू किया जाएगा, यह एक सवाल बना हुआ है। इस बात से कोई इंकार नहीं है कि भारत अवसरों और प्रतिभाशाली व्यक्तियों से भरा है, लेकिन यह अभी भी सुनिश्चित नहीं है कि क्या नीति (और इसका प्रभावी कार्यान्वयन) छात्रों को देश में ही अपनी उच्च शिक्षा पूरी करने के लिए आकर्षित करने में सक्षम होगी । शहरी क्षेत्रों के बच्चे सरकारी या निजी स्कूल में जाने में सक्षम हैं, लेकिन ग्रामीण इलाकों के बच्चों को स्कूल जाने में बड़ी मुश्किलें आती हैं । घर से स्कूल की दूरी, स्कूल का वातावरण, स्कूली शिक्षा का समर्थन करने के लिए संसाधन, इन सभी कारकों का स्कूल की पहुंच पर प्रभाव पड़ता है, भले ही कई नीतियां और कानून पहले से मौजूद हैं । शुक्ला (2020) ने इसे 'असफल होने के लिए डिज़ाइन किया गया सिस्टम' बताया है । वह लिखते हैं- 'एक-आकार-फिट-सभी' (one-size-fits-all) प्रणाली बनाकर हमने एक 'ड्रॉप-आउट-मोस्ट' स्थिति बनाई है जहां अधिकांश बच्चे (और उनके परिवार) सिस्टम की बुनियादी अपेक्षाओं को पूरा नहीं कर सकते'।

एन.सी.ई.आर.टी. ने 2001 से एक राष्ट्रीय स्तर का शैक्षिक सर्वेक्षण आयोजित किया है, जिसे राष्ट्रीय उपलब्धि सर्वेक्षण (National Achievement Survey) कहा जाता है, जो कि वर्ष 2017 में आयोजित किया गया । इस सर्वेक्षण के निष्कर्षों के अनुसार लगभग 50 प्रतिशत छात्रों (राष्ट्र व्यापी) द्वारा खराब स्कोरिंग का प्रदर्शन हुआ। इसमें कहा गया है, जबकि तीसरी कक्षा में लगभग 53% बच्चों ने ग्रेड-उपयुक्त-दक्षता स्तर हासिल किया, बच्चों का यह अनुपात कक्षा V में 47% तक कम हो गया और कक्षा VIII में 39% बच्चों तक कम हो गया (NAS 2017, pp 165)। यह पैटर्न हमें बताता है कि ग्रेड में प्रगति के साथ, प्रदर्शन बिगड़ा, जिसकी वजह से ड्रॉप आउट और स्कूल अनुपस्थिति की संभावना बनती है ।

1986 की पिछली पॉलिसी में शिक्षा पर जीडीपी के 4.3% खर्च को बढ़ाकर, वर्तमान नीति में 6% तक करने प्रस्ताव दिया गया है । अब इस खर्च को बढ़ाने का वादा (जो एक अनिवार्य अंतर्राष्ट्रीय मानक भी है), सुनने में सुखदायक है, लेकिन इसकी पूर्ति के लिए तंत्र निर्दिष्ट नहीं है। यह स्पष्ट नहीं है कि यह वृद्धि कैसे होगी । क्या यह 2004 के वित्त अधिनियम (अग्रवाल, 2018) के अनुसार लगाए जाने वाले शिक्षा उपकर का प्रतिशत बढ़ाएगा या इस आवश्यकता को पूरा करने के लिए जी.डी.पी व्यय को किसी अन्य क्षेत्र से कम किया जाएगा ?

अंततः यह सुझाव नहीं दिया गया है कि देश में आर्थिक संकट को देखते हुए, इसका खामियाजा कौन उठाएगा।

नीति क्षेत्रीय भाषाओं को बढ़ावा देने के पक्ष में एक मजबूत तर्क देती है । यह बहुत आश्वस्त करने वाला लगता है, लेकिन व्यापक बेरोजगारी में, यह स्पष्ट नहीं है कि क्षेत्रीय भाषा में शिक्षा इसे कैसे प्रभावित करेगी। शिक्षक भर्ती के क्षेत्र में नीति कोई समयरेखा नहीं देती है। कई शिक्षक अभी भी देश में अनुबंध और तदर्थ आधार पर काम कर रहे हैं, अभी भी एक सवाल है कि यह अस्थायी (ad-hoc) संस्कृति कब और कैसे समाप्त होगी। नीति में विभिन्न संस्थानों की स्थापना का प्रस्ताव है परंतु यह स्पष्ट नहीं है कि नए संस्थान खोलने से शिक्षा की गुणवत्ता में सुधार होगा या नहीं । धारा 26.6 में, नीति शिक्षा क्षेत्र में निजी परोपकारी गतिविधि के लिए समर्थन को प्रोत्साहित करती है। शिक्षा क्षेत्र को निजी क्षेत्र के हाथों में देना चिंताजनक है। हालांकि धारा 18.7 में, नीति, उच्च शिक्षा संस्थानों के व्यावसायीकरण पर अंकुश लगाने के लिए उपाय करती है, लेकिन दूसरी ओर, निजी क्षेत्र से 'सहायता' को आमंत्रित करना विडंबनापूर्ण लगता है।

किसी भी नीति की प्रमुख विशेषता यह होती है कि वह लागू करते समय किन-किन बातों और अवरोधों का समाधान कर पायेगी। जिस सांच के साथ तथा व्यवस्था परिवर्तन हेतु नीति का निर्माण किया गया है। क्या वे उन सभी समस्याओं का समाधान कर पायेगी या बाकी नीतियों की तरह यह कागजी कारवाई का ही अंग बनकर रह जायेगी।

राष्ट्रीय शिक्षा नीति : 2020 को लेकर बहुत उम्मीद भी है तो साथ ही बहुत सारे सवाल खड़े होते हैं।

अब देखना यह है कि जिस उद्देश्य से के लिए इस नीति परिवर्तन का निर्माण किया गया है। वह किस हद तक परिवर्तन कर पाती है।

राष्ट्रीय शिक्षा नीति : 2020 कुछ इस प्रकार है -

अनेक संशयोच्छेदि परोआर्थस्य दर्शकम् ।
सर्वस्य लोचनं शास्त्रं यस्य नास्त्यन्ध एवं सः ।।

सहायक आचार्य
इलाहाबाद विश्वविद्यालय, प्रयागराज

राजभाषा हिंदी की चुनौतियां

—डॉ. संजय कुमार सिंह—

अगर मैं यह कहूँ कि यह शीर्षक गलत है तो शायद मैं गलत नहीं होऊँगा। सही मायने में भाषा की अपने आप में कोई चुनौती नहीं होती है। चुनौतियां होती हैं समाज के सामने। कोई भी समाज एक साथ कई चुनौतियों का सामना कर रहा होता है। यह उसके कौशल पर निर्भर करता है कि वह उन चुनौतियों से कैसे निपटता है। उसके निपटने की शैली ही उसे इतिहास में सम्मानजनक स्थान दिलाती है। बहुत सारी चुनौती में भाषा भी एक चुनौती होती है। भाषा का व्यवहार कभी अकेले के लिए नहीं किया जाता है। चिंतन, ध्यान सब कुछ अकेला किया जा सकता है, लेकिन भाषा का व्यवहार तो दूसरे तक पहुँचने के लिए किया जाता है, दूसरे तक अपनी बात पहुँचाने के लिए किया जाता है। जो व्यक्ति इस बात को समझ लेता है, इसका कौशल प्राप्त कर लेता है, वह इतिहास का निर्माण भी करता है और इतिहास की धरोहर भी बन जाता है।

महात्मा बुद्ध ने इस बात को समझ लिया था, इसलिए उन्होंने जन समान्य की बोली का इस्तेमाल किया, 'पल्ली' की बोली का इस्तेमाल किया, जिसे हम 'पालि' कहते हैं। 'पल्ली' का अर्थ होता है- बस्ती, पुरवा, खेड़ा इत्यादि। शरतचंद्र का उपन्यास है 'पल्ली समाज' यानि देहाती समाज। आज भी देश भर में बहुत से गाँवों, स्थानों के नाम के अंत में पल्ली लगा हुआ मिलेगा। महात्मा बुद्ध के बोलने से, महात्मा बुद्ध के सर्वश्रेष्ठ चिंतन के गाँव की भाषा में अभिव्यक्त होने से ही 'पालि' इतनी सम्मानित भाषा हो गई। बुद्ध के संस्पर्श से 'पल्ली' की भाषा 'पालि' गरिमा मंडित हो गई। यकीन मानिए आज बुद्ध होते तो 'हिंदी' भाषा बोलते। इस भाषा को बोलकर वह अपनी बात पूरे दक्षिण एशिया के देशों में फैला देते।

सिद्धो, नाथों, संतों को किसने निर्देश दिया बोलियों में संदेश देने को, काव्य रचना करने को, पदों को गाने को। किसी ने नहीं। वे किसी का निर्देश मानते भी नहीं। उनके लिए तो राजा भी तुच्छ था और राज्य भी तुच्छ था। वह तो अपने ईश्वरीय संसार में विचरण करते रहते थे। लेकिन अपनी मानसिक तरंगों से जनसमुद्र में हिलोर लाने के लिए उन्होंने बोलियों को चुना और आज तक गाँव देहात में सबसे ज्यादा पद उन्हीं के दोहराए जाते हैं। वही पद इस देश की जनता के दुख-सुख के साथी हैं। इसी परिवेश में अमीर खुसरो ने 'हिंदवी' की ताकत को पहचाना और देश के जनकवि बन गए। लड़कियों की विदाई के समय गाए जाने वाले गीत भी अमीर खुसरो के हैं। बिना उनका नाम जाने लोग सदियों से वे गीत गाते आ रहे हैं।

मैं शायद साहित्य और संस्कृति की ओर ज्यादा बहक रहा हूँ, लंबा हो जाएगा, इसलिए यहीं छोड़कर प्रशासन की ओर लौटते हैं। आप जानते हैं, फ्रेडरिक पिन्काट को। इन्होंने ही ब्रिटेन में हिंदी का वह पाठ्यक्रम तैयार किया था, जिसे पास करके ही कोई लोकसेवक भारत में सेवा के लिए आ सकता था। अंग्रेज जानते थे भाषा के महत्व को। प्रशासन और शासन में स्थानीय

भाषा के महत्व को। अंग्रेज जाति भाषा की अहमियत को जानती थी। उसने अपने देश में 'फ्रांसीसी' की गुलामी से अंग्रेजी को मुक्त किया था। अपने उद्यम से, अपने प्रयासों से। ज्ञान – विज्ञान की सारी चीजों को अंग्रेजी में लिखकर, अंग्रेजी में बोलकर। उसे भी अपने यहाँ की संसद में अंग्रेजी को प्रवेश कराने के लिए लड़ाई लड़नी पड़ी थी। उनकी अंग्रेजी भी गँवारों की भाषा मानी जाती थी और फ्रेंच साहित्यकारों के सामने शेक्सपीयर जैसे साहित्यकार की भी कोई इज्जत नहीं थी। लेकिन यह आश्चर्य की बात नहीं तो क्या है कि अठारहवीं शती में अंग्रेजी की पहली डिक्शनरी जॉनसन एंड जॉनसन ने तैयार की और देखते देखते अंग्रेजी इनके उद्यम से, इनके प्रयास से ज्ञान-विज्ञान एवं प्रशासन की सशक्त भाषा बन गई।

महात्मा गाँधी इस बात को समझते थे कि बिना अपनी भाषा के देश मौलिक ढंग से, अपनी मनीषा के साथ, अपनी दार्शनिक परंपरा के साथ आगे नहीं बढ़ सकता, हमेशा पिछलग्गू बना रहेगा। इसीलिए उन्होंने दक्षिण अफ्रीका के आंदोलन के समय ही जब 'इंडियन ओपिनियन' का प्रकाशन शुरु किया तो गुजराती, हिंदी, तमिल और अंग्रेजी चार भाषाओं का प्रयोग किया। उस जमाने में चार भाषाओं में अखबार प्रकाशित करना कितना कठिन रहा होगा, लेकिन उन्होंने किया। उन्होंने काशी हिंदू विश्वविद्यालय की स्थापना के अवसर पर जब हिंदुस्तान में अपना पहला भाषण दिया, तब भी मातृभाषा के सवाल को गंभीरता से उठाया और कहा कि देश को पिछलग्गूपन से मुक्त करना है तो उच्च शिक्षा में हिंदी एवं अन्य भारतीय भाषाओं को स्थान देना ही होगा। उन्हीं के प्रयास से कांग्रेस के सम्मेलन में हिंदी को राष्ट्रभाषा बनाने का प्रस्ताव पास किया गया और 1925 में कानपुर के अधिवेशन में कांग्रेस का कार्यवृत्त इत्यादि हिंदी में प्रकाशित करने का निर्णय लिया गया। उनके लिए अपनी भाषा के बिना स्वतंत्रता पूरी नहीं होनी थी।

स्वतंत्रता आंदोलन की संवाहक भाषा होने के कारण, जनसामान्य की भाषा होने के कारण हिंदी को संघ की राजभाषा बनाया गया। संविधान में राजभाषा संबंधी प्रावधान किए गए। कालांतर में राजभाषा अधिनियम एवं राजभाषा नियम बनाए गए। आज गृह मंत्रालय (राजभाषा विभाग) के दिशा-निर्देश में केंद्र सरकार के सभी कार्यालय, बैंक, उपक्रम, स्वायत्तशासी संगठन इत्यादि राजभाषा हिंदी में कार्य कर रहे हैं। वार्षिक कार्यक्रम में निर्धारित लक्ष्यों के लिए प्रयास कर रहे हैं। कमियों की निरंतर समीक्षा की जाती है और नए-नए क्षेत्रों में राजभाषा का प्रयोग सुनिश्चित किया जाता है।

कई बार सामाजिक एवं साहित्यिक क्षेत्र में 'राजभाषा हिंदी' की आलोचना की जाती है। एक तो इसलिए कि राजभाषा में नीरस शब्दावली का प्रयोग किया जाता है, दूसरे इसलिए कि अपेक्षित मात्रा में इसका प्रयोग नहीं किया जाता है। समझने की बात यह है कि किसी भी भाषा की अनेक प्रविष्टियां यानी प्रयोग क्षेत्र होते हैं। इनकी संख्या जितनी ज्यादा होती है, भाषा उतनी ही समृद्ध होती है। 'कार्यालयी हिंदी' भाषा की एक विशिष्ट प्रविष्टि है, इसलिए उसके लिए शब्दावली का अलग संसार होना अत्यंत स्वाभाविक है। जहाँ तक प्रयोग को बढ़ाने का स्थान

है, हर अधिकारी कर्मचारी को भाषा के प्रति शिकायत का रवैया छोड़कर उसका अधिक से अधिक प्रयोग करने का संकल्प लेना है, प्रयोग करना है। उसके कंधे पर भाषा के जरिए देश के निर्माण का भार है और यह भार उसे उठाना ही होगा। छोटी मोटी समस्यायें स्वत: दूर हो जाएंगी। जब हम भाषा प्रयोग के अन्य क्षेत्र को देखते है तो साहित्य, पत्रकारिता, मीडिया, सिनेमा, विज्ञापन इत्यादि में आज हिंदी विशेष भूमिका का निर्वाह कर रही है। इसका संसार बहुत बढ़ा है, लेकिन शैक्षणिक क्षेत्र में, ज्ञान विज्ञान, प्रौद्योगिकी के क्षेत्र में मौलिक पुस्तकों की कमी बनी हुई है। यहाँ तक कि मानविकी विषयों यथा समाज शास्त्र, राजनीति शास्त्र, मनोविज्ञान, भूगोल इत्यादि में भी उच्च मौलिक शैक्षणिक सामग्री का अभाव है। इसकी पूर्ति तो विश्वविद्यालयों में कार्यरत हमारे उच्च श्रेणी के विद्वान ही कर सकते हैं। भले ही अंग्रेजी में लिखने से अंतरराष्ट्रीय स्तर के जर्नलों में उनके लेखों का प्रकाशन होता है और उनकी ख्याति बढ़ती है, लेकिन देश की जनता से उनका जुड़ाव, लगाव तो हिंदी में ही हो सकता है। एक बार अंग्रेजी के ख्यात प्रोफेसर और कन्नड़ लेखक अनंतमूर्ति ने लिखा था कि हिंदुस्तान के विद्वानों की कोई ऐसी किताब विगत वर्षों में नहीं आई, जिसका लोहा दुनिया ने माना हो। इसके पीछे उन्होंने भाषा को भी कारण बताया था। उन्होंने कहा था कि अंग्रेजी में जो किताब भारत में लिखी जाती है, उससे पहले ही उस विषय पर अच्छी किताब यूरोप में आ जाती है। यदि भारतीय विद्वान भारतीय नजरिये से यहाँ की समस्याओं पर यहाँ की भाषाओं में लिखते तो दुनिया के विद्वान भारत को ठीक से जानने के लिए उन किताबों को पढ़ते और उसका अनुवाद भी कराते। इसीलिए अनंतमूर्ति हमेशा कन्नड़ में लिखते थे। यदि भारतीय विद्वान अपनी विशेषज्ञता से संबंधित कम से कम एक मौलिक पुस्तक हिंदी में लिखने का संकल्प लें लें तो कमी का यह क्षेत्र देखते-देखते समृद्ध हो जाएगा। भारतीय समाज अनुकरण की राह छोड़ ज्ञान- विज्ञान, प्रौद्योगिकी के क्षेत्र में दुनिया को चुनौती देता नजर आएगा। तो चुनौती हिंदी भाषा के सामने नहीं है, बल्कि हमारे सामने है कि हम हिंदी भाषा की ताकत को समझते हुए, उसकी संप्रेषणशीलता को समझते हुए, उसकी ग्राह्यता को समझते हुए अपने साहित्य, संस्कृति, ज्ञान-विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी के क्षेत्र को कितना समृद्ध करते हैं और कैसे दुनिया में नेतृत्वकारी भूमिका का निर्वाह करने की क्षमता अर्जित करते हैं।

वरिष्ठ राजभाषा अधिकारी
ब.रे.का., वाराणसी
मो.नं.- 9794861011

राजभाषा के कार्यकलापों से सम्बन्धित चित्र

दिनांक 26.03.2021 को आयोजित राजभाषा कार्यान्वयन की बैठक की अध्यक्षता करते हुए
माननीय कुलपति प्रो. गेशे ङवङ् समतेन

दिनांक 25.12.2021 को आयोजित राजभाषा कार्यशाला में दीप प्रज्ज्वलित करते हुए माननीय कुलपति
प्रो. वङ्छुग दोर्जे नेगी एवं कुलसचिव डॉ. हिमांशु पाण्डेय

दिनांक 25.12.2021 को आयोजित राजभाषा कार्यशाला में मंचासीन डॉ. हिमांशु पाण्डेय कुलसचिव, माननीय कुलपति प्रो. वङ्छुग दोर्जे नेगी, प्रो. बाबूराम त्रिपाठी, डॉ. रामसुधार सिंह एवं मंच संचालित करते हुए डॉ. अनुराग त्रिपाठी

दिनांक 25.12.2021 को आयोजित राजभाषा कार्यशाला में मंचासीन माननीय कुलपति प्रो. वङ्छुग दोर्जे नेगी एवं प्रो. बाबूराम त्रिपाठी तथा व्याख्यान देते हुए डॉ. रामसुधार सिंह

दिनांक 13-14 नवम्बर, 2021 को आयोजित अखिल भारतीय राजभाषा सम्मेलन में सहभागिता करने वाले को प्रमाणपत्र प्रदान करते हुए माननीय कुलपति

दिनांक 25.12.2021 को आयोजित राजभाषा कार्यशाला में व्याख्यान देते हुए संस्थान के माननीय कुलपति प्रो. वङ्छुग दोर्जे नेगी

दिनांक 31.12.2021 को आयोजित राजभाषा कार्यशाला में व्याख्यान देते हुए
सहायक कुलसचिव श्री प्रमोद सिंह

दिनांक 31.12.2021 को आयोजित राजभाषा कार्यशाला में व्याख्यान देते हुए प्रो. श्रद्धानन्द

बौद्ध दर्शन पर एक विहंगम दृष्टि

—प्रो. वङ्छुग दोर्जे नेगी—

मैं बौद्धधर्म के प्रवर्तक तथागत बुद्ध की जीवनी से प्रभावित हूँ। राजकुमार होकर भी राजमहल से बाहर उपवन में जन्म लेना, गृहत्याग, 6 वर्ष कठोर तपस्या करना, बाह्यरूप राजकुमार, आन्तरिक रूप सर्वज्ञ बुद्ध बनने के पश्चात् भी घर-घर, क्षेत्र-क्षेत्र जाकर उपदेश करना, महापरिनिर्वाण के समय आनन्द द्वारा श्रावस्ती या राजगृह में देह त्यागने के लिये कहने पर भी चहल-पहल, शोर-शराबा से दूर कुशीनगर में दो वृक्षों के मध्य महापरिनिर्वाण को प्राप्त करना- ऐसा सरल व सहज जीवन मुझमें ही क्या समस्त जगत् में श्रद्धा पैदा करता है, प्रेरणा देता है।

बुद्धवचन पालि परम्परा के अनुसार उन्होंने 84,000 स्कन्धों की देशना की थी। यथा- भिक्षु आनन्द कहते हैं-

द्वासीतिं बुद्धतो गण्हिं द्वे सहस्सानि भिक्खुतो।
चतुरासीति सहस्सानि ये मे धम्मा पवतिनो ति।।

अर्थात् 82,000 धर्मस्कन्ध बुद्ध से और 2,000 शारिपुत्र आदि भिक्षुओं से मैंने सुना। इनमें भी कुछ ऐसे सुत्त हैं जो बुद्ध के समय उनके उपस्थिति में तथा कुछ उनकी अनुपस्थिति में उपदिष्ट थे, जिसे बुद्ध के संज्ञान में आने पर उसका अनुमोदन किया गया। बुद्ध द्वारा शारिपुत्र और आनन्द, उपालि आदि को उपदेश करने को कहा गया और फिर उसे बुद्ध ने भिक्षुओं को स्मरण करने के लिए कहा गया आदि-आदि। उनके महापरिनिर्वाण के बाद आनन्द द्वारा उपदिष्ट माधुरिय सुत्त, घोट मुख सुत्त, महाकात्यायन का अविन्त पुत्र के साथ संल्लाप आदि तथा नन्द को वाद सुत्त जिसे बुद्ध ने आयुष्मान नन्दक को भिक्षुणियों को उपदेश देने के लिए कहा था। ऐसे अनेक सुत्त त्रिपिटक में संगृहीत है। सम्पूर्ण पालि अभिधर्मपिटक बाद के स्थविरों द्वारा रचित है।

तथागत का उद्देश्य किसी आचार्यवाद को स्थापित करना नहीं था, अपितु दुःख से प्राणियों को मुक्त करना था। यही कारण है कि प्रथम धर्मचक्र प्रवर्तन के बाद सभी 60 भिक्षुओं को बहुजन हित, बहुजन सुख के लिये चारों दिशाओं में धर्मप्रचार के लिये भेजा गया।

पालि परम्परा के अनुसार तथागत के परिनिर्वाण पर भिक्षु सुभद्र का वचन सुनकर महाकाश्यप जब चिन्तित हुए, तब प्रथम संगीति का आयोजन मगध राजा अजातशत्रु के सहयोग से 500 अर्हतों के एकत्रित होने पर राजगृह की सप्तपर्णी गुफा में हुआ, जो पञ्चशतिका नामक संगीति के नाम से विख्यात हुआ। इसकी अध्यक्षता महाकाश्यप ने की

और धर्म का आनन्द ने तथा विनय का उपालि ने संगायन किया था। अभिधर्म का गायन धर्म के अन्तर्गत ही सम्पन्न हुआ। स्वतन्त्र अभिधर्म की संगीति होने पर संघ में मतभेद का अवसर हो सकता था, ऐसा मेरा मानना है। द्वितीय संगीति वैशाली के वज्जिपुत्तक भिक्षुओं द्वारा विनय के विपरीत 10 वस्तुओं के आचरण से तथागत के महापरिनिर्वाण के 100 साल पश्चात् हुई थी। राजा कालाशोक इसके यजमान थे। पालि के अनुसार रेवत आदि और तिब्बती परम्परा के अनुसार 700 भिक्षुओं की संगीति हुई थी। अतः यह सप्तशतिका नामक संगीति के रूप में विख्यात हुई। इसी दौरान संघ दो भागों में बंट गया। यथा- स्थविरवाद और महासांघिक। उसके बाद क्रमशः निकायों की संख्या बढ़ती गयी और सम्राट अशोक के समय तक यह 18 निकायों में विभक्त हो चुकी थी। इसका मुख्य कारण मौखिक परम्परा का होना है।

तृतीय संगीति अशोक के समय पाटलिपुत्र में हुई जिसकी अध्यक्षता मौद्गलिपुत्ततिस्स ने की। इसमें 1000 भिक्षु सम्मिलित हुए। यह स्थविरवादियों की संगीति थी। इसी में स्थविर तिस्स ने अभिधम्म सम्बन्धित ग्रन्थ कथावस्तु लिखा जिसमें 1000 सुत्त हैं। 500 सुत्त में परवादियों के 216 दार्शनिक सिद्धान्तों का खण्डन कर 500 सुत्त में स्थविरवादी पक्ष की स्थापना की गई है। इससे यह स्पष्ट हो जाता है कि यह स्थविरवादियों की संगीति थी। तृतीय संगीति के पश्चात् अपनी-अपनी स्वतन्त्र संगीतियाँ होनी जब प्रारम्भ हो गयीं तब धर्मदेशना का अलग स्वतन्त्र अभिधम्मपिटक और सुत्तपिटक के रूप में अलग-अलग अस्तित्व में आ गया, ऐसा मेरा मानना है।

उससे पहले तक कम से कम प्रथम द्वितीय संगीति में सर्वमान्य प्रतीत्यसमुत्पाद। चार आर्यसत्य, अष्टांगिक मार्ग आदि का धर्म के रूप में ही संगायन होता रहा होगा।

महायान के अनुसार तृतीय अर्थात् क्रम की दृष्टि में चतुर्थ संगीति कश्मीर के कुण्डल वन में राजा कनिष्क के सहयोग से बुद्धघोष, वसुमित्र आदि के द्वारा की गयी, जिसमें 'विभाषा' लिखी गयी और सभी 18 निकायों को बुद्धवचन माना गया और साथ ही सर्वास्तिवादी प्रधान अभिधर्म की रचना की गयी। यद्यपि अशोक के पाटलिपुत्र संगीति के पूर्व ही कश्मीर में सर्वास्तिवादियों का बोलबाला था। मध्यन्तिका (तिब्बती में ञिमा गोङ्पा) तिब्बती विनय परम्परा के अनुसार आनन्द के शिष्य थे। किन्तु चीनी परम्परा के अनुसार उन्हें आनन्द के शिष्य शाणवास का शिष्य बताया है। यह सर्वास्तिवाद के आदि स्थविर थे। ये अशोक से बहुत पहले थे।

तृतीय संगीति के बाद सम्राट अशोक ने महास्थविर को बौद्ध धर्म के प्रचार-प्रसार के लिये श्रीलंका में पुत्र महेन्द्र और पुत्री संघमित्रा तथा 500 स्थविरों के साथ भेजा। वहाँ तत्कालीन राजा वट्टगामीन ने सहर्ष सत्कार के साथ स्वागत किया। बुद्धवचनों को संगमरमर पर खुदवाया गया। यह थेरवाद की चतुर्थ बौद्धसंगीति के रूप में प्रख्यात है।

उसी समय उत्तर में ग्रीस, मेसोपोटामिया, एशिया आदि में प्रचारक भेजे गये। कनिष्क के काल में चीन से से गोवी रेगिस्तान होते हुए पेशावर के मार्ग अनेक चीनी यात्री भारत आये। हर प्रसाद शास्त्री के अनुसार प्रथम शताब्दी से 9वीं सदी तक चीन से 102 विद्यार्थी भारत आये। चीन से जापान और फिर कोरिया आदि में बौद्ध धर्म फैला, 7वीं सदी से 12वीं सदी तक तिब्बत से अनेक छात्र भारत आये थे। एक समय बौद्ध धर्म एशिया प्रायदीप के सबसे प्रमुख धर्म के रूप में विख्यात था। अतः एडविन अर्नोल्ड बुद्ध को लाईट ऑफ एशिया कहता है, जो सार्थक है।

महायान परम्परा के अनुसार बुद्धवचन को तीन भागों में विभक्त किया गया है। यथा- स्वयं तथागत के मुख से उपदिष्ट, काय, वाक्, चित्त द्वारा अधिष्ठित कर उपदिष्ट और अनुज्ञा वचन। वज्रपाणि के सिर पर तथागत के द्वारा हाथ रख कर दशभूमिक सूत्र का उपदेश करने के लिये प्रेरित किया गया। यह बुद्ध के काय द्वारा अधिष्ठित वचन कहलाता है। वहीं वचन द्वारा अधिष्ठित है यथा राजा अजातशत्रु ने जब अपने पिता को जेल में मरवाया था उसके पश्चाताप से उभरने के लिए तथागत ने मञ्जुश्री को उपदेश करने भेजा था वह वाक् द्वारा अधिष्ठित वचन है और चित्त द्वारा अधिष्ठित कर शारिपुत्र आर्य अवलोकितेश्वर से गम्भीर शून्यता के सम्बन्ध में प्रश्न करते हैं, जिसके परिणाम में प्रज्ञापारमिता हृदयसूत्र का आविर्भाव होता है। यह चित्त द्वारा अधिष्ठित वचन है।

पालि परम्परा में यद्यपि काय, वाक्, चित्त का अधिष्ठान तथा अनुज्ञा वचन का बुद्धवचन के रूप में वर्णन नहीं मिलता है। फिर भी, बुद्ध शारिपुत्र, आनन्द, कात्यायन आदि को उपदेश करने भेजते थे। उनके द्वारा उपदिष्ट वचन भी त्रिपिटक में संगृहीत हैं। जहाँ तक अनुज्ञा वचन का अभिप्राय है- तथागत जब पावा में थे, उनके दर्शन के लिये आये मल्लों को शारिपुत्र से उपदेश देने को कहते हैं। उसी समय शारिपुत्र ने संगीति सुत्त की देशना की थी, जो दीघनिकाय में उपलब्ध होती है। उसमें शारिपुत्र ने महावीर के महापरिनिर्वाण पश्चात् अनुयायियों अर्थात् आचार्यों में महावीर के वचनों को लेकर विवाद पैदा हो गया था। शारिपुत्र तथागत के महापरिनिर्वाण के पश्चात् इसकी संभावनाओं को देख रहे थे, क्योंकि हर पन्द्रह दिन में उपोसथ होता था, विनय का पाठ होता रहता था और उसी प्रकार वर्षावास आदि विनय सम्बन्धित सूत्रों का पाठ होता रहता था। अतः विनय के सम्बन्ध में विवाद का प्रश्न नहीं उठता, लेकिन धम्म अर्थात् सुत्त को लेकर संदेह था, अतः भविष्य में संगीति कैसी होगी, इस पर नियम बनाया गया था, बुद्ध ने उसका अनुमोदन किया था। इस प्रकार संगीति सूत्र भी त्रिपिटक में संकलित हुआ। आगे चलकर इस पर व्याख्या लिखी गयी, जो अभिधर्मपिटक के नाम से एक महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ बना।

इससे स्पष्ट है त्रिपिटक बुद्ध का भाव है, शब्द तो स्थविर एवं आचार्यों द्वारा दिया गया है। यदि ऐसा माने तो थेरवाद महायान आदि में त्रिपिटक को लेकर कभी विवाद नहीं उठ सकता।

बौद्ध धर्म का सार – चार आर्यसत्य, अष्टांगिक मार्ग, जो प्रतीत्यसमुत्पाद के दर्शन पर आधारित है। यथा- राजगृह के वेणुवन में शारिपुत्र द्वारा अश्वजित से उनका दर्शन एवं गुरु के बारे में प्रश्न करने पर कहा गया था- **"ये धर्मा हेतुप्रभवा हेतुं तेषां तथागतो ह्यवदत्। तेषां च यो निरोध एवं वादी महाश्रमणः ।।"** जो सभी बौद्ध परम्पराओं द्वारा सर्वमान्य हैं, स्वीकृत है। चार आर्यसत्य में दुःख आर्यसत्य और समुदय आर्यसत्य हैं। ये दो लौकिक कार्यकारण की व्याख्या है और मार्ग आर्यसत्य तथा निरोध आर्यसत्य। ये दो लोकोत्तर मार्गफल की व्यवस्था है। मार्ग में अष्टांगिक मार्ग जिसमें प्रथम दो सम्यग्दृष्टि और सम्यक् संकल्प त्रिशिक्षाओं में प्रज्ञा अधिशिक्षा है। सम्यग् आजीविका आदि तीन अंग शीलाधिशिक्षा है और सम्यग् व्यायाम आदि अन्त के तीन अंग समाधि अधिशिक्षा हैं। इस प्रकार सम्पूर्ण लोकोत्तर मार्ग शील, समाधि और प्रज्ञा में अन्तर्निहित होता है। यथा- बुद्ध ने धम्मपद में कहा है- **"सर्वपापस्स अकरणं..."**। जिसे बुद्धघोष ने विसुद्धिमग्ग में प्रथम सर्वपापस्स अकरणं को शीलशिक्षा कहा है। वहीं महायान में भिक्षुप्रिय सूत्र में कहा है- यह शील सुखों में श्रेष्ठतम है, यह शील ही मोक्ष का मार्ग है। यह शील गुणों का क्षेत्र है तथा यह शील ही बुद्ध का हेतु है। (तोहकु० 302) **कुशलस्स उपसम्पदा** समाधि और **चित्तोत्पन्नं** प्रज्ञा शिक्षा कहा है। वही महायान के आर्यधर्मसंगीतिसूत्र में कहा है - कायप्रश्रब्धि और चित्तप्रश्रब्धि से प्रीति-सुख होता है। उससे समाधि की प्राप्ति होगी। चित्त के समाहित होने पर तत्त्व का यथावत् ज्ञान हो जाता है। यथावत् तत्त्व का अवलोकन करने वाले बोधिसत्त्व सभी सत्त्वों के प्रति महाकरुणा से प्रवृत्त होंगे। (तोहकु० 238) यही त्रिशिक्षा बौद्ध धर्म, दर्शन एवं शासन का सार है। इसे सभी निकाय, बौद्ध दर्शन प्रस्थान और सभी यानों द्वारा निर्विवाद माना गया है। हाँ, व्याख्या में सूक्ष्म सूक्ष्मतर भेद अवश्य है। बुद्ध का उद्देश्य व्यक्ति को शारीरिक-मानसिक रोग से विमुक्त करना था, नीरोग एवं स्वस्थ बनाना था। जैसे बुखार रूपी एक ही रोग होने पर भी रोगी की आयु, रोग का स्तर आदि देखकर दवाई दी जाती है, उसी प्रकार बुद्ध भी विनेयजनों के अध्याशय बुद्धिस्तर और संस्कार के अनुरूप धर्म की देशना करते थे। या इसे ऐसा समझ सकते हैं बुद्ध का उपदेश तो वर्षा की तरह था, लेकिन वर्षा से सिंचित किये जाने वाले में कोई आम का वृक्ष, कोई केले का वृक्ष, कोई झाड़ी या फूल, घास आदि थे। उन्होंने अपनी-अपनी क्षमता के अनुसार पानी को ग्रहण कर उससे फायदा उठाया। उसी प्रकार बुद्ध ने अनित्य, अनात्म और दुःख अर्थात् मोक्ष के त्रिद्वार को कहा है। विनेयजनों ने अपने सूक्ष्म से सूक्ष्मतर बुद्धि द्वारा इनके अभिप्रायों को सूक्ष्म से सूक्ष्मतर समझा। एक प्रकार से इसका महायान ने प्रथम, द्वितीय व तृतीय धर्मचक्र के रूप में वर्णन किया होगा, ऐसा मेरा मानना है। यद्यपि परम्परा इसे नहीं मानेगी। धम्मपद में मग्गवग्गो में **"सब्बे सङ्खारा अनिच्चा'ति यदा पञ्ञाय पस्सति। अथ निब्बिन्दति दुक्खे, एस मग्गो विसुद्धया ।।"** (277-279) उसी प्रकार महायान के आर्यसागरनागराजपृच्छासूत्र में भी कहा गया है- सभी संस्कार अनित्य हैं, सभी सास्रव धर्म

दुःख है। सभी धर्म अनात्मक हैं और निर्वाण शान्त हैं। (तोहकु० 154) विनेयजनों ने उसमें गम्भीर से गम्भीरतर रूप में समझा अतः हम कह सकते हैं कि एक धर्मचक्र मानने पर भी विनेयजनों के अनुसार भिन्न रूप में क्या विचार एवं दर्शनों की उपस्थिति नहीं हुयी होगी ?

सभी बौद्ध दार्शनिक प्रस्थान थेरवाद से लेकर वज्रयान तक सृष्टिकर्ता ईश्वर, नित्य, कूटस्थ आत्मा या परमार्थतः किसी भी प्रकार का द्रव्य परमाणु, प्रकृति या ब्रह्म आदि अखण्ड, इकाई के रूप में वस्तुओं के अस्तित्व को नहीं मानता है।

महायानी सूत्र आर्यराष्ट्रपालपरिपृच्छासूत्र में कहा है। शून्य शान्त अर्थात् अनुत्पादनय को नहीं जानने के कारण ये प्राणी संसार में भ्रमण करते रहते हैं। अतः भगवान् के द्वारा करुणापूर्वक उन लोगों को अनेक उपायों और युक्तियों के द्वारा सन्मार्ग पर लाया जाता है। (तोहकु० 166)

वहीं अभिधर्मकोश में **अनात्मपञ्चस्कन्ध मात्र** व्यक्ति को पञ्चस्कन्धात्मक कहा गया है या पुद्गल कहा गया है। प्रतीत्यसमुत्पाद के नियम द्वारा बाह्य आभ्यन्तर सभी वस्तुयें धर्म द्वादशांग प्रतीत्यसमुत्पाद बतलाये गया जो प्राचीन वेद, उपनिषद आदि जितने भी नित्य, ध्रुव, अविनाशी तत्व, ईश्वर, आत्मा आदि का खण्डन करते हुए तथा शाश्वत दृष्टि को महा अविद्या बताते हैं। मज्झिमनिकाय के महातण्डा-संख्य-सुत में विस्तार से इसका उपदेश किया है, जहाँ वस्तुवादी वैभाषिक, सौत्रान्तिक और विज्ञानवादियों ने प्रतीत्यसमुत्पाद को संस्कृत धर्मों तक सीमित रखा वही निःस्वभाववादी आचार्य नागार्जुन ने प्रतीत्यसमुत्पाद को संस्कृत, असंस्कृत दोनों पर लागू करते हुए सभी वस्तुओं को, धर्मों को शून्यता में प्रतिपादित किया।

सामान्यतः मेरी दृष्टि में अस्तित्ववादियों को तीन भागों में बाँटा जा सकता है। पहला बौद्धेतर जो ईश्वर, आत्मा, परमाणु, प्रकृति आदि को परमार्थतः अहेतुक, अविनाशी, नित्य, इकाई के रूप में स्वीकारता है। दूसरा बौद्ध में वस्तुवादी और विज्ञानवादी जो सभी वस्तुओं को परमार्थतः स्वीकारता तो है लेकिन वह इकाई, नित्य, कूटस्थ नहीं मानी जाती, अपितु संघात और हेतु-प्रत्यय से उत्पन्न अर्थात् प्रतीत्यसमुत्पन्न कही जाती है। तीसरा वस्तु परमार्थतः निःस्वभाव होते हुए भी व्यवहार में, मृग-मरीचि और प्रतिबिम्ब आदि सदृश उसे वे मानते हैं और ऐसा भी नहीं कि वे वस्तुओं को शशशृंग या खपुष्प या बन्ध्या पुत्र सदृश मानते हों। उनका मानना है कि वस्तुयें दिखती हैं लेकिन स्वभावगत नहीं हैं। वस्तुवादियों का कहना है कि यदि कोई वस्तु परमार्थ हो तो उसका अस्तित्व होगा। यदि वस्तु के परमार्थतः न हो तो वह संवृति में भी ख-पुष्प या बन्ध्या पुत्र सदृश होगी अर्थात् उसका अभाव हो जायेगा। वस्तुवादियों के इस मान्यता का उत्तर देते हुए **मध्यमकावतार** में वस्तुवादियों के साथ विवाद करते समय चन्द्रकीर्ति उनसे कहते हैं कि पहले तुम तिमिर से ग्रसित जो बाल आदि गिरते रोगी से विवाद करो कि वहाँ कुछ नहीं है जो तुम बाल गिरते सदृश दिखता है वह ख-पुष्प या बन्ध्या पुत्र सदृश है। यदि तुम उस रोगी को उसका विषय ख-पुष्प सदृश है। सिद्ध कर सकोगे तो हम माध्यमिकों के साथ

विवाद करना अन्यथा वस्तु का अस्तित्व हो तो परमार्थतः होना चाहिये अन्यथा वह अभाव है, ख-पुष्प सदृश है, ऐसा मानना तुम्हारी अज्ञानता है। (6.108) अतः नागार्जुन रत्नावली में कहते हैं-

मायागजस्य दृश्यते यथा जन्मान्तर एव च ।
न च कश्चित् तत्त्वेन जन्मान्तश्चैव विद्यते ।।
मायोपमस्य लोकस्य तथा जन्मान्त एव च ।
दृश्यते परमार्थेन न च जन्मन्ति एव च ।। (2-10-11)

अर्थात् माया गज का कहीं आना या जाना नहीं होता, बस दिखता है। उसी प्रकार इस जगत् का स्वभाव भी मात्र प्रतिबिम्ब या स्वप्न मात्र सदृश है, पारमार्थिक कोई अस्तित्व नहीं रहता।

शान्तिदेव के बोधिचर्यावतार में विज्ञानवादियों के साथ विवाद करते समय विज्ञान-वादियों का आक्षेप यथा-

यदा न भ्रान्तिरप्यस्ति माया केनोपलभ्यते ।

अर्थात् बाह्य सभी धर्म-वस्तुयें भ्रान्ति या माया है। वह ठीक है, लेकिन भ्रान्ति ग्रहण करने वाली बुद्धि भी मायासदृश भ्रान्त है तो वह कैसे अनुभव करेगा? उसके प्रत्युत्तर में शान्तिदेव कहते हैं-

यदा मायैव ते नास्ति तदा किमुपलभ्यते । (9-15)

अर्थात् जब विषय माया सदृश होकर भी अनुभव कर सकता हो तो बुद्धि माया-सदृश होने पर क्यों न अनुभव करेगी?

अर्थात् भ्रान्ति का विषय वास्तव में वहाँ नहीं होता, जैसे स्वप्न में अनुभव की जाने वाली वस्तु जहाँ नहीं होती। इसमें हम आप माध्यमिकों से सहमत हैं, लेकिन भ्रान्तमय चित्त का भी अस्तित्व न हो तो, भ्रान्ति को कैसे अनुभव करेगा ? जैसे चित्त भी न हो, तो स्वप्न का अनुभव कौन करेगा? अतः चित्त को तो परमार्थतः होना ही चाहिये। उसका शान्तिदेव प्रत्युत्तर देते हुए कहते हैं- जैसे विषय के परमार्थतः अस्तित्व न होने पर भी चित्त को अनुभव हो सकता हो तो चित्त के परमार्थतः न होने पर भी व्यवहार में क्यों अनुभव नहीं कर सकता? इससे यह स्पष्ट हो जाता है। माध्यमिक दृष्टि से वस्तुओं का किसी भी प्रकार का पारमार्थिक अस्तित्व नहीं है। अतः इसे वस्तु को उत्पन्न होने के लिये किसी प्रकार का स्वतः परतः उभय या अहेतुक उत्पाद होने की आवश्यकता नहीं। जैसे स्वप्न के बालक के पैदा होने और मृत्यु को न आप स्वतः परतः उभय या अहेतुक आदि कह सकते हैं। अतः वस्तुओं का पारमार्थिक कोई अस्तित्व नहीं है, मात्र माया या स्वप्न सदृश है। अनवतप्तनागराजपरिपृच्छासूत्र में कहा है-

जो कारणों से हेतु-प्रत्ययों से उत्पन्न होता है, वह उत्पन्न ही नहीं है, क्योंकि उसमें स्वभावतः, उत्पाद का सामर्थ्य नहीं है। जो प्रत्ययों के अधीन है, वह शून्य कहा गया है और जो शून्यता को जानता है, वही प्रमादरहित है। (तोहकु० 156)

दूसरी ओर बौद्ध वस्तुवादी तथा विज्ञानवादियों की दृष्टि से देखा जाय तो वस्तु की उत्पत्ति और विनाश तराजू की तकली की तरह समकालीन होता है जैसे कि शालिस्तम्बसूत्र में कहा है। क्योंकि उत्पत्ति ही व्यय अथवा विनाश का कारण होता है, विनाश का कोई दूसरा कारण नहीं होता, क्योंकि विनाश अभाव स्वरूप होता है। उसकी उत्पत्ति किसी अन्य के द्वारा संभव नहीं हो सकती। वैभाषिक इससे कुछ भिन्न मत रखते हैं, जिसका खण्डन अभिधर्मकोश के **चतुर्थस्थान** में हुआ है, शेष बौद्धों के सभी प्रस्थान उत्पत्ति-विनाश को समकालीन मानते हैं। उदाहरण के लिए तराजू के पलड़े का समकालीन ऊपर-नीचे होना या शब्द जैसे ही उच्चारित हुआ, स्वयं उसका क्षय हो जाना। अर्थात् उत्पत्ति-व्यय समकालीन होता है, तो हम जो अनुभव कर रहे हैं, वह अलातचक्र की तरह भ्रान्ति या स्वप्न की तरह नहीं है तो क्या है ? जैसे जो अतीत हो गया, वह नहीं रहता। भविष्य उत्पन्न नहीं हुआ है। वर्तमान कितना है, देख सकें समझ सकें। क्या इसे ही हम स्वप्न सदृश नहीं कह सकते हैं? माया सदृश नहीं कह सकते हैं? इसे समझने के लिये हमें शमथ और विपश्यना का सहारा लेना होगा। बौद्ध धर्म में यह किसी आचार्य या ईश्वर की कृपा से हमें प्राप्त नहीं हो सकती, अपितु स्वयं हमें अपना प्रयास करना होता है। बुद्ध तो मात्र हमारे मार्गदर्शक हैं। यथा धम्मपद में कहा है- (276) **"तुम्हेहि किच्चं आतप्पं अक्खातारो तथागता।"** तुम्हें ही कृत्य करना है, तथागत तो केवल मार्ग बतलाने वाले हैं, इस मार्ग पर आरूढ़ होकर ध्यान करने वाला ही मार के बन्धन से मुक्त होगा, क्योंकि क्लेश हमारे अपने चित्त के विकार हैं, उसे दूसरा कौन दूर कर सकता है। उदानवग्ग टीका में भी कहा है- **"न क्षालयन्ति मुनयो जलेन पापं नैवापकर्षन्ति करेण जगद्दुःखम्। नैव च संक्रमते स्व परधनम्॥"** बुद्ध सत्वों के पापों का जल से प्रक्षालन नहीं करते हैं, न ही सत्त्वों के दुःखों को अपने हाथों से काँटें निकालने के समान उत्कीलन करते (उखाड़ते) हैं तथा बुद्ध अपने ज्ञान को संक्रमित नहीं करते, बल्कि सभी धर्मों के वास्तविक तत्व की देशना द्वारा जीवों को मुक्त करते हैं। (तोहकु० 326)

धर्मसंगीतिसूत्र में भी कहा है- बोधि किसी के द्वारा प्रदान नहीं की जा सकती है, न किसी के द्वारा ग्रहण की जा सकती है। स्वधर्म (तत्व) का परिज्ञान होने पर उस ज्ञाता को बुद्ध कहा जाता है। (तोहकु० 302)

आर्यसन्धिनिर्मोचनसूत्र में कहा है कि विषय में आसक्ति अर्थात् निमित्त-बन्धन और दौष्ठुल्यों अर्थात् क्लेश-वासनाओं से प्राणी शमथ और विपश्यना की भावना करके विमुक्त हो सकता है। (तोहकु० 106) वहीं कहा है मैत्रेय! श्रावकों, बोधिसत्त्वों तथा तथागतों के जो भी

लौकिक, लोकोत्तर कुशल धर्म होते हैं, उन सभी को शमथ और विपश्यना का फल जानना चाहिये। अभिधर्मकोश में कहा है-

धर्माणां प्रविचयमन्तरेण नास्ति ।
क्लेशानां यत उपशान्तयेऽभ्युपायः ।। 1-3 ।।

धर्मप्रविचय ज्ञान के बिना क्लेश का नाश असम्भव है। अतः विपश्यना ज्ञान को उत्पन्न कर क्लेशों का क्षय करना चाहिये। बोधिचर्यावतार में भी कहा है-

शमथेन विपश्यनासुयुक्तः कुरुते क्लेशविनाशमित्यवेत्य ।। (8.4)

शमथ युक्त प्रज्ञा अर्थात् विपश्यना से युक्त होकर ही क्लेशों का नाश होता है। अतः शील में आरूढ़ होकर समाधिलब्ध होकर विपश्यना भावना द्वारा क्लेशों का क्षय होता है, अन्य कोई दूसरा मोक्ष का मार्ग नहीं है। शील और समाधि में थेरवाद, महायान में कोई मूल विरोधाभास नहीं होता। मात्र उद्देश्य भेद से अल्पाधिक अन्तर दिखेगा, लेकिन स्वभावगत नहीं।

विपश्यना में जहाँ थेरवाद वस्तुवादी होने के चलते काय आदि चार अनुस्मृतियों का अनिच्य, अनात्म आदि की भावना करते हैं। जैसे- यह शरीर असंख्य अणुओं का पुञ्ज है। क्षण-क्षण में उत्पत्ति व्यय हो रहा है। उससे भिन्न कोई उसमें स्थायी, शाश्वत आत्मा नाम का द्रव्य सत् वस्तु नहीं है, उत्पत्ति व्यय भी क्रमशः ऊर्जा या तरंग अवस्था के अतिरिक्त कुछ नहीं है। एक प्रकार से अद्वय या मौन अवस्था है। यही मोक्ष एवं निरोध स्वरूप है। इस पर साधक अधिकार प्राप्त कर मृत्यु के समय निरुपाधिशेष निर्वाण को प्राप्त करता है। तेलरूपी, काम, भव और विभव तृष्णा का क्षय कर निर्वाण को प्राप्त कर लेता है, अर्हत्व को प्राप्त करता है। सोपाधिशेष अर्हतों को दो भागों में बाँट सकते हैं यथा सालंकार और निरालंकार अर्हत। सालंकार अर्हतों में महाकाश्यप आदि हैं जो सभी सैंतीस बोधिपक्षों की क्रमशः साधना कर रूप, अरूप, निरोध समापत्ति आदि को प्राप्त कर षड् अभिज्ञ, 10 इन्द्रिय आदि प्राप्त करते हैं। जैसे तथागत ने महाकाश्यप को मेरे सदृश सभी आध्यात्मिक गुणों से अलंकृत है ऐसा कहा था।

दूसरा रूपधातु के मौल का आश्रय लेकर सभी क्लेशों का नाश कर तुरन्त अर्हत्व को प्राप्त करता है, वह रूप-अरूप आदि समाधियों को प्राप्त नहीं करता और अभिज्ञा आदि आध्यात्मिक गुण से रहित होता है। अतः वह निरालंकार अर्हत् कहलाता है।

महायानियों में विज्ञानवादी त्रिलक्षण का प्रतिपादन स्वसंवेद्य प्रभास्वर में स्थित होकर भावना करते हैं।

माध्यमिक सभी धर्मों की निःस्वभावता में प्रतिपादन करते हैं। यथा- बोधिचर्यावतार में कायस्मृत्युपस्थान को स्पष्ट करते हुए कहते हैं-

कायो न पादौ.....दिग्विभागो निरंशत्वादाकाशं तेन नास्त्यणु । (9,79-87)

काय, पाद नहीं है, पाद-पाद है, उसी प्रकार हाथ-हाथ है, काय नहीं है, काय कहाँ है? मात्र प्रज्ञप्तिमात्र हुआ, उसी प्रकार हाथ कहाँ है। बाजू-हथेली आदि बाजू और हथेली है हाथ प्रज्ञप्तिमात्र हुआ, उसी प्रकार हथेली कहाँ है, अँगुली अँगुली है, हथेली नहीं, इस प्रकार अँगुली भी जोड़ों का समूह मात्र जोड़ों का समूह भी अणुओं का समूह मात्र है। अणुओं का समूह भी-

षट्केन युगपद् योगात् परमाणोः षंडशता।
षण्णां समानदेशत्वात् पिण्डः स्पादणुमात्रकः ।। (विज्ञप्तिमात्रतासिद्धि)

अणु को छह दिशाओं से भेद करने पर उसका अस्तित्व भी नहीं रह जाता या इस अवस्था में पहुँच जाते हैं कि वहाँ हम न किसी भाव को स्वीकार कर सकते हैं, न अभाव को। अभाव से तो सृष्टि का निर्माण नहीं होगा। भाव है तो उसको परिलक्षित करना होगा, परिलक्षित हो तो वह संवृति से भिन्न नहीं होगा। अतः वह भावाभाव अतीत है। अद्वय अवस्था उसी का प्रतिपादन महायानी विपश्यना है। इसी तथ्य को समझने के लिए आचार्यों ने सत्यद्वय का प्रतिपादन किया है यथा बोधिचर्यावतार में कहा है-

संवृतिः परमार्थश्च सत्यद्वयमिदं मतम्।
बुद्धेरगोचरस्तत्वं बुद्धिः संवृतिरुच्यते।। 9-2 ।।

अर्थात् माध्यमिकों की दृष्टि में संवृति और परमार्थ दो सत्य हैं। बुद्धों का अगोचर परमार्थ और बुद्धिगोचर संवृतिसत्य है। वस्तु का प्रति आभास जो इन्द्रिय या विज्ञान का विषय है, वह संवृतिसत्य है और वस्तु का वास्तविक रूप परमार्थसत्य है। विभिन्न बौद्ध-प्रस्थानों ने इसकी अपनी-अपनी समझ के अनुसार व्याख्या की है। यथा वैभाषिक बाह्यार्थवादी है, क्योंकि आन्तरिक एवं बाह्य सभी धर्मों की वस्तु सत्ता स्वीकारते हैं। वसुबन्धु अभिधर्मकोश में सत्यद्वय का प्रतिपादन करते हुए कहते हैं-

यत्र भिन्नेन तद्बुद्धिरन्यापोहे श्रिया च तत्।
घटाम्बुवत् संवृतिसत् परमार्थसिद्धन्यथा।। (6.4)

अर्थात् घट, पट आदि अवयवों का भेद करने या अलग-अलग करने पर जिस विषय का बुद्धि द्वारा नष्ट होता है, वह संवृतिसत्य है और जिस वस्तु या धर्म का बुद्धि के द्वारा विश्लेषण करने पर तद् विषय नाश नहीं होता, वह परमार्थसत्य है क्रमशः घट, पट आदि संवृति सत्य और परमाणु, ज्ञान और निरोध आदि परमार्थसत्य है। वैभाषिक परमाणु को निरवयव मानते हैं। सौत्रान्तिकों के अनुसार सत्यद्वय प्रमाणवार्तिक के प्रत्यक्षपरिच्छेद में कहा है। यथा-

मानं द्विविधं विषयद्वैविध्यात् शक्त्यशक्तितः।
अर्थक्रियायां केशादिर्नार्थोऽनर्थाधिमोक्षतः ।। (2.1)

सौत्रान्तिकों में आगम के अनुयायी वैभाषिकों की तरह ही स्वीकारते हैं। युक्ति अनुयायी सौत्रान्तिक अर्थक्रिया समर्थ है और प्रत्यक्ष आदि प्रामाणिक बुद्धि का विषय परमार्थसत्य है। जैसे- घट, पट आदि और समाहित ज्ञान में वह संस्कार स्कन्धों का साक्षात् प्रत्यक्ष कर आत्मशून्यता और निर्वाण उस प्रत्यक्ष के सामर्थ्य से करता है।

अर्थक्रिया असमर्थतः संवृतिसत्य है। जैसे- सामान्य लक्षण, असंस्कृत एवं अकृतक धर्म संवृतिसत्य का नाम पर्याय है। संवृति का अभिप्राय विकल्प ज्ञान है। विकल्प संवृति इसलिये है कि वह हमें वस्तु की यथास्थिति को ग्रहण करने में आवृत करती है।

विज्ञानवादियों के अनुसार बाह्यार्थ नहीं स्वीकारते। यथा-

दृश्यं न विद्यते बाह्यं चित्तं चित्रं हि दृश्यते।
देहभोगप्रतिष्ठानं चित्तमात्रं वदाम्यहम्॥ (लंकावतारसूत्र 3.32)

अर्थात् बाह्यार्थ को नहीं मानते हैं और सत्यद्वय की व्यवस्था त्रिलक्षणों के द्वारा करते हैं। यथा-

इदं सर्वं समासेन विज्ञेयं द्विप्रकारकम्।
धर्मत्वेन तथा धर्मतात्वेन सर्वसंग्रहात्॥ (धर्मधर्मताविभंग, श्लोक-2)

अर्थात् इन सबको संक्षेप में दो प्रकार का समझना चाहिये, क्योंकि धर्म तथा धर्मता में सब संगृहीत हो जाता है।

तीन लक्षण हैं- परिकल्पित, परतन्त्र और परिनिष्पन्न लक्षण, जिसमें परतन्त्रलक्षण और परिकल्पित लक्षण संवृतिसत्य है और परिनिष्पन्न लक्षण परमार्थसत्य है। इसे हम संक्षेप में इस प्रकार समझ सकते हैं, जो हेतु-प्रत्ययों से उत्पन्न है, वह परतन्त्र है। परतन्त्र को चित्त से भिन्न बाह्यार्थ के रूप में देखना परिकल्पित लक्षण है और चित्त से रहित बाह्यार्थ की अभाव रहितता जानना परिनिष्पन्न है। यद्यपि इन तीनों लक्षणों के पुनः आभ्यन्तर दो-दो भेद हो जाते हैं। विस्तार के लिये यहाँ अवकाश नहीं है।

माध्यमिकों की दृष्टि में चन्द्रकीर्ति ने कहा है-

सम्यग्मृषादर्शनलब्धभावं रूपद्वयं बिभ्रति सर्वभावाः।
सम्यग्दृशां यो विषयः स तत्त्वं मृषादृशां संवृतिसत्यमुक्तम्॥ (6.23)

वस्तु के दो स्वरूप हैं- सम्यक् और मिथ्या। वस्तु की निःस्वभावता अर्थात् प्रथम भूमिलब्धेतर बोधिसत्वों का प्रत्यक्ष एवं समाहित ज्ञान परमार्थसत्य है जो अद्वयज्ञान होता है और रूप, वेदना आदि का स्वभावतः स्वरूप ग्रहण करना संवृतिसत्य है।

जिस प्रकार सत्यद्वय की व्यवस्था में बौद्ध प्रस्थानों में विभिन्नता है, उसी प्रकार प्रतीत्यसमुत्पाद की व्याख्या में भी अपनी-अपनी दार्शनिक पृष्ठभूमि के अनुसार व्याख्या की जाती है। यथा- वस्तुवादी वस्तुओं को परमार्थतः सिद्ध करने के लिये प्रतीत्यसमुत्पाद सिद्धान्त

को उद्धृत कर सकते हैं। "**अस्मिन् सति इदं भवति । अस्य उत्पादादिदमुत्पत्यते** ।" अर्थात् इसके होने से इसकी स्थिति होती है। इसके उत्पन्न होने से इसकी उत्पत्ति। अतः वस्तु परमार्थ नहीं होते तो बुद्ध षड् हेतु, चारप्रत्यय, पंचफल आदि की देशना नहीं करते। अतः ऐसा वस्तुवादियों का मानना है कि वस्तुओं का परमार्थतः अस्तित्व होता है। वहीं नागार्जुन प्रतीत्यसमुत्पाद को वस्तु की पारमार्थिक निःस्वभावता को सिद्ध करने के लिये प्रयोग करते हैं। वे कहते हैं कि घट-पट आदि बाह्य आभ्यन्तर धर्मों का पारमार्थिक अस्तित्व होता तो उसे अन्य किसी हेतु-प्रत्यय पर निर्भर नहीं रहना पड़ता। अतः वस्तुओं का पारमार्थिक अस्तित्व नहीं है। अतः उसे अन्य पर निर्भर रहना पड़ता है। यथा- पिता का पुत्र, ज्ञेय का ज्ञान के अभाव में अस्तित्व नहीं होता। अतः वह सापेक्ष है, प्रतीत्यसमुत्पन्न है, निःस्वभाव है। नागार्जुन कहते हैं-

सर्वं च युज्यते तस्य शून्यता यस्य युज्यते।
सर्वं न युज्यते तस्य शून्यं यस्य न युज्यते।। (24.14 मू.का.)

अर्थात् उसे सभी संभव है जो वस्तुओं के स्वरूप में शून्यता देखता है। उसके विपरीत-

अस्तीति शाश्वतग्राहो नास्तीत्युच्छेददर्शनम्।
तस्माद् अस्तित्वनास्तित्वे नाश्रीयेत विचक्षणः।। (13.2)

जो अस्ति का अभिप्राय शाश्वत और अनस्ति का अर्थ उच्छेद में लेगा वह अन्त दो में पतित होगा और वस्तु का सृष्टि और विनाश का क्रम सिद्ध नहीं हो पायेगा और न वह मध्यम प्रतिपदा कहलायेगा। अतः बौद्ध साधक को आर्यकात्यायनाववादसूत्र के अनुसार अस्ति-अनस्ति, शुद्धि-अशुद्धि अन्तों से रहित ही नहीं, अपितु उसके मध्य आदि की अवधारणा से भी ऊपर उठना चाहिये। वस्तु की वास्तविकता शून्यता है, अद्वय एवं निष्प्रपञ्च अवस्था है।

परमार्थ एवं शून्यता अर्थात् निष्प्रपञ्च अवस्था दर्शन का एक अत्यन्त दुरूह विषय है। इसे किसी ने शून्यता को अभाव समझा तो किसी ने ईश्वर, आत्मा, ब्रह्मतत्त्व आदि के रूप में अजर, अमर, नित्य आदि समझा। इस प्रकार ये शाश्वत और उच्छेद में पतित हो गये। बौद्धों के वस्तुवादियों ने निरवयव अणु एवं चित्त को पारमार्थिक माना, जबकि नागार्जुन ने परमाणुओं का विश्लेषण किया और कहा कि एक जल अणु को बनने के लिये अन्य अग्नि, वायुधातु की आवश्यकता होती है, उसके बिना जल अणु नहीं बन सकता। जब जल अणु नहीं बनेगा, अन्य का अस्तित्व भी कैसे होगा? इसका अर्थ यह नहीं कि वह शशशृंग हो गया या ख-पुष्प सदृश हो गया। यदि ऐसा होता तो सृष्टि संभव ही नहीं होगी। अतः वह भावाभाव अतीत है, लक्षणालक्षण अतीत है। जब विषय भावाभाव अतीत होगा, विषयी ज्ञान भी वैसा ही होगा। वह अनिर्वचनीय होगा, अद्वय होगा, शून्य नहीं शून्यता होगा, वह व्यक्तिगत होगा, ब्रह्मतत्व या ईश्वर की तरह भी नहीं होगा और मात्र चैतन्य या मात्र जड़रूपी आत्मा की तरह भी नहीं होगा। वह संवृति रूप में जड़-चेतन अर्थात् अभिधर्म के शब्दों में नामरूप और वज्रयान में सूक्ष्म

प्राणचित्त या ऊर्जा और चैतन्य का अभिन्न रूप होगा । वह निर्लक्षण स्वरूप होगा, क्योंकि विषय-विषयी अतीत है । यही तथागत गर्भ है, यही हमारे बुद्ध बनने की क्षमता है । यही सूक्ष्म ऊर्जा हमारे काय का उपादान कारक है और चेतनास्वरूप हमारे चित्त का उपादान कारक है । यह अभिन्न रूप है । अतः वज्रयान में गुह्यसमाज का अर्थ भी यही है कि काय ही वाक् है, वाक् ही चित्त है । चित्त ही काय है, चित्त ही वाक् है, यह सब अभिन्न है, यही वज्रकाय है । सभी देवी-देवता इसी के विक्रुवित रूप हैं । अतः देवी-देवताओं का एक पारमार्थिक रूप नहीं है । जैसी आप भावना करें, वैसा उस सूक्ष्म प्राणचित्त या तथागतगर्भ से प्रकट होता है । अतः अवलोकितेश्वर मञ्जुश्री आदि एक देवता के भी सैकड़ों रूप हैं ।

वस्तुओं की निःस्वभावता, निष्प्रपञ्चता एवं निर्लक्षणता के चलते थेरवाद परम्परा से लेकर वज्रयान परम्परा तक ..... नरकंकाल आदि की जैसी-जैसी आप भावना करें, वैसे-वैसे प्रकट होने की बात कही गयी है । यथा- प्रमाणवार्तिक में भी कहा है-

तस्माद् भूतमभूतं वा यद् यदेवातिभाव्यते ।
भावनापरिनिष्पत्तौ तत् स्फुटाकल्पधीफलम् ।। (3.285)

हमारी वास्तविक स्थिति उक्त निष्प्रपञ्चता को समझोगे तो सभी विविधताओं को समझोगे और यह उसी के साक्षात्कार के उपाय मात्र हैं । समझ आयेगा । जैसे नागार्जुन ने कहा है- जो शून्यता को समझेगा, उसके लिये सभी उचित होगा ।

सर्वं च युज्यते तस्य शून्यता यस्य युज्यते ।
सर्वं न युज्यते तस्य शून्यं यस्य न युज्यते ।। (24.14)

यहाँ किसी भी प्रकार की दृष्टि नहीं होगी, मान्यता नहीं होगी । किसी लाइन पर चलना नहीं होगा और व्यवहार में किसी भी प्रकार का परिवर्तन, परिष्कार देशकाल के अनुसार प्रतीत्यसमुत्पाद द्वारा सृजन कर सकेंगे । स्वचित्त, स्व-अवस्थ, निजचित्त को समझने का कोई तयशुदा उपाय नहीं हो सकता । यह विविध बौद्ध परम्परा से समझ सकते हैं । वहीं बौद्ध धर्म में किसी भी प्रकार के वर्ण, जाति, लिंग का भेद नहीं होता । सबका स्वरूप उस सूक्ष्म ऊर्जा चित्त रूप है । थेरवाद में जहाँ अर्हत् प्राप्ति पर सैकड़ों थेर और थेरियों का उद्गार थेर-थेरी गाथा में मिलता है । महायान में कुलपुत्र कुलपुत्री के रूप में बोधिसत्व और बोधिसत्वी के रूप मिलेंगे, वहीं वज्रयान में अनेक पितृदेव और मातृदेव मिलेंगे । बौद्ध धर्म वर्ण, जाति या कुल का अभिप्राय वस्तुवादियों के अनुसार..... **अलोभः आर्यवंशाश्च** (6.7), क्योंकि इनका उद्देश्य अर्हत्व प्राप्त करना होता है, वह अलोभ-काम, भव और विभव तृष्णा रहित होने पर प्राप्त किया जा सकता है । अतः उसके अनुसार सभी में अलोभ का बीज रहता है । यही कुल है, इसके विकास से प्राणी अर्हत्व की प्राप्ति करता है । अतः इसमें सामाजिक वर्ण या लिंग का कोई

स्थान नहीं रहता। वहीं महायान में सम्पूर्ण प्राणीमात्र में बुद्धत्वगर्भ अर्थात् बुद्ध बनने के बीज समाहित रहते हैं।

सम्बुद्धकायस्फरणात् तथताव्यतिभेदतः ।
गोत्रतश्च सदा सर्वे, बुद्धगर्भाः शरीरिणः ।। (उत्तरतन्त्र 1.28)

उसी के विकास से प्राणी बुद्ध बन सकता है। यह क्षमता मानवमात्र नहीं, अपितु प्राणिमात्र में रहता है। अतः पुरुष स्त्री का तो कोई प्रश्न ही नहीं उठता है। वज्रयान में तो सभी प्राणी दिव्य माने गये हैं, अज्ञानतावश अपने को वह नहीं समझ सका है। अतः वज्रयानी साधक सम्पूर्ण भाजन और सत्वलोकों के दिव्य इष्टदेव के मण्डल के रूप में भावना कर साधना करता है। यहाँ भी किसी प्रकार का वर्ण या लिंग से कोई प्रयोजन नहीं है।

यथेन्धनं समाश्रित्य तेजो बीजं तु संस्थितम्।
तिलेषु वा यथा तैलं रस इक्षोः प्रकल्पितः ।।
पुष्पेषु वा यथा गन्धो दधि व नवनीतकम्।
सर्वत्र सर्वसत्त्वेषु स्थावरे जंगमेषु च।।
रूपारूपगता चापि महामुद्रा प्रतिष्ठिता।। (ज्ञा.सि., पृ. 43)

प्रतीत्यसमुत्पाद का सिद्धान्त एक रामबाण औषधि की तरह है। यह लोक और लोकोत्तर सभी उपलब्धियों का आधार है। जहाँ प्रतीत्यसमुत्पाद की युक्ति सभी धर्मों की निःस्वभावता का प्रतिपादन कर मोक्ष का मार्ग प्रशस्त करता है, वही प्रतीत्यसमुत्पाद, सापेक्षता का सिद्धान्त हमें परिवार, समाज, राष्ट्र, अन्तर्राष्ट्रीय, आधुनिक पर्यावरण आदि सभी समस्याओं का बोध कराता है। सम्पूर्ण विश्व एक-दूसरे पर साक्षेप है कोई निरपेक्ष नहीं है यदि इसे समझा तो सभी समस्याओं का समाधान अपने से हो जायेगा। जो कम्पनियों के अधिकारी यह समझ जायें कि उनका मुनाफा उनके कर्मियों और मजदूरों के चलते है, नेता जनता के चलते है, डॉ. रोगी के चलते है और अध्यापक शिष्य के चलते, यह सुन्दर भवन मजदूरों के चलते और भोजन वस्त्र किसानों के चलते आदि स्वपर सापेक्षता को समझ कर ऋणीभाव पैदा करना जाने तो यह लोक स्वर्ग हो जायेगा। सभी नैतिक भावों में मैं ऋणीभाव को सर्वोच्च भाव मानता हूँ। इसमें किसी प्रकार का अहंकार नहीं अन्यथा मैत्री, करुणा, आदि भावों में कभी-कभी अपनी श्रेष्ठता का भाव पैदा होने की संभावना रहती है, जबकि ऋणीभाव में आप दूसरों को अपने सुख और सुविधा का कारण या स्रोत के रूप में देखते हैं, इसको समझ पा रहे हैं, अतः वहाँ अहंकार भाव पैदा नहीं होगा। वह दूसरों के प्रति वास्तविक आदर होगा। प्रतीत्यसमुत्पाद दर्शन हमें अपने कर्तव्य को ईमानदारी से करने के लिये प्रेरित करता है। इसे ही मैं Engaged Buddhism कहता हूँ।

सन्दर्भ ग्रन्थसूची-

1. अभिधम्मत्थसंगहो - आचार्य-अनुरुद्ध प्रणीत, सम्पादक एवं व्याख्याकार- भदन्त रेवत धम्म और प्रो. रामशंकर त्रिपाठी, सं.सं.वि.वि., वाराणसी, 1967
2. धम्मपद - अनुवादक एवं व्याख्याकार- प्रो. वङ्छुग दोर्जे नेगी, दि कार्पोरेट बाडी आफ दि बुद्धा एजुकेशन फाउन्डेशन, ताइवान, 2003 में प्रकाशित।
3. अभिधर्मकोशभाष्यम् (वसुबन्धु) - स्वामी द्वारिकादास शास्त्री द्वारा सम्पादित, वाराणसी, 2008
4. माध्यमिक अवतार - कर्ग्युद कमेटी, सारनाथ, वाराणसी, 2004
5. आर्यराष्ट्रपालपरिच्छासूत्र नाम - तोहकु. 166
6. रत्नावली (नागार्जुन) - अनुवादक एवं सम्पादक- नोर्बू ज्ञलछेन नेगी, ए. के., प्रकाशन, 2018
7. बोधिचर्यावतार (शान्तिदेव) - प्रो. रामशंकर त्रिपाठी द्वारा अनूदित, बौद्ध विद्या संस्थान, लेह, 2014
8. नागराजपरिपृच्छा नाम सूत्र - तोहकु. 156
9. भिक्षुसुप्रियसूत्र नाम - तोहकु. 302
10. विज्ञप्तिमात्रतासिद्धि - सम्पा.-थुबतन छोगडुब शास्त्री तथा प्रो. रामशंकर त्रिपाठी, सं.सं.वि.वि., वाराणसी, 1983
11. प्रमाणवार्तिक - सम्पा.-स्वामी द्वारिकादास शास्त्री, बौद्ध भारतीय प्रकाशन, वाराणसी, 1968
12. लंकावतारसूत्र - सम्पा.-डॉ. पी.एल. वैद्य, बौद्ध संस्कृत ग्रन्थावली-3, मिथिला विद्यापीठ, दरभंगा, 1963
13. मध्यमकशास्त्रम् - सम्पा.-डॉ. पी.एल. वैद्य, बौद्ध संस्कृत ग्रन्थावली-10, मिथिला विद्यापीठ, दरभंगा, 1987
14. महायानोत्तरतन्त्र - सम्पा.-एच.एस. प्रसाद, सतगुरु प्रकाशन, 1991
15. ज्ञानसिद्धि - दुर्लभ बौद्ध ग्रन्थ माला-1, के.उ.ति.शि.सं., सारनाथ, वाराणसी, 1987
16. गुह्यसमाजतन्त्र - मिथिला, दरभंगा।
17. आर्यसन्धिनिर्मोचन नाम सूत्र - तोहकु. 106
18. उद्दानवर्ग - तोहकु. 326
19. धर्मधर्मताविभंग - अनु.-छुलठिम फुनछोग, के.उ.ति.शि.सं., सारनाथ, वाराणसी, 1995

कुलपति (अ.प्र.)
के.उ.ति.शि.सं., सारनाथ, वाराणसी
मो.नं.- 9140662863

भारत एवं तिब्बत : एक सांस्कृतिक पर्यालोचन

—प्रो. रामशंकर त्रिपाठी—

भारतीय संस्कृति में व्यवस्थावादी एवं उदारवादी दो धाराएं स्पष्टतः देखी जा सकती हैं। ब्राह्मण-संस्कृति व्यवस्थावादी तथा श्रमणसंस्कृति प्राय: उदारवादी रही है । लोकोन्मुखता, लोकपरायणता, लोकसमता एवं मानवश्रेष्ठता उदारवादी श्रमण-संस्कृति की विशेषता है। यद्यपि व्यवस्था एवं उदारता के तत्त्व दोनों संस्कृतियों में देखे जा सकते हैं, किन्तु प्रश्न प्रमुखता का है। दोनों संस्कृतियाँ एक ही भूमि में उत्पन्न हुईं, पल्लवित, पुष्पित एवं विकसित हुईं, अत: दोनों में परस्पर आदान-प्रदान भी होता रहा है, फिर भी (1) व्यवस्था मानव के लिए है और मानवहित में उसमें परिवर्तन किया जा सकता है । अथवा (2) वह ईश्वरकृत है या स्वत:प्रमाण वेदादि शास्त्रानुमोदित है, अत: उसमें परिवर्तन सम्भव नहीं है, ये दोनों विवाद के प्रमुख केन्द्र रहे हैं।

अतिप्राचीन काल से भारतीय संस्कृति लोककल्याण की ओर उन्मुख रही है। इसी भावना से प्रेरित होकर भारतीय मनीषी विश्व के कोने-कोने में उसके सन्देश को लेकर गये। अज्ञान और अज्ञानजनित दु:खों से मुक्ति दिलाकर मनुष्य को जीवन की कृतार्थता का अनुभव कराना उसका प्रमुख उद्देश्य रहा है। इस प्रयास के मूल में निश्चित रूप से करुणा और मानव-प्रेम की भावना निहित रही है। इसका प्रारम्भिक संकेत हमें **'कृण्वन्तो विश्वमार्यम्' इस वैदिक उद्घोष में प्राप्त होता है**। इस भावना को तब नई गति और नया बल प्राप्त हुआ, जब भगवान बुद्ध ने अपने अनुयायी भिक्षुओं को **'चरथ भिक्खे चारिकं बहुजनहिताय बहुजनसुखाय'** की अनुज्ञा दी। सम्राट् अशोक का योगदान भी इस दिशा में अविस्मरणीय है। भगवान बुद्ध की करुणा से प्रेरित होकर उनके अनुयायी भिक्षु शताब्दियों तक उन दुर्गम क्षेत्रों में पहुँचते रहे, जहाँ ज्ञान आलोक की आवश्यकता थी और जहाँ के मानव अपने कल्याण के मार्ग की तलाश में थे । मार्ग की कठिनाइयाँ, हिंस्र जन्तुओं से परिपूर्ण बीहड़ जंगल, बडे-बड़े रेगिस्तान और समुद्र भी उनकी यात्रा और उत्साह को रोक न सके। इन धर्मदूतों में सभी आयु के पुरुष थे, उनमें से अनेक तो रास्ते में ही कालकवलित हो गये, किन्तु यह क्रम अबाध गति से निरन्तर चलता रहा। फलतः उन्होंने विश्व के प्रायः आधे गोलार्ध को भगवान बुद्ध के धर्मालोक से आलोकित कर दिया।

भारत और तिब्बत का सांस्कृतिक सम्बन्ध आस्था और निष्ठा की दृढ़ भूमि पर आधारित है। इसके पीछे कोई महत्त्वाकांक्षा, स्वार्थ, भय या विस्तार की भावना निहित नहीं है। इसका प्रारम्भ सातवीं शताब्दी में तब प्रारम्भ होता है, जब तिब्बत के 33वें सम्राट् स्रोन-चन-गम्पो वहां के शासक थे। वे बड़े प्रतापी थे। उन्होंने युद्ध में चीन के सम्राट् को पराजित किया था और उसकी पुत्री को लेकर सुलह की थी, जिसे उन्होंने बाद में अपनी रानी बनाया। उनकी दूसरी रानी नेपाल

की थी। दोनों रानियाँ अपने साथ बुद्ध की मूर्तियाँ लाई थीं, जिन पर सम्राट् ने दो मन्दिर बनवाए। चीनी रानी की मूर्ति पर स्थापित मन्दिर, जिसे चोखङ् कहते हैं, वह तिब्बत की राजधानी ल्हासा में स्थित है और वह तिब्बतियों में अत्यन्त प्रसिद्ध और श्रद्धा का केन्द्र है। सम्राट् ने भगवान बुद्ध की शिक्षा से प्रभावित होकर अपने एक मन्त्री थोन-मि-सम्भोट को अध्ययनार्थ भारत भेजा। उन्होंने यहाँ प्रमुखत: नालन्दा विश्वविद्यालय में निवास करते हुए बौद्धधर्म और दर्शन के साथ संस्कृत भाषा और उसके व्याकरण का गम्भीर अध्ययन किया। तिब्बत लौट कर भारत की ब्राह्मी लिपि के अनुरूप भोटीय वर्ण-लिपि का सर्जन किया और समस्त अङ्गों से परिपूर्ण भोट व्याकरण का निर्माण किया। साथ ही सूत्र और तन्त्र के इक्कीस ग्रन्थों का भोटभाषा में अनुवाद भी किया। उनके इस सत्प्रयास से ही आगे चलकर संस्कृत के ग्रन्थों का भोटभाषा में प्रामाणिक अनुवाद सम्भव हो सका। फिर भी सम्राट् स्रोङ्-चन-गम्पो के काल में अधिक ग्रन्थों का अनुवाद नहीं हो सका।

आठवीं शताब्दी के तिब्बत के सम्राट् ठिसोङ देचन के काल में इस कार्य में अत्यधिक तीव्रता आई। उन्होंने बौद्ध धर्म-दर्शन के प्रकाण्ड पण्डित बोधिसत्त्व आचार्य शान्तरक्षित को भारत से तिब्बत आने के लिए निमन्त्रित किया। उन्होंने न केवल ग्रन्थों के अनुवाद कार्य में पुष्कल योगदान किया, अपितु उन्होंने तिब्बत में बौद्धधर्म के आधार को पुष्ट करने में महत्वपूर्ण कार्य किया। उन्होंने पहले-पहल स्थानीय तिब्बती युवकों को भिक्षु दीक्षा प्रदान की। उन्होंने सुप्रसिद्ध 'समय' विहार के निर्माण में। जब अमानुषिक बाधाएं आने लगी तो उन्हें पराजित करने के लिए भारत से तान्त्रिक आचार्य पद्मसम्भव को निमन्त्रित किया। तब आचार्य पद्मसम्भव के संरक्षण में उस कार्य को सम्पन्न किया गया। चीनी विद्वान् हशंग ने बौद्धधर्म के नाम पर ऐसे सिद्धान्त का तिब्बत में प्रचार करना प्रारम्भ किया, जो भारतीय परम्परा के विपरीत था। अनेक तिब्बती जन उसके प्रभाव में आने लगे। यह धर्म के लिए संकट का काल था। राजा के लिए यह चिन्ता का कारण बन गया। उस विषम स्थिति में आचार्य शान्तरक्षित की भविष्यवाणी के अनुसार भारत से उनके शिष्य आचार्य कमलशील को निमन्त्रित किया गया। आचार्य कमलशील ने शास्त्रार्थ में चीनी विद्वान् हशंग को परास्त किया और तिब्बती लोगों को गुमराह होने से बचा लिया। साथ ही, परिशुद्ध भारतीय बौद्ध धर्म की परम्परा को स्थापित करने में महनीय योगदान किया।

नौवीं शताब्दी के सम्राट् रल्पा-चेन के काल में भी बौद्ध धर्म के प्रचार-प्रसार और ग्रन्थों का अनुवाद-कार्य बराबर द्रुतगति से चलता रहा। उपर्युक्त आचार्यों के अतिरिक्त आचार्य विमलमित्र, सुरेन्द्रबोधि आदि अनेक आचार्य इन शताब्दियों में तिब्बत पहुँचते रहे और तिब्बती युवजन बौद्ध धर्म-दर्शन का अध्ययन करने के लिए भारत-स्थित बौद्ध विद्यापीठों में आते रहे। उन्होंने मिलकर हजारों ग्रन्थों के अनुवाद में सराहनीय कार्य किया।

दसवीं शताब्दी के लङ्-दर-मा ने अपने भाई की हत्या कर स्वयं को राजा घोषित कर दिया। उनके काल में यद्यपि धर्म कार्य का ह्रास हुआ, किन्तु तिब्बती जनता ने शीघ्र ही अपने प्रयास से उनसे मुक्ति प्राप्त कर ली और पुनः सारे कार्य यथावत् चलने लगे। तदनन्तर पश्चिमी तिब्बत के राजा येशे-ओद् और उनके भतीजे जङ्-छुग्-ओद् के प्रयास से आचार्य दीपंकर श्रीज्ञान तिब्बत पहुंचे और बिखरी शक्तियों को उन्होंने पुनः संगठित किया तथा बौद्ध धर्म और बौद्ध विद्याओं के कार्य की फिर से स्थापना की। इनके काल से लेकर जो अनुवाद कार्य हुए, उन्हें नवीन अनुवाद या नवीन शासन और उनसे पूर्ववर्ती अनुवादों को प्राचीन अनुवाद या प्राचीन शासन कहा जाता है।

यद्यपि छिटपुट अनुवाद कार्य बाद की शताब्दियों में भी चलते रहे और आज भी चल रहे हैं, किन्तु आठवीं से लेकर 12वीं शताब्दी तक चार सौ वर्षों में जितना कार्य हुआ, वह अनुवाद के क्षेत्र में आश्चर्यजनक ही है।

तिब्बत के अनुवाद कार्य की यह विशेषता है कि भोट विद्वानों ने संस्कृत की प्रकृति, प्रत्यय, उपसर्ग, अव्यय सभी का अनुवाद कर लिया, जिससे एक नई शास्त्रीय भोटभाषा का निर्माण हो गया, जिससे उसमें संस्कृत का प्रामाणिक अनुवाद करना आसान हो गया। उदाहरण के लिये सूर्य, आदित्य, दिनकर, भास्कर आदि जितने भी पर्यायवाची शब्द हैं, सबके लिए अलग-अलग तिब्बती शब्द हैं और उन शब्दों से वही अर्थ निकलता है, जो संस्कृत से निकलता है। यही कारण है कि लुप्त संस्कृत ग्रन्थों का जब भोट भाषा से पुन: संस्कृत में उद्धार किया जाता है तो वह प्राय: ठीक-ठीक अपने पुराने रूप में आ जाता है। भोट अनुवाद की दूसरी विशेषता यह है कि प्रत्येक ग्रन्थ का अनुवाद कम से कम दो विद्वानों ने मिलकर किया, जिसमें एक भारतीय आचार्य और एक संस्कृतज्ञ भोट-विद्वान् (लो चा वा) होते थे। अनुवाद के बाद उसका परीक्षण राजा के संरक्षकत्व में गठित विद्वानों की एक समिति करती थी। उसकी संस्तुति होने पर ही उसका ग्रन्थ के रूप में प्रकाशन होता था। अत: भारतीय ग्रन्थों का तिब्बती अनुवाद विश्व में सबसे अधिक परिशुद्ध एवं प्रामाणिक है।

चीनी आक्रमण से पहले तक तिब्बत में बौद्ध विद्याओं के अध्ययन-अध्यापन, शास्त्रार्थ एवं साधना की परम्पराएं अक्षुण्ण रूप से चलती रहीं। तिब्बती विद्वानों ने न केवल भारतीय विद्याओं को सुरक्षित ही रखा, अपितु भारतीय ग्रन्थों पर महनीय टीकाएं लिखीं और सारगर्भित अनेक मौलिक ग्रन्थों की रचना भी की, फिर भी उन्हीं टीकाओं और मौलिक ग्रन्थों का तिब्बत में समादर होता था, जिनकी मूलभूत स्थापनाएं भारतीय आचार्यों के प्रामाणिक ग्रन्थों से परिपुष्ट होती थीं। भारतीय आचार्यों के मतों से विपरीत होने पर वे रचनाएं भोटदेशीय विद्वत्समाज में त्याज्य एवं तिरस्कृत मानी जाती थीं। अतः तिब्बत का बौद्ध धर्म विशुद्ध भारतीय धर्म है और तिब्बती विद्वान् विश्व में बौद्ध विद्याओं के सबसे अधिक प्रामाणिक विद्वान् हैं।

पश्चिम के अनेक विद्वानों ने तिब्बत के बौद्ध धर्म को 'लामावाद' के नाम से अपने ग्रन्थों में प्रस्तुत किया है। उनसे प्रभावित अनेक भारतीय विद्वान् भी इसी शब्द का प्रयोग करते देखे जाते हैं, किन्तु यह सत्य से सर्वथा विपरीत है। लामावाद का तिब्बत में कहीं कोई अस्तित्व नहीं है। लामा का अर्थ गुरु होता है और गुरु का महत्त्व भारत में भी भगवान से अधिक माना जाता है। विशेषतः तन्त्र-साधना में तो गुरु के विना एक कदम भी आगे नहीं बढ़ा जा सकता। भगवान बुद्ध ने यद्यपि मार्ग का उपदेश दिया है, किन्तु अब वे हमारे बीच नहीं है। अब तो गुरु ही हमारे मार्गद्रष्टा हैं। अत: हमारे लिए वे बुद्ध के समकक्ष ही हैं। अत: उनका अत्यधिक आदर करना न तो गुरुवाद है और न लामावाद। देश और परम्परा के भेद से परिधि में कहीं किंचित फर्क हो सकता है, किन्तु मूलभूत विचारों और लक्ष्य में तिब्बती बौद्ध धर्म विशुद्ध भारतीय बौद्धधर्म है। परम पावन वर्तमान दलाई लामा ने भी तिब्बती धर्म के लामावाद होने का अपने अनेक प्रवचनों में भूरिश: निषेध (खण्डन) किया है।

बारहवीं शताब्दी के बाद से भारत में बौद्ध धर्म का विलोप हो गया। न तो ग्रन्थ बचे और न अध्ययन-अध्यापन की परम्परा ही अवशिष्ट रही। उन्नीसवीं शताब्दी के उत्तरार्ध से पशिमी और भारतीय मनीषियों के सत्प्रयास से नेपाल और तिब्बत से संस्कृत के कुछ मौलिक बौद्ध ग्रन्थ उपलब्ध हुए हैं। और उनका अध्ययन भी प्रारम्भ हुआ है, किन्तु परम्परा के जीवित न होने से वे ग्रन्थ प्रायः दुरूह होते हैं और उनका वास्तविक गूढ़ार्थ प्रायः अज्ञात ही रहता है। भोट अनुवादों के माध्यम से उनका सही अर्थ समझने में मदद मिलती है।

भोट विद्वानों ने न केवल बौद्ध धर्म, दर्शन के ग्रन्थों का ही अनवाद किया, अपितु संस्कृत व्याकरण, साहित्य, चिकित्सा, रसायन, ज्योतिष, शिल्प, स्थापत्य, चित्र एवं मूर्ति आदि विभिन्न कलाओं के सैकड़ों ग्रन्थों का भी अनुवाद किया है, जिनमें से अधिकांश आज भारत में भी उपलब्ध नहीं हैं। तिब्बत में उनका अध्ययन और प्रयोग आज तक चल रहा है। हम उनकी सहायता से अपनी भूली-बिसरी विस्मृत संस्कृति का विशुद्ध रूप में पुन: ग्रहण कर सकते हैं। राजनीतिक और भौगोलिक दृष्टि से यद्यपि तिब्बत का पृथक् अस्तित्व और पृथक् अस्मिता है, किन्तु सांस्कृतिक दृष्टि से उसे लघु भारत कहना अधिक अनुचित नहीं होगा।

भोट विद्वानों ने जिन भारतीय ग्रन्थों का अनुवाद किया है, उन्हें दो संग्रहों में सन्निविष्ट किया है, यथा-कंग्युर और तंग्युर। बुद्ध वचनों के अनुवाद का संग्रह 'कंग्युर' तथा भारतीय आचार्यों के ग्रन्थों के अनुवाद का संग्रह 'तंग्युर' कहलाता है। कंग्युर में लगभग 1115 ग्रन्थ हैं, जिन्हें सूत्र, तन्त्र, विनय, धारणी, रत्नकूट, अवतंसक एवं प्रज्ञापारमिता आदि शीर्षकों में विभक्त किया गया है। तंग्युर में लगभग 4417 ग्रन्थ हैं, जो स्तोत्र, माध्यमिक, योगाचार, विनय, जातक, लेख-परिकथा, प्रमाण, शब्दविद्या, चिकित्साविद्या, नीतिशास्त्र, शिल्पविद्या आदि सत्रह शीर्षकों में विभक्त हैं।

इन सब विद्याओं के शताब्दियों-व्यापी अध्ययन और प्रयोग की परम्परा ने तिब्बती जनमानस को भारतीय संस्कारों से ओत-प्रोत कर दिया है। खान-पान, वेशभूषा और भाषा में तिब्बतियों और भारतीयों में यद्यपि भेद देखा जा सकता है, किन्तु जहाँ तक विचारों, जीवन-लक्ष्यों और उनकी प्राप्ति के मार्ग का प्रश्न है, दोनों में अद्भुत साम्य है। दोनों की संस्कृति नितान्त अभिन्न और एक है। भारत में लगातार विदेशी आक्रमणों, विदेशी जातियों के आगमन और विदेशी शासनों की वजह से उसकी अपनी मूलभूत संस्कृति में पर्याप्त मिश्रण हो गया है, जबकि तिब्बत में भारतीय संस्कृति, आध्यात्मिक विद्याएं और प्राचीन विज्ञान एवं कलाविषयक विद्याएं विशुद्ध रूप में सुरक्षित हैं।

मानवीय क्रूरता से विवश एवं पीड़ित तिब्बती जन मुख्यतया भारत में और कुछ दूसरे देशों में शरणार्थी के रूप में जीवन बिता रहे हैं। वे पूरे उत्साह और लगन के साथ परम पावन करुणामूर्ति दलाई लामा के नेतृत्व में अपनी मुक्तिसाधना के अनुष्ठान में संलग्न हैं, किन्तु उनकी इस मुक्तिसाधना में हिंसा के लिए कुछ भी स्थान नहीं है। यह भगवान बुद्ध की महाकरुणा और महात्मा गांधी की अहिंसा का प्रभाव है। जिस तरह भारतीय परम्परा के अनुरूप महात्मा गांधी ने अहिंसा के बल पर स्वतन्त्रता प्राप्त की, ठीक उसी तरह तिब्बती जनता भी उसे प्राप्त करना चाहती है। भारत को वे अपना गुरुदेश मानते हैं। यह गुरु-शिष्य भाव ही दोनों के अटूट सांस्कृतिक सम्बन्धों का आज भी परिचायक है।

राष्ट्र के जीवन में कभी-कभी ऐसे संकट आते हैं। बारहवीं शताब्दी के आस-पास विदेशी आक्रमणों से प्राणों की रक्षा हेतु भारतीय बौद्ध विद्वान् भी ग्रन्थों के साथ नेपाल, तिब्बत आदि पड़ोसी देशों में चले गये थे और वहां उन्हें ससम्मान सुरक्षा मिली। आज हमारा भी परम कर्तव्य है कि इस विपत्ति में उनका साथ दें। मित्रता की यही कसौटी भी है।

(लेखक बौद्ध दर्शन के ख्यातिलब्ध विद्वान एवं
के.उ.ति.शि.सं. के पूर्व आचार्य थे)

त्रिकाय का संक्षिप्त परिचय

—डॉ. रमेशचन्द्र नेगी—

या सर्वज्ञतया नयत्युपशमं शान्तैषिणः श्रावकान्
या मार्गज्ञतया जगद्धितकृतां लोकार्थसम्पादिका।
सर्वाकारमिदं वदन्ति मुनयो विश्वं यया संगस्तास्
तस्यै श्रावकबोधिसत्त्वगणिनो बुद्धस्य मात्रे नमः ॥[1]

विश्व के समस्त सिद्धान्तवादी लोग समस्त विश्व की व्याख्या अपने-अपने मत के अनुसार करते हैं। अर्थात्

"यह विश्व क्या है? इसकी उत्पत्ति कैसे हुई? प्राणी क्या है? इन प्राणियों के द्वारा भोगे जाने वाले सुख-दुःख आदि क्या हैं?"

...इत्यादि इन समस्त प्रश्नों के उत्तर, सारे धर्म-सम्प्रदायवादी अथवा सिद्धान्तवादी लोग अपने-अपने धर्म-ग्रन्थों के अनुसार देने की चेष्टा करते हैं तथा साथ ही तत्सम्बन्धित **विद्वान्**, **गुरु**, **पादरी**, **मौलवी** अथवा उनके प्रतिनिधि लोग इन प्रश्नों के उत्तरों को अपने-अपने ढंग से प्रतिपादित करने की चेष्टा सदा अपनी परम्परा के अनुसार करने के लिये कटिबद्ध होते हैं, जो किसी से छिपी नहीं है।

परन्तु उपर्युक्त ये प्रश्न सामान्य प्रश्न नहीं हैं।

सामान्यतः सारे सिद्धान्तवादी उपर्युक्त प्रश्नों के कुछ न कुछ उत्तर देते ही हैं, किन्तु इन उत्तरों के बावजूद भी ये प्रश्न बहुतों के लिये सदा वैसे ही दुरवबोध एवं संशयात्मक बने ही रहते हैं और इस संसार के प्रति उनके मन में सदा ही संशय उत्पन्न होते रहते हैं, जो एक शान्तिपूर्ण समाज के लिये बाधक होते हैं।

साथ ही वास्तव में जो समस्त प्राणियों का एक लक्ष्य है, जिसे **मोक्ष**, **निर्वाण** एवं **महासुख** आदि कहते हैं, की प्राप्ति नहीं हो पाती। यदि कोई विशेष धर्म-सम्प्रदाय, जो स्वयं को विश्व में सुख फैलाने वाला होने का दंभ भरता है, किन्तु जब वह ऐसा कार्य नहीं कर पाता, तब सामान्य लोगों में धर्म के प्रति संशय की उत्पत्ति होना भी स्वाभाविक ही है। अतः '**धर्म अफीम है**'—जैसी अज्ञानता भी उत्पन्न होती है। इस प्रकार दुनियाँ के कई धर्म सम्प्रदायों के अज्ञानी लोग इस प्रकार के सन्देह पैदा कराने में दोषी भी सिद्ध हो सकते हैं।

जब हम इन सब प्रकार के प्रश्नों पर निष्पक्ष विचार करते हैं, तब हमें मालूम होता है कि इनमें **एक पक्ष** तो आज पश्चिमी सभ्यता को प्रमुख रूप से मानने वालों का तथाकथित **वैज्ञानिक**

---

1. अभिसमयालंकार 1.1

पक्ष है, जो बाह्य वस्तुओं के परीक्षण के आधार पर इनका उत्तर दिया करता है। इसमें आंशिक सच्चाई छिपी रहती है, किन्तु सम्पूर्ण उत्तर फिर भी नहीं मिल पाता। यह ऐसा ही है जैसे **पांच जन्म के अन्धे लोग किसी एक हाथी का परिचय अपने-अपने स्पर्शज्ञान के आधार पर देते हैं**, अथवा **तेरी खीर टेढ़ी है** के बारे में कहानी प्रचलित है।

एक प्रकार का **दूसरा उत्तर**–विश्व में जितने भी धर्म-सम्प्रदाय हैं, उनके आधार पर दिया जा सकता है और इसी के अनुयायी दुनियाँ में सबसे ज्यादा होते हैं, जो भिन्न-भिन्न प्रकार से उपर्युक्त प्रश्नों के उत्तरों को अपने-अपने धर्म-सम्प्रदायों के सामने दोहराते रहते हैं।

अपि च, इस **दूसरे पक्ष में** भी 1. **विश्व के सृष्टिकर्ता को मानने वाले** तथा 2. **सृष्टिकर्ता को नहीं मानने वाले**–दो पक्ष स्पष्टतया दिखाई देते हैं।

सृष्टि-कर्ता को मानने वालों में भी मुख्यतः 1. **सनातन धर्मी**, 2. **क्रिश्चियन** तथा 3. **मुस्लिम**– ये तीन धर्म-सम्प्रदाय मुख्य रूप से माने जा सकते हैं।

साथ ही जो धर्म-सम्प्रदाय, सृष्टि-कर्ता को नहीं मानते, उनमें 1. **बौद्ध**, 2. **जैन** तथा 3. **सांख्य**– ये तीन प्रमुख हैं।

ऐसे ही भारतीय दर्शन सम्प्रदायों में एक मत **चार्वाक्** कहलाता है।

यह एक ऐसा दर्शन है, जिसमें केवल वर्तमान दृश्यमान धर्मों की व्याख्या बहुत ही स्थूल प्रमाणों के आधार पर की जाती है, अतः वे लोग केवल **प्रत्यक्ष प्रमाण** को ही मुख्य रूप से स्वीकार करते हैं।

चार्वाक् सिद्धान्तवादी लोग पूर्व एवं पर जन्म को नहीं मानते, क्योंकि इसके लिये उनका यह मानना है कि यह प्रत्यक्ष प्रमाणों से सिद्ध नहीं होता। अतः इनका दर्शन **ऋणं कृत्वा घृतं पिबेत्** की राह पर चलता है तथा सम्पूर्ण विश्व की सम्भावना इनके लिये मात्र **पृथ्वी** आदि चार स्थूल धातुओं पर ही निर्भर होती है। उनका मानना है कि चित्त या मन भी इन्हीं धातुओं से बनता है और मरने के बाद शरीर के समाप्त (नष्ट) होने के जैसा चित्त भी इसी शरीर के साथ समाप्त हो जाता है।

उदाहरण के लिये जैसे किसी **भित्ति (दीवार) पर चित्र** बने हैं, तब दीवार गिरने के बाद उस पर बना **चित्र** भी स्वाभाविक रूप से नष्ट हो जाता है–ऐसा **चार्वाक्** मत का मानना है।

आज भी सम्पूर्ण विश्व में ऐसे लोग बहुतायत में हैं, जो कि इस दर्शन का अनुसरण करते हैं, किन्तु वे अपने को **चार्वाक्** नाम से उद्घोधित नहीं करते। कालान्तर में इनके नामों में परिवर्तन दिखाई देता है, किन्तु **चार्वाक्** सिद्धान्तवादियों के आचरण को जीवन में उतारने वाले बहुत से लोग भिन्न-भिन्न समाज अथवा धर्मसम्प्रदायों में मिल ही जाते हैं।

कभी-कभी यह भी हो सकता है कि जो अपने को किसी विशेष धर्म-सम्प्रदाय का मानता हो, किन्तु धर्म की सही जानकारी नहीं होने पर अपने व्यावहारिक जीवन में इस **चार्वाक्** दर्शन का ही अनुसरण करता हो–ऐसा भी सम्भव है।

आज विश्व के बुद्धिवादी अधिकतर **विद्वान्** इस मत की ओर अग्रसर हो रहे हैं कि समस्त विश्व की सही व्याख्या के लिये **तथागत सम्यक् सम्बुद्ध** ने आज से 2500 वर्ष पूर्व, जिस **प्रतीत्यसमुत्पाद** अर्थात् **शून्यता, हेतुप्रत्ययवाद** या **कर्मफल** के सिद्धान्त को प्रतिपादित किया था, वह सिद्धान्त सत्य के अत्यन्त समीप हो सकता है, हालांकि इस पर भी नाना प्रकार के विशेष शोधकार्य सारे विश्व में अभी भी किये जा रहे हैं।

वैसे भी, जब तक हम **प्रतीत्यसमुत्पाद** अर्थात् **हेतु-प्रत्ययवाद** को सही ढंग से नहीं समझते, तब तक उपर्युक्त प्रश्नों का सही उत्तर दे पाना सम्भव नहीं है। सारे विश्व की आन्तरिक एवं बाह्य घटनाओं के पीछे **नित्य-कर्ता** अथवा **स्रष्टा** का हाथ कतई नहीं है, जो कि इन सबको बनाता हो। यह **प्रतीत्यसमुत्पाद**–विश्व की उत्पत्ति में **शाश्वतवाद** एवं **उच्छेदवाद** का खण्डन करता है और एक वैज्ञानिक सिद्धान्त को प्रतिपादित करता है। इस आधार पर **संवृति** अर्थात् लोक-व्यवहार एवं **परमार्थ** अर्थात् लोकातीत धर्म का अस्तित्व खड़ा किया गया है, जो कि माध्यमिकों का बहुत ही प्रिय विषय है।

ये सब **भाजन** तथा **सत्त्वलोक** तो सदा **हेतु-प्रत्यय** से बनते हुये देखे जा सकते हैं। इसीलिये **तथागत सम्यक् सम्बुद्ध** का **सद्धर्म**–**हेतु-प्रत्ययवाद** को स्पष्ट करता है और सारा **त्रिपिटक** उसी **प्रतीत्यसमुत्पाद** को स्पष्ट से स्पष्टतर करने के लिये **तथागत् सम्यक् सम्बुद्ध** द्वारा उपदिष्ट किया गया है। अतः **सारिपुत्र** द्वारा कथित निम्न श्लोक, जो **अश्वजित** के लिये कहा गया था, **बौद्धधर्म** का सारतत्त्व बना और यह **तन्त्रयान** में आकर **प्रतीत्यसमुत्पादमन्त्र** के रूप में प्रतिष्ठित हुआ, यथा–

ये धर्माः हेतुप्रभवा हेतुस्तेषां तथागतो ह्यवदत्।
तेषां च यो निरोधो एवंवादी महाश्रमणाय स्वाहा॥[1]

विश्व में जो भी आन्तरिक एवं बाह्य धर्म उत्पन्न होते हैं, वे सब हेतु अर्थात् कारणों से ही उत्पन्न होते हैं। कोई भी **फल**–विना हेतु का नहीं होता और उस **फल** के सम्पूर्ण हेतुओं को **भगवान् तथागत सम्यक् सम्बुद्ध** ही सम्पूर्ण रूप से जानते हैं और बताते हैं। **फल** के निरोध का वास्तविक उपाय भी **बुद्ध** के द्वारा ही उपदेशित होता है। अर्थात् समस्त बाह्याभ्यन्तर जगत् की उत्पत्ति तथा विलय को बुद्ध सर्वांगीण रूप से जानते हैं। **महाश्रमण** अर्थात् **बुद्ध** ऐसे ही उपदेष्टा हैं–यह गुण मुझमें जगे, ऐसी प्रार्थना की गई है।

अतः यहाँ इस लघु **शोधपत्र** में **त्रिकाय सिद्धान्त** के द्वारा इन्हीं अनसुलझे प्रश्नों के उत्तरों को संक्षेप में प्रतिपादित करने का अल्प प्रयास किया जा रहा है। इसके लिये **तथागत सम्यक् सम्बुद्ध** के मत में सम्पूर्ण विश्व की उत्पत्ति की व्याख्या को अच्छी तरह समझना होगा, जो मुख्य रूप से **चित्त** पर आधारित है और वह चित्त के द्वारा किये गये नाना प्रकार के कर्मों से सम्बद्ध है।

---

1. प्रतीत्यसमुत्पादमन्त्र

दूसरे शब्दों में कहें तो **चित्त** समस्त **आन्तरिक** एवं **बाह्य जगत्** का आधार अथवा आश्रय है, तो उसका सम्पूर्ण शुद्ध स्वरूप **त्रिकाय** से युक्त **बुद्ध** है। **तन्त्र** के अनुसार यह महासुख है और इसके प्राप्ति की इच्छा सम्पूर्ण जगत् के प्राणी अहोरात्र करते ही रहते हैं।

सम्पूर्ण जगत् द्विविध है, यथा– 1. **भाजनलोक** एवं 2. **सत्त्वलोक**। **भाजनलोक** के अन्तर्गत समस्त **जड़** पदार्थ सम्मिलित हैं और **सत्त्वलोक** में सारे **प्राणवान् जीव** अर्थात् **प्राणी** सम्मिलित हो जाते हैं। इन्ही दो के अन्तर्गत विश्व के सारे अस्तित्वों की सत्ता है और इसी को समझने के लिये वास्तव में **बौद्ध कर्मसिद्धान्त** को जानना सम्पूर्ण विश्व के लोगों के लिये तीनों कालों में आवश्यक हो जाता है। यही कारण है कि एक **विपश्यना** का **साधक** सर्वप्रथम अपने काय एवं चित्त के स्वरूप को जानने का प्रयत्न करता है।

इस संसार में सबसे महत्त्वपूर्ण बिन्दु है, आपका यह सांसारिक **चित्त**, जहाँ से आपकी महान् यात्रा प्रारम्भ होती है, जो आपको **निर्वाण**, **महापरिनिर्वाण** अर्थात् **महान् सुख** तक ले जाती है, वास्तव में जो इस लम्बी यात्रा का अन्तिम पद भी है और यात्रा का अन्तिम बिन्दु भी। अतः **त्रिकाय** अन्तिम बिन्दु है तो इसका प्रारम्भ भी बिन्दु से ही प्रारम्भ हुआ होगा–ऐसा विचार होना स्वाभाविक ही है अथवा दूसरे शब्दों में यदि **संवृति** है, तब उसका दूसरा पक्ष **परमार्थ** भी होगा ही, जिसे आचार्य **नागार्जुन** कहते हैं कि **संवृति** के बिना **परमार्थ** नहीं हो सकता और **संवृति** के ज्ञान के अभाव में **परमार्थ** का ज्ञान भी सम्भव नहीं है। अतः इसी को सही रूप से जानने का **मन्त्र** है **प्रतीत्यसमुत्पाद**।

यदि कोई भी व्यक्ति उपर्युक्त कथित **बौद्ध प्रतीत्यसमुत्पाद** अर्थात् **शून्यता**, **हेतुप्रत्यय-वाद** अथवा **कर्मफल** सिद्धान्त को जान जाता है, तब **त्रिकाय** अर्थात् **बोधि** अथवा **बुद्धत्व** अपनी मुट्ठी में कर सकता है। जिसे सामान्य मानव–**जगत्** अथवा **लोक** कहता है, वह **बौद्धमत** में काम-आदि तीन लोकों को कहा गया है। ये तीन लोक भी विना हेतु के उत्पन्न नहीं होते। इन तीन लोकों के हेतुओं का वर्णन करते हुये आचार्य **दीपङ्करश्रीज्ञान** (**अतीश**) का कहना है, यथा–

त्रैलोक्यदुःखसिन्धूनां कर्मभ्यः क्षुब्धवीचयः।
कुशलाकुशलादिभ्यः सास्रवेभ्यो विनिःसृताः।।

रागद्वेषादितस्तानि जातानि क्लेशहेतुतः।
तेषामुद्भवहेतुश्चापीष्टानिष्टादिकस्तथा ।।

द्वैतग्रहणतो जातः, पदार्थग्राहकग्रहाः।
नित्यविभ्वैकताद्याश्च समस्तोत्पादहेतवः।।[1]

---

1. अतीशविरचिता एकादशग्रन्थाः (गर्भ-सङ्ग्रहः), पृष्ठ–79, प्रकाशन–सन् 1992 ई.। प्रकाशक–केन्द्रीय उच्च तिब्बती शिक्षा संस्थान सारनाथ, वाराणसी।

"त्रिधातु रूपी महादुःखसागर की क्षुब्ध तरङ्गें निश्चय ही (सम्बद्ध सत्त्वों के) कुशल और अकुशल आदि सास्रव कर्मों से उत्पन्न हैं।

वे (सास्रव कर्म भी) राग-द्वेष-आदि क्लेश हेतुओं से उत्पन्न हैं। उनके उत्पत्ति हेतु भी इष्ट-अनिष्ट आदि द्वैतग्रहण से ही होते हैं।

नित्यता, विभुता, एकता आदि सत्ता-ग्राहक ग्रहण सभी के उत्पत्ति हेतु हैं।"[1]

एक विश्व तो **बाहर** दिखता है, जिसे सामान्यजन **जड़** कहते हैं और दूसरा विश्व **आन्तरिक** है– वह **सत्त्व**, **प्राणी** एवं **जीव** आदि विभिन्न नामों से संसार में प्रसिद्ध है। यदि हम बहुत स्थूल रूप से इनकी परीक्षा करते हैं, तब हम पाते हैं कि बाह्य जगत्–जो **जड़** है वह **पृथ्वी-**आदि चार धातुओं से बना है। साथ ही वह **जीव** भी मोटे तौर पर ऐसा ही लगता है कि उन्हीं धातुओं से ही उसकी उत्पत्ति हुई है– ऐसा ज्ञान बहुत ही स्थूल ज्ञान है। यह **चार्वाक्** आदि जो वर्तमान में चित्त-सन्तति अथवा सत्त्वों के **पूर्व** एवं **पर** जन्म को नहीं मानते– यह उनका मत है।

किन्तु, आज से लगभग 2500 वर्ष पूर्व **बौद्धमत** के संस्थापक **शाक्यमुनि तथागत सम्यक् सम्बुद्ध** ने इन्हीं कारणों का बहुत ही गूढ़ अध्ययन किया तथा छह वर्षों की तपस्या के बाद परम **बोधि** के फलस्वरूप समस्त विश्व के वास्तविक कारणों को संसार की वास्तविक शान्ति के लिये खोज निकाला तथा उसे इस संसार के दुःखी प्राणियों के मध्य कहने में समर्थ हुये, जिसके कारण एक दुःखी मानव सद्धर्म की यात्रा करते-करते **संसार** से **निर्वाण** अथवा **संवृति** से **परमार्थ** की यात्रा बहुत ही सरल एवं वैज्ञानिक तरीके से कर सकता है।

बौद्धमत में बाह्य **भाजनलोक** को भी मुख्यतः चित्त रूपी कर्म के कारण ही उत्पन्न होना माना है। **चित्त**– जिसे सामान्य भाषा में **मन** भी कहते हैं वह **कुशल** एवं **अकुशलादि** कर्मों का संग्रह करता है और इसी के कारण **कामधातु** आदि **तीन लोकों** की उत्पत्ति होती है। इसीलिये आचार्य **अतीश** कहते हैं–

"त्रिधातु रूपी महादुःखसागर की क्षुब्ध तरङ्गें निश्चय ही (सम्बद्ध सत्त्वों के) कुशल और अकुशल आदि सास्रव कर्मों से उत्पन्न हैं।"[2]

सम्पूर्ण **सत्त्वलोक** महान् दुःखों से त्रस्त है। **दुर्गति** के दुःखों को तो सभी लोग दुःख मानते ही हैं, किन्तु **सुगति** का सुख भी वास्तव में सुख-सा दिखता है, न कि जो वास्तविक सुख है। और वे सुख भी समय आने पर दुःख में ही परिवर्तित हो जाते हैं। **देवलोक** तक जाकर भी वे सत्त्व पुनः **मनुष्यलोक** आदि **निम्न** लोकों में पतित होते ही हैं। अतः एक **आर्य** के समक्ष यह संसार जलते हुए **अग्निकुण्ड** जैसा ही है। यही कारण है कि एक साधक पूर्व में सदा वैराग्य को प्राप्त होता है।

---

1. वही, पृष्ठ–118
2. यही, पृष्ठ–6

अतः आचार्य **अतीश** कहते हैं कि **महादुःखसागर की क्षुब्ध तरङ्गें कुशल** एवं **अकुशलकर्म** अर्थात् पापकर्म एवं अधार्मिक कर्म, जो **चित्त** अथवा **मन** के द्वारा संचित होते हैं, उन कर्मों के द्वारा ही उत्पन्न हैं। साथ ही वे कर्म **अनास्रव** नहीं हैं, अपितु **सास्रव** हैं अर्थात् दुःख को देने वाले कर्म हैं। **सास्रव**–क्लेश का नाम-पर्याय ही है। इन्ही कुशल अकुशलकर्मों को स्पष्ट करते हुये आचार्य का कहना है–

त्रिविधं कायिकं कर्म वाचिकं तु चतुर्विधम्।
मानसं त्रिप्रकारं च दशैतेऽकुशला मताः ॥[1]

"त्रिविध वाचिक कर्म, चतुर्विध वाचिक (कर्म) और तीन प्रकार के मानसिक– ये दश अकुशल (कर्म) कहे गये हैं।"[2]

अब प्रश्न उठता है कि **इन अकुशलकर्मों के हेतु क्या हैं और वे किन-किन हेतुओं से उत्पन्न होते हैं?**

उनका हेतु **राग-द्वेष**-आदि हैं, जिन्हें **बुद्ध** समस्त दुःखों का मूल कहते हैं और **तन्त्र** कहता है कि ये तीन प्रकार के **विष** हैं, जो सत्त्व के **सार** का हनन करते हैं। इसी को और अधिक स्पष्ट करते हुए आचार्य **अतीश** का कहना है कि ये **सास्रव**-कर्म भी वास्तव में चित्तस्थ रागादि क्लेशों से उत्पन्न होते हैं तथा वे रागादि भी मनोरम वस्तुओं की आकांक्षा (इच्छा) तथा जो मन को अच्छे नहीं लगते उनके प्रति अनिच्छा के कारण पैदा होते हैं। इसीलिये अतीश का कहना है–

"**वे (सास्रव कर्म भी) राग-द्वेष-आदि क्लेश हेतुओं से उत्पन्न हैं। उनके उत्पत्ति हेतु भी इष्ट-अनिष्ट आदि द्वैतग्रहण से ही होते हैं।**"[3]

क्योंकि सारे सत्त्व अर्थात् प्राणी, राग के प्रति इष्ट-बुद्धि पैदा करते हैं तथा द्वेषादि के प्रति अनिष्ट-बुद्धि उत्पन्न करते हैं। अर्थात् इष्ट-अनिष्टादि से राग-द्वेष और इन क्लेशों के कारण कुशल-अकुशलादि कर्म एकत्रित होते हैं, जिनके कारण बाह्य **भाजनलोक** की भी उत्पत्ति होती रहती है तथा आपका व्यक्तित्व भी इन्हीं कारणों से नाना प्रकार के कार्यों में संलग्न होने वाला होता है, जिसे सूत्र एवं शास्त्रों में **चित्त**, **मन** एवं **वेदना** आदि नाना प्रकार के नाम-पर्याय दिये गये हैं।

जैसे सर्वविदित है कि **अहं** के कारण सारे जगत् उत्पन्न हैं, **अहं मैं** है, तब **पर** (**अन्य**) की सत्ता बनती है। इसके पश्चात् क्रमशः मैं मेरा, तू तेरा आदि नाना चित्तों की उत्पत्ति होती है। संक्षेप मे **विषय** एवं **विषयी** बुद्धि ही **द्वैतग्रहण** है, जो सम्पूर्ण जगत् का कारण बनता है।

समस्त क्लेशों को भी दो भागों में बाँट सकते हैं। प्रथम केवल विकल्प चित्त है, जिसे शास्त्रों में **सहजात्म** स्वरूप कहा गया है, ये लौकिक चित्त-सन्तति के रूप में उद्भूत होते हैं।

---

1. अतीशविरचिता एकादशग्रन्थाः (दशाकुलकर्मपथदेशना), पृष्ठ–96
2. वही, पृष्ठ–143
3. यही, पृष्ठ–6

द्वितीय क्लेश स्वयं में **आत्मा** स्वरूप एक **नित्य**, **विभु** तथा कैवल्य स्वरूप एक कूटस्थ आत्मा के स्वरूप को मानना आदि है। इन विशेषणों से युक्त **आत्मा** भी सम्पूर्ण मुक्ति में बाधक बनता है। अतः आचार्य **अतीश** का कहना है– "**नित्यता, विभुता, एकता आदि सत्ता-ग्राहक ग्रहण सभी के उत्पत्ति हेतु हैं**।"[1]

तीन धातुओं के समस्त सत्त्व वास्तव में सदा दुःखों का ही अनुभव करते हैं।[2] जैसे **सूत्र** एवं **शास्त्रों** में कहा गया है कि लघु पुरुष सांसारिक सुखों की इच्छा करते हैं। वे **प्राणिहत्या** आदि **दश अकुशलकर्मों** के त्याग-आदि से भविष्य में **सुगति** अर्थात् **मनुष्य**, **देव** तथा **असुर लोक** में उत्पन्न होना चाहते हैं। **बोधिपथप्रदीप** में कहा है, यथा–

यस्य केनाप्युपायेन संसारसुखमात्रकम्।
स्वस्यैववार्थाय चाभीष्टं स ज्ञेयः पुरुषोऽधमः ।।[3]

ऐसे ही **सद्धर्म** के अभ्यास के द्वारा आगे बढ़ते-बढ़ते **मध्यमपुरुष** का ज्ञान उत्पन्न होता है और इस अवस्था में पहुँचने पर समस्त लोकों का वह **अग्निकुण्ड** के समान अनुभव करता है। अर्थात् वे वास्तव में एक विशेष प्रकार की **मोक्ष** को प्राप्त करना चाहते हैं, जहाँ पर सांसारिक दुःख बिल्कुल नहीं होते। ये पद **श्रावक-अर्हत्** तथा **प्रत्येकबुद्ध-अर्हत्** के नाम से जाने जाते हैं। **थेरवाद** का वास्तविक उद्देश्य इसी **निर्वाण**-पद को प्राप्त करना है। **बुद्ध** के ये **श्रावक** स्व-कल्याण के अन्तिम सोपान पर पहुँच जाते हैं, जहाँ वास्तव में सांसारिक दुःख वास्तव में नहीं होते, क्योंकि ये **क्लेशावरण** का त्याग कर चुके होते हैं, लेकिन ये इस मार्ग के द्वारा **ज्ञेयावरण** का त्याग नहीं कर पाते। **मध्यमपुरुष** के लक्षण के विषय में उपर्युक्त ग्रन्थ में ही उक्त है, यथा–

विरतः पापकर्मभ्यो भवसौख्यात् पराङ्मुखः।
आत्मोपशममात्रार्थी स उक्तो मध्यमः पुमान् ।।[4]

किन्तु **तथागत बुद्ध** का धर्म यहीं समाप्त नहीं होता वह तो सम्पूर्ण **बोधि** को प्राप्त करना चाहता है, जिसके द्वारा असंख्य सत्त्वों का वास्तविक कल्याण होता है। यह मार्ग **उत्तमपुरुषमार्ग** के नाम से जाना जाता है। इसका लक्षण इस प्रकार बताया गया है, यथा–

---

1. यही, पृष्ठ–6
2. ऊर्णापक्ष्म यथैव हि करतलसंस्थं न वैद्यते पुम्भिः।
   अक्षिगतं तु तथैव हि जनयत्यरतिं च पीडां च ॥
   करतलसदृशो बालो न वेत्ति संस्कारदुःखतापक्ष्म ।
   अक्षिसदृशस्तु विद्वांस्तेनैवोद्वेज्यते गाढम् ॥ –अभिधर्मकोशटीका 6.3
3. बोधिपथप्रदीपः, श्लोकसंख्या–3
4. वही, श्लोक0–4

स्वसन्ततेर्यथा दुःखं दुःखं सर्वं हि सर्वथा।
अन्यस्य हातुमिच्छेद् य उत्तमः पुरुषस्तु सः ॥[1]

इस मार्गक्रम पर पहुँचने के बाद ही वह **साधक**, **बोधिसत्त्व** के नाम से प्रसिद्ध होता है और वह **बोधिसत्त्व** वास्तव में समस्त विश्व के प्राणियों का वास्तविक कल्याण करना चाहता है। अर्थात् वह सारे प्राणियों को **बोधि**पद पर आरूढ कराना चाहता है।

किस प्रकार के अभ्यास से क्लेशों का सम्पूर्ण विनाश होता है तथा समस्त विश्व के कल्याण हेतु किस प्रकार के अभ्यास को प्राथमिकता देते हुये **त्रिकाय** को प्राप्त करना चाहिये, जिससे अनाभोग सत्त्व का कल्याण हो–इन अभ्यासों की चर्चा करते हुये आचार्य **अतीश** का कहना है, यथा–

भाग्यवान् पुरुषस्तस्मात् मुक्तिकांक्षी परात्मनोः।
प्रतीत्यादिसुयुक्तीनां अभ्यासैर्विनिवारयेत्॥
भावानां ग्रहणं तावत्, धर्मान् बाह्यान्तराखिलान्।
सर्वलक्षणहीनेन चाकाशेन समं भजेत् ॥
वस्तुग्रहाभिभूतं तु लक्ष्यीकृत्याखिलं जगत्।
दुःखसागरसंशोषिमहाकारुण्यपूर्वकम् ॥
स्वपरार्थभवं रत्नं बोधिचित्तं प्रभावयेत्।
बोधिचर्यामहावीचिषट्पारमितादिकम् ॥
ध्यानव्युत्थानयोगेन पञ्चमार्गैः क्रमाद् व्रजेत्।
द्विविधावरणं छित्त्वा द्वौ सम्भारौ प्रपूर्य च ॥
त्रिकायफलमाप्तव्यं,

"अतः स्व एवं पर दोनों की मुक्ति चाहने वाला भाग्यशाली पुरुष प्रतीत्यसमुत्पाद-आदि किसी युक्ति के अभ्यास से सत्ता-ग्रहण का निवारण करे।

समस्त बाह्य एवं आभ्यन्तर धर्मों को सर्वनिमित्तों से मुक्त आकाशवत् जाने।

भाव (सत्ता) ग्रह से ग्रस्त सम्पूर्ण जगत् लक्ष्य करके दुःखसागर को सुखाने वाली महाकरुणा से युक्त हो स्व एवं पर के सभी अर्थों के देने वाले बोधिचित्त रूपी रत्न का उत्पाद करना चाहिये।

समाधि एवं व्युत्थान की रीतियों से पञ्च मार्गों द्वारा क्रमशः षट् पारमिता आदि बोधिचर्या की महातरङ्गों से चलकर द्विविध आवरणों को नष्ट करके दोनों सम्भारों को पूर्णकर त्रिकाय फल प्राप्त करना चाहिये।"

---

1. वही, श्लोक0–5

त्रिकायाप्तेश्च लक्षणम् ।
नभोवच्छून्यतायाश्चानाभोगकरुणाम्बुदात् ।।

द्विकायामृतधाराभिरात्रिधातु सदाऽऽर्द्रयन् ।
बोधिमण्सुबीजेभ्यः पुण्यशस्यानि पाचयेत्।।

हृदयं सर्वबुद्धानां गर्भसङ्ग्रह इत्ययम् ।[1]

त्रिकाय प्राप्ति का लक्षण (इस प्रकार है)– आकाशवत् शून्यता (-स्वभाव धर्मकाय) से अनाभोग करुणामय मेघ उद्भूत हो अमृत रूपी दो (रूप) कायों की जलधारा से सामान्य त्रि-धातु (स्थित सत्त्वों) की (चित्त-) सन्तति को आर्द्र कर बोधिमण्ड (रूप) बीज से कुशल फसलों का उपचय करना चाहिये ।

यही समस्त बुद्धों का रहस्य है । यही गर्भसङ्ग्रह है ।[2]

।। भवतु सर्वमङ्गलम् ।।

एसोसिएट प्रोफेसर
के.उ.ति.शि.सं., सारनाथ, वाराणसी
मो.नं.- 9415698420

1. अतीशविरचिता एकादशग्रन्थाः (गर्भ-सङ्ग्रहः), पृष्ठ–79-80, सन् 1992 ई.
2. अतीशविरचिता एकादशग्रन्थाः (गर्भ-सङ्ग्रह), पृष्ठ–117-118

तथागत की सद्धर्म-देशना और उसकी प्रासंगिकता

—टी. आर. शाशनी—

भारतीय-संस्कृति के निर्माण में ब्राह्मण-संस्कृति के साथ-साथ श्रमण-संस्कृति का भी विशेष योगदान रहा है। निर्ग्रन्थ, आजीवक आदि की परम्परा में श्रमण-संस्कृति की धारा यद्यपि बुद्ध से पूर्व चली आ रही थी, तथापि बुद्ध के जीवन-काल में इस संस्कृति को एक नयी दिशा मिली। कालान्तर में 13वीं-14वीं शताब्दी तक श्रमण-संस्कृति की बौद्धचिन्तन-धारा ने भारतीय-संस्कृति को समृद्ध किया। कलिंग-युद्ध के बाद जब सम्राट अशोक ने बौद्धधर्म को स्वीकार किया, तब से समूचे जम्बूद्वीप में बौद्धधर्म का प्रचार-प्रसार व्यापक रूप से हुआ। राजाश्रय की इस प्राचीन परम्परा को बाद के राजा-महाराजाओं ने भी भली भाँति निभाया। नालन्दा, तक्षशिला एवं विक्रमशील जैसे विश्वप्रसिद्ध बौद्ध विश्वविद्यालयों की स्थापना इन्हीं महान् राजाओं के योगदान से संभव हुई। इसलिए इन प्राचीन राजा-महाराजाओं की भारतीय-संस्कृति के प्रति जो उदात्त दृष्टि रही है, उसे भली भाँति समझने एवं महत्त्व देने की आवश्यकता है। साथ ही, भारतीय-संस्कृति के निर्माण में ब्राह्मण-संस्कृति के साथ श्रमण-संस्कृति के योगदान को भी वर्तमान समय में रेखांकित करने की आवश्यकता है। प्राचीन काल में ही बुद्ध का सद्धर्म भारतीय भूभाग को लाँघते हुए श्रीलंका, म्यांमार, थाईलैंड, इण्डोनेशिया, कम्बोडिया, लाओस, नेपाल, पाकिस्तान, बंगलादेश, अफगानिस्तान, मध्येशिया, चीन, तिब्बत, मंगोलिया, जापान, कोरिया आदि देशों में फैला। विश्व में इतने व्यापक स्तर पर किसी धर्म को इतनी सहज स्वीकृति का मिलना यही दर्शाता है कि तथागत का सद्धर्म बहुजन के हित और बहुजन के सुख के लिए ही रहा है। इसीलिए इस सद्धर्म का अन्य देशों के धर्मों एवं संस्कृतियों के साथ कभी टकराव नहीं हुआ, अपितु उन धर्मों एवं संस्कृतियों को सहज रूप से आत्मसात करने में सफल रहा। क्योंकि, तथागत की सद्धर्म-देशना का उद्देश्य अपने धर्म का वर्चस्व स्थापित करना नहीं, अपितु मानवीय दुःखों का समाधान करना एवं विश्व-समुदाय को संवेदनशील बनाना था।

सांसारिक सत्त्वों के विविध देशिक, ऐतिहासिक, एवं सांस्कृतिक पृष्ठभूमियों के कारण धर्मों की विविधता स्वाभाविक है। तथागत ने अपने जीवन-काल में सद्धर्म की देशना करते समय इस बात का विशेष ध्यान रखा। उन्होंने उनके पास उपदेश सुनने के लिए आने वाले प्रत्येक अनुयायी को उनकी रुचि, स्वभाव, आशय, योग्यता, क्षमता और वैचारिक एवं सांस्कृतिक पृष्ठभूमि को जानकर उपदेश दिया, जो कालान्तर में श्रावकयान, प्रत्येकबुद्धयान और बोधिसत्त्वयान या महायान के रूप में मार्ग विकसित हुआ। बुद्ध की इन विविध देशनाओं का उद्देश्य प्राणी मात्र की दुःखनिवृत्ति के मार्ग को प्रशस्त कर लोक-कल्याण करना था। दुःखनिवृत्ति की इसी खोज के

दौरान बुद्ध ने तत्कालीन समाज में प्रचलित आत्मकल्मथ अर्थात् अपने शरीर को कष्ट देकर मुक्ति का मार्ग तलाशना और कामसुखल्लिका अर्थात् सांसारिक भोग-विलास को ही जीवन का ध्येय मानना–इन दो अन्तों का निषेध कर मध्यममार्ग को अपनाने हेतु प्रेरित किया। बुद्ध के अनुसार, इन दोनों अतियों को त्याग कर, मध्यममार्ग को अपना कर ही व्यक्ति परम-शान्ति या निर्वाण की प्राप्ति कर सकता है। विदित है कि बुद्ध के समय तत्कालीन समाज में आत्मकल्मथ को बहुत महत्त्व दिया जाता था। इसीलिए बुद्ध ने भी छह वर्षों तक दुष्कर तपश्चर्या की और अन्ततः इस मार्ग को गलत सिद्ध किया। छह साल तक कठोर शारीरिक तप के बाद भी जब उन्हें दु:खनिवृत्ति का यथार्थ मार्ग दिखाई नहीं दिया तो उनका अनुभव यही था कि आत्मकल्मथ भी एक अन्त है, जबकि कामसुखल्लिका मुक्ति में बाधक है, यह तो वे गृह त्याग से पूर्व ही जान चुके थे। तभी तो, उन्होंने अपने परिवार सहित राज-पाठ की सुख-सुविधा को सहज रूप से त्याग दिया था।

यह सर्वविदित है कि आरम्भिक काल से ही बुद्ध के शिष्यों ने तथागत को 'भगवान्' शब्द से संबोधित किया है। किन्तु, यह जानना आवश्यक है कि बुद्ध के विशेषण के रूप में प्रयुक्त भगवान् शब्द बौद्धेतर ईश्वर, परमात्मा आदि के रूप में प्रयुक्त नहीं है। अपितु, क्लेश-मार आदि चार प्रकार के मारों को भग्न करने से, तथा ऐश्वर्य आदि छह गुणों से युक्त होने से 'भगवान्' कहा गया है। इस तरह, भगवान् बुद्ध ईश्वर, परमात्मा के रूप में नहीं, अपितु महामानव के रूप में प्रतिष्ठित है। भगवान् बुद्ध के द्वारा देशित धर्म को सद्धर्म की संज्ञा दी गई है। भोट-भाषा में भी इसका अनुवाद *दम-पे-छोस्* किया है। जिसने सम्यक् रूप से यथाभूत को जान लिया है, ऐसे सम्यक्संबुद्ध के द्वारा प्रवर्तित धर्म को सद्धर्म कहा गया है, जो समस्त दु:खों एवं क्लेश-आवरणों का नि:शेष रूप से नाश करने में समर्थ है। सद् का दूसरा अर्थ उत्तम या श्रेष्ठ भी है। तदनुसार, ऐसा धर्म जो उत्तम गुणों से युक्त है, सद्धर्म कहलाता है। सद्धर्म के आगम(=उपदेश) और अधिगम(=साधना) दो भेद हैं। सम्यक् संबुद्ध के द्वारा समस्त उपदेशित वचन अथवा अधिगम धर्म को बताने वाला वचन आगम कहलाता है। अधिगम वह है जो सत्त्वों को आसक्ति एवं राग, द्वेष, मोह आदि क्लेशों से मुक्त कराता है। वास्तव में, अविद्या एवं तृष्णा से ग्रसित तथा राग, द्वेष एवं मोह आदि क्लेशों से युक्त चित्त का परिशोधन करने वाली देशना ही सद्धर्म है। दूसरी ओर तथागत का सद्धर्म परियत्ति, प्रतिपत्ति और प्रतिवेदन के रूप में प्रतिष्ठित है।

बौद्ध-शास्त्रों में *"बुद्धो विगतमलं चित्तम्"* अर्थात् जिसका चित्त निर्मल हो, उसे बुद्ध कहा गया है। इस तरह, जो अविद्या रूपी अन्धकार से जाग चुका हो, जो तृष्णा से पूर्णतः मुक्त हो चुका हो, जिसमें किसी प्रकार का कायिक, वाचिक तथा मानसिक दोष अवशिष्ट न हो, जिसका चित्त प्रभास्वरता के रूप में पूर्णत: विकसित हो चुका हो, ऐसे महामानव को ही बुद्ध कहा गया है। ऐसे महाकारुणिक बुद्ध ने तत्कालीन लोक में प्रचलित सभी मिथ्यादृष्टियों का प्रहाण कर, कल्याणमित्र की तरह से सद्धर्म की देशना दी है, जो आदि में कल्याण, मध्य में कल्याण और अन्त में कल्याण

स्वरूप है। बुद्ध ने लोक में जिस सद्धर्म की देशना दी, उसे सर्वप्रथम उन्होंने स्वयं जाना, अनुभव किया, और प्राणी मात्र के हित के लिए कल्याणकारी जानकर लोक में उसके प्रचार करने का निश्चय किया। तदुपरान्त, बुद्ध ने आश्वस्त किया कि जो भी इस सद्धर्म का सम्यक् रूप से पालन करेगा, वह समस्त दुःखों का उपशमन कर परम शान्ति को प्राप्त करेगा। यद्यपि बुद्ध ने यह भी चेतावनी दी कि अभ्युदय और निःश्रेयस की प्राप्ति के लिए धर्म एक साधन है, साध्य नहीं। इस संदर्भ में बुद्ध, धर्म की उपमा नाव से देते हैं और कहते हैं कि संसार रूपी नदी को पार कर लेने पर उसे वहीं किनारे पर छोड़ देना चाहिए, न कि उसे सिर पर ढोकर ले चलना चाहिए। बुद्ध का धर्म के प्रति स्पष्ट दृष्टिकोण था कि अधर्म तो त्याज्य है ही, धर्म के प्रति आसक्ति भी त्याज्य है। इस तरह, बुद्ध ने अपने सद्धर्म के माध्यम से सदैव आसक्ति विहीन जीवनचर्या का पालन करने के लिए प्रेरित किया। आसक्ति ही समस्त दुःखों का मूल होने से, उन्होंने अस्तित्व की अवधारणा का भी नितान्त रूप से निषेध किया।

यह तो सर्व विदित है कि तथागत बुद्ध ने अपने सद्धर्म में आत्मा और परमात्मा को कोई स्थान नहीं दिया। उन्होंने सांसारिक दुःख-निवृत्ति हेतु ईश्वर, परमात्मा आदि के अस्तित्व को अनावश्यक माना। जैसे चिकित्सक रोगी के रोग के अनुसार इलाज करता है, वैसे ही तथागत ने भी दुःख से संतप्त विभिन्न लोगों को सम्यक् मार्ग का दर्शन कर दुःख से मुक्त किया। उन्होंने दुःख की समस्या का समाधान प्रतीत्यसमुत्पाद-सिद्धान्त के आधार पर खोजा। अर्थात् *"अस्मिन् सति इदं भवति, अस्योत्पादादिदम् उत्पद्यते"* अर्थात् इसके होने पर यह होता है, इसकी उत्पत्ति से इसकी उत्पत्ति होती है। इस कार्य-कारण सिद्धान्त के आधार पर ही उन्होंने कर्म-फल को स्थापित किया और उसे प्रधानता दी। कुशल और अकुशल कर्म के व्यक्ति की चेतना पर निर्भर होने से, उन्होंने किसी लोकोत्तर शक्ति की भूमिका को नहीं स्वीकारा। उन्होंने किसी भी वचन या उपदेश को आँख मूँद कर स्वीकारने की अपेक्षा तर्क और अनुभव के आधार पर स्वीकारने के लिए प्रेरित किया। इस तरह, तथागत ने किसी तथ्य को मानने की अपेक्षा उसके जानने पर महत्त्व दिया। अपने अन्तिम उपदेश में आनन्द से *"अप्प दीपो भव"* कह कर आत्म-शरण में जाने के लिए प्रेरित किया। बाह्य आचार शुद्धता की अपेक्षा अन्तःकरण की शुद्धता अर्थात् मानस-शुद्धता पर अधिक बल दिया। उनके अनुसार, कायिक और वाचिक शुद्धता का अर्थ काय और वाणी के द्वारा पाप कर्मों से विरत रहना है, न कि बाह्य आडम्बरों द्वारा काय एवं वाणी की शुचिता का रूप दिखलाना है।

बुद्ध ने सभी संस्कारों की अनित्यता, सभी सास्रव-धर्मों की दुःखता तथा सभी धर्मों की अनात्मता और निर्वाण की शान्तता- इन चारों को धर्मोद्दान अर्थात् धर्म का संग्रह या सार कहा। संक्षेप में, अनित्यता, अनात्मता और दुःखता का बोधकर, मैत्री और करुणा वाले चित्त से सम्प्रयुक्त होकर, विभिन्न उपायों से प्राणी मात्र का हित सम्पादन करना ही, इस सद्धर्म का मर्म है।

दूसरी ओर, शील, समाधि और प्रज्ञा बुद्ध के सद्धर्म का आधार है। इसी तरह मैत्री, करुणा, मुदिता और उपेक्षा–ये चार ब्रह्म-विहार मानव जीवनशैली का आधार स्तम्भ हैं। मैत्री का अर्थ सभी सत्त्वों के प्रति इकलौते पुत्र की तरह प्रेम करना है। दु:ख-दु:खता, विपरिणाम-दु:खता और संस्कार-दु:खता–ये दु:ख के तीन भेद हैं। इन तीन प्रकार के दु:खों से दु:खी सत्त्वों को संसार-सागर से उद्धार करने की कामना ही करुणा है। शिरोवेदना, हाथ, पैर, पेट आदि की पीड़ा रूपी स्थूल दु:ख, दु:ख-दुखता के अन्तर्गत आते हैं। जो वर्तमान में सुख के समान प्रतीत होते हैं, किन्तु परिणाम में निश्चित रूप से दु:खदायी होते हैं, ऐसे दु:खों को विपरिणाम-दु:खता कहा जाता है। जितने भी हेतु-प्रत्यय से उत्पन्न होने वाले संस्कृत धर्म हैं, वे नाशवान् स्वभाव वाले होते हैं, इसलिए जो नाशवान् होते हैं, वे सभी दु:खदायी होते हैं। अत: सभी संस्कृत अर्थात् हेतु-प्रत्यय से उत्पन्न धर्म स्वभावत: दु:ख हैं, इसे ही संस्कार-दु:खता कहते हैं। इस संस्कार-दु:खता से राजा से रंक तक कोई भी प्राणी बच नहीं सकता है। मुदिता का अर्थ दूसरे लोगों के द्वारा अपने कुशलकर्मों से भोग्य ऐश्वर्य, विलासिता तथा सम्पन्नता आदि को देख कर चित्त में हर्ष उत्पन्न होना या संतोष महसूस करना है। उपेक्षा का अर्थ दूसरों की बुराइयों या दोषों को देखकर समता(=उपेक्षा) में स्थित रहना है।

प्रज्ञा और करुणा का समन्वित रूप ही वह तत्त्व है जो बुद्ध के सद्धर्म को अन्य धर्मों से अलग स्थापित करता है। पदार्थ की वास्तविक स्थिति को जानने वाला ज्ञान ही प्रज्ञा है, अथवा ग्राह्य-ग्राहक से रहित स्वभावशून्यता रूपी बुद्धि ही प्रज्ञा है अथवा सभी धर्मों की अनुपलब्धि-लक्षण का अधिगम ही प्रज्ञा है। बौद्ध-शास्त्रों में प्रज्ञा के विना करुणा को बन्धन तथा करुणा के विना प्रज्ञा को बन्धन कहा है। प्रज्ञा और करुणा पक्षी के दो पंख के समान हैं, जो महाकाश में उड़ने में सामर्थ्य पैदा करते हैं। केवल प्रज्ञा या केवल उपाय(=करुणा) एकांगी है। इस तरह, प्रज्ञोपाय का युगनद्ध रूप ही बुद्ध के सद्धर्म का वास्तविक प्रतिपाद्य विषय है। यही बुद्ध का व्यक्तित्व भी है। दूसरी ओर, *"प्रज्ञया न भवे स्थानं कृपया न शमे स्थितिः"* इस वचन के अनुसार बुद्ध प्रज्ञा के कारण संसार में स्थित नहीं होते हैं, और करुणा के कारण निर्वाण में स्थित नहीं होते हैं। अर्थात्, बुद्ध प्रज्ञा के कारण अविद्या रूपी क्लेश के आवरणों का सम्पूर्ण नाश कर संसार से मुक्त हो जाते हैं, किन्तु करुणाशील होने से निर्वाण के रस को भी रसहीन मानकर भवसागर में डूबे दु:खीजनों का उद्धार करने के लिए सतत प्रयत्नशील रहते हैं तथा संसार का त्याग नहीं कर पाते हैं। यही वह कारण है, जहाँ लोक में बुद्ध की स्थिति सदैव बनी रहती है। यह प्रज्ञा और करुणा अनादि काल से चली आ रही जीवन-सन्तति में निरन्तर पारमिताओं के अभ्यास से संचित पुण्यसंभार और ज्ञानसंभार के फलस्वरूप प्राप्त होती है। प्रज्ञोपाय की अभिन्नता ही बुद्धत्व है, जो व्यक्तित्व की पराकाष्ठा का चरमबिन्दु है। बौद्ध शास्त्रों में, इस बोधि ज्ञान को तथता, धर्मता, प्रज्ञापारमिता, निष्प्रपञ्चता, महामुद्रा तथा प्रभास्वरता आदि के रूप में व्यक्त किया गया है। यही

वह अवस्था है जहाँ दु:ख का नि:शेष रूप से उपशमन हो जाता है। व्यक्तित्व की इसी अवस्था विशेष में जीवन का परम उत्कर्ष प्रकट होता है और लोककल्याण उसका स्वभाव बन जाता है। इस अवस्था विशेष में सांसारिक-कर्मों की सन्तति का पूर्णतः विच्छेद हो जाता है। किन्तु अनाभोग कर्म की गति सतत चलती रहती है। असंख्य पूर्व-जन्मों की परिणामना और पुण्य के फलस्वरूप, इसी अनाभोग कर्म से कल्पवृक्ष की भाँति अनन्त सांसारिक-दु:खों का अन्त करने में समर्थ होता है। व्यक्तित्व की यह अवस्था ईश्वर की नहीं, अपितु महामानव की है, जिसे बुद्ध कहा जाता है। बुद्ध रूपी महामानव बनने का बीज प्रत्येक प्राणी में समान रूप से निहित है, किन्तु मानव-जीवन में ही वह विशिष्ट क्षमता है, जो महामानव के रूप में व्यक्तित्व को विकसित कर सके। सद्धर्म के अनुसार मनुष्य का जीवन अत्यन्त दुर्लभ है। अतः इस दुर्लभ क्षणसंपत् मानव-जीवन की महत्ता को समझकर, अविलम्ब बोधिचित्त को उत्पन्न कर, मानव-जीवन का उपयोग परार्थ के लिए करना ही महामानव बनने का एकमात्र साधन है।

तथागत बुद्ध ने भी असंख्य जन्मों तक बोधिसत्त्व के रूप में बोधिचर्याओं का अभ्यास कर, अन्ततः वैशाख पूर्णिमा के दिन नैरञ्जना नदी के समीप बोधिवृक्ष के नीचे बोधि-ज्ञान का साक्षात्कार कर बुद्धत्व को प्राप्त किया। उन्होंने जिस बोधि-ज्ञान का साक्षात्कार किया, उसे प्राणी मात्र के कल्याण के लिए लोक में प्रचारित एवं प्रसारित करने का निर्णय लिया। इस क्रम में, सर्वप्रथम सारनाथ के ऋषिपत्तन मृगदाव में पञ्चवर्गीय शिष्यों को धर्मचक्रप्रवर्त्तन-सूत्र के रूप में चार-आर्य सत्य का उपदेश दिया; जो इस प्रकार से हैं– दु:ख, दु:ख का कारण, दु:खनिरोध एवं दु:खनिरोध का मार्ग। भगवान् बुद्ध ने इन चार आर्य-सत्यों को क्रमशः परिज्ञेय, प्रहातव्य, साक्षात्कर्त्तव्य तथा भावितव्य कहा है। अर्थात्, दु:ख का परिज्ञान करना चाहिए, दु:ख के कारणों का प्रहाण करना चाहिए, दु:ख-निरोध का साक्षात्कार करना चाहिए, तथा दु:ख-निरोध-मार्ग की भावना करनी चाहिए। यद्यपि, भगवान् बुद्ध ने संसार को दु:खों का घर कहा है और इन दु:खों का उपशम तो केवल निर्वाण की अवस्था में ही संभव बताया। नि:संदेह, संसार दु:खों से व्याप्त है, इस सत्य का कोई भी अपलाप नहीं कर सकता। जिसे हम सुख समझते हैं, वास्तव में उसके पीछे दु:ख ही छुपा हुआ रहता है जो क्षणिक रूप में हमें सुख का आभास कराता है। इस सत्यता के बावजूद, भगवान् बुद्ध का उद्देश्य समाज में दु:ख को बतला कर निराशा फैलाना नहीं, अपितु सुख की वास्तविक खोज करना था। इस दु:खवाद को लेकर कई सुधीजन बुद्ध पर निराशावादी होने का भी आरोप लगाते हैं, लेकिन यह उनकी अपनी अज्ञानता है। वास्तव में तथागत ने दु:ख के निवारण का मार्ग खोजकर मनुष्यों को निराशावाद से निकालकर आशावाद का मार्ग प्रशस्त किया है।

बुद्ध के अनुसार, यदि संसार में किसी चीज का अस्तित्व है तो उस का हेतु या कारण भी अवश्य होना चाहिए। विना कारण के कोई भी वस्तु या घटना न उत्पन्न होती है, और न ही घटित

होती है। इसलिए बुद्ध ने दु:ख के कारणों को खोजना प्रारम्भ किया और पाया कि दु:ख का एकमात्र कारण अविद्या से युक्त तृष्णा ही है। यथाभूत की अज्ञानता ही अविद्या कहलाती है। दूसरे शब्दों में, असत्य को सत्य समझना, अनित्य को नित्य समझना ही अविद्या है। अविद्या से ही तृष्णा उत्पन्न होती है। अहं और मम के प्रति ऐसी ललक, ऐसी प्यास, ऐसी चाहत ही तृष्णा है, जिसे कभी अपने से अलग करना नहीं चाहती। अपने अस्तित्व के प्रति आसक्ति, अपनों के प्रति आसक्ति, और इस संसार के प्रति आसक्ति आदि तृष्णा का जो विस्तार है, यही कामतृष्णा, भवतृष्णा और विभवतृष्णा का रूप है। यहीं से प्रारम्भ होता है अपनों के प्रति राग और परायों के प्रति द्वेष जो अपने और पराये के बीच के संघर्ष का कारण बनता है। राग, द्वेष और मोह यही तो वह विष है जिस को पीकर व्यक्ति संसार के मायाजाल में फंसकर अनन्त दु:खों को भोगता रहता है। अहंकार, ममकार तथा रागादि मलों के वशीभूत होकर व्यक्ति सांसारिक बन्धनों में बंधता चला जाता है। सब कुछ नाशवान होते हुए भी मनुष्य अपनी आसक्ति के कारण अनश्वर मानकर, अनादि काल से इस संसारचक्र में जन्म और मृत्यु के बन्धन में जकड़ा हुआ है। अत: इस तृष्णा व आसक्ति का जब तक नाश नहीं करेंगे, तब तक इस संसार के मोहपाश से छूट नहीं पायेंगे। इस तृष्णा का विस्तार व्यक्ति तक ही सीमित नहीं है, अपितु समाज, राष्ट्र और अन्ततः विश्व तक व्याप्त है। इस तरह, व्यक्ति, समाज और राष्ट्र द्वारा निर्मित व्यवस्थायें भी मानवीय दु:खों के लिए जिम्मेदार हैं। इन समस्त दु:खों का मूल कारण व्यक्ति की आसक्ति और अविद्या ही है।

भगवान बुद्ध की अगली खोज यही थी कि इस तृष्णा को जड़ से कैसे निर्मूल किया जाय। बुद्ध ने जब कार्य-कारण के अटूट सम्बन्ध को देखा तो उन्होंने यह जाना कि कारण सामग्री के न रहने पर कार्य का भी अस्तित्व समाप्त हो जाता है। जैसे कि पूर्व में कहा गया है- हेतु और प्रत्ययों की अपेक्षा से वस्तु का उत्पाद, अथवा कारण सामग्री के योग से कार्य का उत्पाद होना ही प्रतीत्यसमुत्पाद का स्वरूप है। तथागत के अनुसार, संसार का अस्तित्व इसी प्रतीत्यसमुत्पाद-सिद्धान्त पर आधारित है। उन्होंने प्रतीत्यसमुत्पाद के आधार पर ही अतीत, वर्तमान और अनागत जीवन-सन्तति के चक्र को, यानी भवचक्र को दर्शाया है, जिसके मूल में राग, द्वेष और मोह निहित है। उन्होंने प्रतीत्यसमुत्पाद के द्वादश निदान के रूप में क्रमश: अविद्या, संस्कार, विज्ञान, नामरूप, षडायतन, स्पर्श, तृष्णा, उपादान, भव, जाति, जरा, मरण, दु:ख दौर्मनस्य आदि हेतु-प्रत्यय के सिद्धान्त को प्रकट किया। बुद्ध के इसी मूलभूत प्रतीत्यसमुत्पाद के सिद्धान्त को आर्य नागार्जुन, आर्य मैत्रेयनाथ, आर्य असंग, आचार्य वसुबन्धु, आचार्य चन्द्रकीर्ति आदि अनुयायियों ने अपने-अपने दर्शन-प्रस्थानों में शून्यता (=नि:स्वभावता), विज्ञप्तिमात्रता आदि के रूप में प्रतिष्ठित कर दर्शन को पराकाष्ठा तक पहुँचाया। प्रतीत्यसमुत्पाद के सिद्धान्त पर ही प्रकृति का नियम संचालित है, इसलिए यह सार्वभौमिक सत्य है। इसका अर्थ है संसार के निर्माण में किसी ईश्वर का कोई हाथ नहीं है, और न ही इसकी कोई आवश्यकता है। संसार में जड़ और

चेतन सभी चीज़ों का उत्पाद और विनाश इसी प्रतीत्यसमुत्पाद के सिद्धान्त पर घटित होता है। इस तरह, तथागत ने कार्य-कारण के सिद्धान्त से दु:ख के कारणों को जाना और दु:ख का कारण जो तृष्णा है, यदि उसे समाप्त कर लिया जाए तो दु:ख की अनुभूति भी समाप्त हो जाएगी, यह उनके चिन्तन का निष्कर्ष था। इसलिए बुद्ध ने तीसरे सत्य के रूप में दु:ख निरोध की सत्यता को प्रकाशित किया। अतः यह दु:ख-निरोध सत्य भावना करने योग्य है।

बुद्ध ने जिस चौथे सत्य की खोज की, वह है–दुखनिरोध-मार्ग। बुद्ध ने दु:ख-निरोध करने में समर्थ जिस मार्ग की देशना दी, वह अष्टांगिक-मार्ग के रूप में विख्यात है। बुद्ध ने इस मार्ग को खोज कर विश्व में व्याप्त दु:ख का समूल नाश करने का मार्ग प्रशस्त किया। सम्यक् दृष्टि, सम्यक् संकल्प, सम्यक् वाक्, सम्यक् कर्मान्त, सम्यक् आजीव, सम्यक् व्यायाम, सम्यक् स्मृति तथा सम्यक् समाधि- ये ही वे आठ अंग हैं, जो शील, समाधि और प्रज्ञा स्वरूप हैं। ये आठ अंग कायिक, वाचिक और मानसिक कर्म के रूप में भी विभाजित हो जाते हैं, जो व्यक्तित्व के तीन महत्त्वपूर्ण आयाम हैं। काय से, वाणी से और मन से ही व्यक्ति शुभ-अशुभ सभी कर्म करते हैं और सुख-दु:ख भोगते हैं। इसलिए, ये सुख-दु:ख के नियामक भी हैं। यदि व्यक्ति अपनी जीवनशैली में इन अष्टांगिक-मार्गों का सम्यक्तया पालन करने में सक्षम हो जाता है तो वह आध्यात्मिकता की पराकाष्ठा को प्राप्त करने में भी समर्थ हो जाता है। यही चार सत्य, बौद्ध-धर्म में आर्य-सत्य के रूप में प्रचलित हैं। बुद्ध ने स्वाधिगम के आधार पर इस सत्य को प्रकट किया है। यह आर्य-सत्य एक नैसर्गिक सत्य है। यह आर्य-सत्य किसी धर्म विशेष के अनुयायी के लिए नहीं है, अपितु मानव मात्र के कल्याण के लिए है, जो प्राणी मात्र को दु:ख रूपी इस संसार-सागर से पार कराने में सक्षम है।

संसार में दु:ख के व्यापक अस्तित्व को देखते तो सभी हैं, किन्तु संवेदनशीलता के अभाव में उस का बोध कम ही लोगों को होता है। वास्तव में देखने और बोध करने में बहुत अन्तर होता है। जिस क्षण दु:ख का बोध होगा, उसी क्षण उसकी व्याकुलता उसे रहने नहीं देगी। जबकि आए दिन हम-आप दूसरों को दु:खी होते देखते और सुनते हैं, किन्तु इन दु:खों के प्रति हमारी संवेदनशीलता और सजगता अत्यन्त सतही होती है। वास्तव में स्वार्थ और संकुचित दृष्टि के कारण व्यक्ति संवेदनशून्य की अवस्था में जीता है। उस में वह बोध, वह संवेदनशीलता प्रकट नहीं होती जो वास्तव में होनी चाहिए। ऐसी संवेदनशीलता, ऐसी सजगता अथवा ऐसा बोध तब आता है, जब व्यक्ति के भीतर बोधिचित्त उत्पन्न हो जाता है। बोधिचित्त उत्पन्न व्यक्ति को बोधिसत्त्व के नाम से अभिहित किया जाता है। यह व्यक्ति के व्यक्तित्व की वह अवस्था है, जहाँ संसार के व्यापक दु:खों का बोध गहनतम रूप से होता है और इसी व्याकुलता के कारण इस संसार सागर में तृष्णा में आकण्ठ डूब चुके प्राणियों को मुक्त कर परम सुख के आसन पर स्थापित करने के लिए सदैव तत्पर रहता है। सिद्धार्थ गौतम ने जिन चार दृश्यों को देखकर गृहत्याग का

निर्णय लिया, वास्तव में वह संसार से पलायन नहीं था, अपितु उन्होंने सांसारिक दु:खों से व्याकुल होकर दु:ख की उस संवेदनशीलता को प्रकट किया, जिसे देखकर वह व्याकुल हो गये थे। संसार की नि:सारता और दु:खता का बोध हो जाने के कारण ही, वह अपने इकलौते पुत्र, पत्नी और सम्पूर्ण राजपाट को इतने सहज रूप में त्यागने में समर्थ हो सके। उनका ध्येय समूचे प्राणी मात्र के दु:ख का समाधान खोजना था। वे स्व को पर में विलीन कर चुके थे। वास्तव में ऐसे व्यक्तित्व के धनी ही संसारिक दु:ख की व्यापकता को समझ सकते हैं।

भगवान बुद्ध के सद्धर्म का सार धम्मपद (बुद्धवग्गो, गाथा-183) में इस रूप में प्रतिपादित है- *"सब्बपापस्स अकरणं कुसलस्स उपसंपदा। सचित्तपरियोदपनं एतं बुद्धान सासनं"*। सभी पापों को न करना, पुण्यों अथवा कुशलकर्मों का संचय करना तथा अपने चित्त को परिशुद्ध करना, यही बुद्धों की शिक्षा है। इसी तरह, तथागत ने धम्मपद (यमकवग्गो, गाथा-1) में *"मनो पुब्बङ्गमा धम्मा मनो सेट्ठा मनोमया"* आदि कह कर मन को ही प्रधानता दी है। तथागत के सद्धर्म में मन, चित्त, विज्ञान आदि नाम पर्याय हैं। इस तरह तथागत ने चित्त को ही सुख और दु:ख का कारण माना है। तदनुसार, व्यक्ति स्वयं ही अपने सुख और दु:ख का निर्माता है। कोई ईश्वर, देवता या अन्य अदृश्य शक्ति इस दु:ख का उत्पादक या नाशक नहीं हो सकता। क्योंकि, व्यक्ति स्वयं अपने कुशल और अकुशल कर्मों से सुख और दु:ख का निर्माण कर जीवन यात्रा प्रारम्भ करता है। सम्पूर्ण जीवन-यात्रा के संचालन में व्यक्ति का निज चित्त ही सर्वोपरि रहता है। चित्त संसार की अत्यन्त द्रुतगामी, सूक्ष्मतम तथा अरूपी वस्तु है। इसकी गति शुभ और अशुभ दोनों में समान है। एक ओर चित्त की अशुभता के कारण लोक में हिंसा, अन्याय और शोषण का दृश्य दृष्टिगोचर होता है, तो दूसरी ओर चित्त की शुभता के कारण लोक में अहिंसा, मैत्री, करुणा और मानवता का भी अनुपम परिदृश्य परिलक्षित होता है। मानव के इतिहास में असीम शक्ति सम्पन्न चित्त को विरले ही लोग दमित कर पाये। इस चित्त की गम्भीरता और गहराई में उतरने की चेष्टा न जाने आज तक कितने ही लोगों ने की होगी, किन्तु मानव के इतिहास में कुछ ही ऐसे महापुरुष हुए हैं, जिन्होंने चित्त का गहनतम विश्लेषण कर मानव को महामानव के रूप में प्रतिष्ठित किया। उन्हीं महापुरुषों में से एक हैं– भगवान् बुद्ध, जिन्होंने अपनी सम्पूर्ण देशना का केन्द्रबिन्दु चित्त को ही माना। बुद्ध ने अपने अनुभव से दु:ख निवृत्ति के लिए चित्त की गहराई में उतरना आवश्यक जाना। इसलिए बुद्ध ने अपने सम्पूर्ण जीवन में चित्त को ही केन्द्रित कर सद्धर्म की देशना प्रस्तुत की। या यों कहा जाये कि बुद्ध ने दु:ख का मनोवैज्ञानिक ढंग से विश्लेषण कर इस का समाधान भी मनोवैज्ञानिक तरीके से ही खोजा। दु:ख का समाधान बाहर नहीं बल्कि भीतर खोजा, जिसके मूल में चित्त है। चित्त की सूक्ष्म और विशद व्याख्या जैसी बुद्ध ने की, वैसी आध्यात्मिक क्षेत्र में किसी अन्य ने संभवत: नहीं की।

थेरवाद से लेकर वज्रयान तक बुद्ध ने चित्त को ही केन्द्र में रखकर, सत्त्वों की विभिन्न रुचि और मन:स्थिति के आधार पर दु:खनिवृत्ति के विभिन्न मार्गों की देशनायें दीं। इसीलिए बौद्धधर्म

के सभी यानों में चित्त की प्रधानता सर्वोपरि है। नि:संदेह चित्तशुद्धि का मार्ग(=उपाय) थेरवाद से लेकर वज्रयान तक सोपान(=सीढ़ी) की भांति दर्शाया गया है, जो स्थूल रूप से देखने पर विरोधाभास-सा प्रतीत हो सकता है, किन्तु वास्तव में ऐसा है नहीं। इसलिए बुद्ध की देशना में कोई विरोधाभास नहीं है। वज्रयान के अनुसार, सूक्ष्म प्राण-चित्त स्वभावत: परिशुद्ध है। शून्यता और करुणा से अभिन्न प्रभास्वरता इसकी प्रकृति है, जो धर्मता रूप है। यह सम्पूर्ण विश्व इसी चित्त का प्रतिभास है। इस प्रभास्वर चित्त के साक्षात्कार हेतु उत्पत्तिक्रम और निष्पन्नक्रम का मार्ग उपदिष्ट है। वज्रयान में काय, वाक् और चित्त की शुद्धि के लिए काय-विवेक, वाक्-विवेक और चित्त-विवेक के मार्ग को दर्शाया गया है। मन्त्र, मुद्रा, मण्डल और अभिषेक आदि सभी इसी मार्ग के अवयव हैं। यद्यपि आगन्तुक क्लेशों के कारण चित्त मलिन होकर सांसारिक बन्धन का कारण बनता है, तथापि चित्त की प्रकृति दूषित नहीं होती है। चित्त की प्रकृति स्वभावतः निर्मल है। यही चित्त की धर्मता है। चित्त की यह प्रकृति शुद्ध, बुद्ध और मुक्त रूप है। चित्त में राग, द्वेष और मोह आदि क्लेश आकाश में बादल की भाँति आगन्तुक हैं। चित्त में इन क्लेशों का आवरण स्थायी नहीं है। क्लेश से युक्त चित्त को शून्यता के द्वारा विशुद्ध किया जा सकता है। इसीलिए, चित्त की प्रभास्वरता का साक्षात्कार संभव है। यदि चित्त की प्रकृति ही क्लेश स्वभाव वाली होती तो इसकी शुद्धता का साक्षात्कार कैसे संभव होता?

दूसरी ओर मन्त्रयान में विष को निर्विष कर औषधि के रूप में प्रयोग करने की भाँति, शून्यता के आधार पर राग, द्वेष, मोह आदि विष रूपी क्लेशों को महाराग, महाद्वेष तथा महामोह के रूप में रूपान्तरित कर अथवा क्लेशों का मार्गीकरण कर बुद्धत्व प्राप्ति के साधन के रूप में देशना दी गयी है। शून्यता की इस प्रक्रिया से राग रूपी क्लेश भी मुक्ति का कारण बन जाता है और इससे महासुख की प्राप्ति होती है। इसके लिए, चण्डालीयोग, मायाकाय, स्वाधिष्ठानक्रम, प्रभास्वरता आदि योगों की प्रक्रिया से नाड़ी, बिन्दु, वायु आदि का शोधन कर कायवज्र, वाग्वज्र और चित्तवज्र की सिद्धि की जाती है। काय, वाक् और चित्त की अभिन्नता ही मन्त्रयान का रहस्य है। सद्धर्म की देशना का चरमोत्कर्ष चित्त की प्रभास्वरता और स्वाधिष्ठानक्रम की युगनद्ध अवस्था के योग से महासुखकाय की अवस्था में सम्पन्न होती है। जो शून्यता और करुणा का अभिन्न रूप है। वज्रयान में संसार और निर्वाण का भेद समाप्त हो जाता है। क्योंकि संसार और निर्वाण दोनों चित्त से ही स्फुरित होते हैं। तत्त्वतः ये दोनों अभिन्न रूप हैं। सम्पूर्ण जगत् चित्त का ही प्रतिभास है। यह चित्त भी अचित्त रूप है। अचित्ताधारित यह चित्त तत्त्वतः अचिन्त्य, प्रभास्वर और चिन्तामणि सदृश है। वज्रयान में सूक्ष्म प्राणचित्त की प्रकृति का साक्षात्कार शून्य, अतिशून्य, महाशून्य, और सर्वशून्य के ज्ञान से आलोक, आलोकाभास, आलोकोपलब्धि, तथा प्रभास्वरता के क्रम में किया जाता है। इस तरह तथागत के सद्धर्म में चित्त की प्रकृति का बोध ही परम पुरुषार्थ है, जो मानव को महामानव के रूप में प्रतिष्ठित करने में समर्थ है।

यह भी एक कटु सत्य है कि विश्व में धर्म के नाम पर हिंसा और अशान्ति का लम्बा इतिहास है। आज के इस तथाकथित आधुनिक युग के सभ्य समाज में भी धर्म के नाम पर हिंसा और अशान्ति जारी है, जो मानवता के पोषक एवं सभ्य समाज के लिए चिन्ता का विषय बना हुआ है। आज विश्व में शान्ति अथवा अहिंसा का माहौल तभी प्रतिष्ठित हो सकता है, जब सभी धर्मों के अनुयायी परस्पर धर्मों का सम्मान करें और सभी धर्मों में निहित मानवीय मूल्यों को उजागर कर मानवमात्र के हित के लिए प्रयत्नशील हों । यह तभी संभव है जब विभिन्न धर्मानुयायी एक दूसरे के धार्मिक-विचारों से अवगत हों और परस्पर सम्मान का भाव विकसित कर, मानवीय मूल्यों को पहचान कर, मानव हित में सतत अपने-अपने धर्मों का पालन करें। यह भी एक कठोर सत्य है कि सभी धर्म एक नहीं हो सकते हैं क्योंकि मानव की प्रकृति एवं संस्कृति के आधार पर धर्मों की विविधता स्वाभाविक है। धर्मों में विविधता रहने पर भी उन में निहित मानवीय मूल्यों के आधार पर सभी धर्मों में समभाव संभव है। वास्तव में धर्मों में निहित मानवीय मूल्यों के आधार पर देखा जाए तो मानव-मानव में संघर्ष की कोई गुंजाइश नहीं है, क्योंकि सभी प्राणी सुख चाहते हैं, कोई भी दु:ख नहीं चाहता। ऐसी स्थिति में मानव-मानव में न कोई भेद है और न कोई उच्चावचता। यही वह मानवीय मूल्य है जिसके आधार पर सभी धर्म एक हो सकते हैं। भगवान् बुद्ध ने अपने सद्धर्म के माध्यम से इन्हीं मानवीय मूल्यों को ही उजागर कर मानव की श्रेष्ठता को गौरव प्रदान किया है । उन्होंने मानव-मानव में भेद का अत्यन्त विरोध करते हुए समतावादी मूल्यों को प्रतिष्ठित किया है। स्व-पर-समता को मानवीय दृष्टिकोण का आधार माना है। मैत्री और करुणा को अपने सद्धर्म का हृदय स्वीकारा है। इस तरह हम देखते हैं कि भगवान बुद्ध ने अपने जीवन काल में अपने अनुयायियों को सद्धर्म की जो शिक्षा दी और बाद में उनकी शिक्षाओं का जो विस्तार हुआ, उसमें प्राणी मात्र का कल्याण ही सर्वोपरि है । उस सद्धर्म के माध्यम से मानवता एवं सार्वभौमिक सत्य को ही उजागर किया गया जो सभी देश, काल और स्थिति में उपादेय है। उनके अनुयायियों ने शताब्दियों तक विश्व के अधिकाँश भूभाग में धर्म की इसी यथार्थता को ही उजागर करने का प्रयास किया, जो आज भी विश्व के विभिन्न देशों की संस्कृति के साथ प्रतिष्ठित है। आधुनिक युग में भी इस की प्रासंगिकता समाप्त नहीं हुई है, क्योंकि सद्धर्म के द्वारा आज के इस युग में भी आधुनिक विचारकों, चिन्तकों एवं वैज्ञानिकों की बौद्धधर्म के प्रति सतत रुचि बढ़ रही है। नि:संदेह, बुद्ध का सद्धर्म मानवता, तर्कप्रधानता, अनुभवगम्यता एवं सार्वभौमिक-सत्यता पर आधारित होने के कारण विज्ञान के भी अत्यन्त करीब है।

एसोसिएट प्रोफेसर
के.उ.ति.शि.सं., सारनाथ, वाराणसी
मो.नं.- 9415447466

भोट नरेश जङछुब-होद् (बोधिप्रभ) का बौद्धधर्म की पुनर्स्थापना में योगदान

—डॉ. गेशे लोब्संग दोर्जे—

भोट देश में धर्मराज सोङचन-गम्पो, ठि-सोङग-देउचन एवं ठि-रल-पाचन इन तीन महान धर्मराजाओं ने बुद्धशासन की स्थापना, विकास एवं चिरस्थिति के लिए पर्याप्त प्रयास किया, किन्तु तीसरे महाराज ठि-रल्पाचेन के शासनकाल में बौद्ध धर्म के प्रति श्रद्धारहित कुछ मन्त्रियों एवं सहोदर भाई लङ् दरमा ने षड्यन्त्र रचकर राजा रल्पाचेन को मद्य पिलाकर युवावस्था में ही गला घोंटकर हत्या कर दी । तत्पश्चात राजा के बड़े भाई लङ्-दरमा, जो दुष्ट स्वभाव के थे, उनको राजसिंहासन पर बैठाया गया । उन्होंने पूर्व धर्मराजाओं द्वारा स्थापित विहारों का विनाश, संघ का वध एवं बौद्ध-ग्रन्थों में आग लगाकर बौद्ध धर्म का नामोनिशान मिटा दिया । तीन वर्ष के बाद बौद्धशासन के विनाश को सहन न करके ल्हा-लुङ् पेल्-ग्यि-दोर्जे ने राजा लङ् दरमा की बाण मारकर हत्या कर दी । उसके बाद से सम्पूर्ण तिब्बत में राज करने वाला कोई राजा नहीं हुआ । इस प्रकार बिना राजा के लगभग 70 वर्षों तक मध्य तिब्बत में बौद्ध धर्म प्रायः लुप्त-सा हो गया ।

मध्य तिब्बत में बौद्ध धर्म के विलोप के पश्चात् तिब्बत की पूर्वदिशा में स्थित खम प्रदेश के भिक्षुसंघ की परम्परा को भिक्षु लाछेन गोङ्पा रबसेल आदि ने मध्य तिब्बत में पुनर्गठन कर शासन की पुनः स्थापना की । पश्चिम क्षेत्र ऊ-चड़ के शासक महापुरुष येशे होद्(=ज्ञानप्रभ) तथा लाछेन गोङ्पा रबसेल ने भिक्खुसंघ का विस्तार किया । किन्तु विनय तथा तंत्र में प्रधानता के विषय में परस्पर विवाद उत्पन्न हो गया, जिससे शासन में विघटन हो गया । अधिकांश जनता बौद्धधर्म से यद्यपि परिचित थी, फिर भी उसका अभ्यास और चिन्तन न होने से उसके वास्तविक अर्थ से अनभिज्ञ थी । विशेषकर राजा लङ-दरमा के द्वारा शासन का दमन करने के बाद से शासन की पुनः स्थापना हेतु कुछ तान्त्रिकों ने कण्ठस्थ तंत्र को लिपबद्ध करना प्रारंभ किया, जिसका उन्होंने अध्ययन किया था । जहाँ-जहाँ स्मरण नहीं हो पाया, वहाँ वे अपनी ओर से रचना कर पूर्ण कर देते थे । इसी बीच कुछ लोगों ने नकली तन्त्रग्रन्थों की भी रचना कर दी और उसमें सामान्य बोलचाल की भाषा का प्रयोग कर दिया ।

इस प्रकार शासन की दयनीय स्थिति को देखते हुए पश्चिमी तिब्बत के राजा 'येशे-होद्' (=ज्ञानप्रभ) चिन्तित हो उठे । उनके लिए यह असह्य हो गया । पूर्व के तिब्बती महाराजाओं के द्वारा बौद्ध शासन की वृद्धि एवं विकास के लिए किए गए प्रयासों को स्मरण करते हुए उस समय की विकट स्थिति को देखकर उनका मन खिन्न हो गया । उनके मन में भी पूर्व के राजाओं की भांति शासन की वृद्धि हेतु कुछ कर गुज़रने की इच्छा प्रबल हुई । फलस्वरूप उन्होंने अपना राज्य अपने भाई 'ल्हादे' को सौंप दिया और स्वयं भिक्खु हो गए ।

तत्पश्चात "येशे-होद" तथा लोछेन रिन्छेन-साङ्पो (=रत्नभद्र) दोनों ने मिलकर विधर्म अर्थात् मिथ्याधर्म को समाप्त करने हेतु व्यापक प्रचार-प्रसार किया तथा इसके विरुद्ध राजाज्ञा भी निकलवायी, किन्तु इन सबका कोई ठोस परिणाम नहीं निकला, जिससे वे और अधिक चिन्तित हो उठे। अन्त में उन्होंने निर्णय लिया कि इन सब समस्याओं को दूर करने का एक ही उपाय है कि भारत से किसी भारतीय बौद्ध आचार्य को तिब्बत आमंत्रित किया जाए। उन्होंने भारत में तत्कालीन प्रसिद्ध आचार्य दीपंकरश्रीज्ञान के बारे में सुन रखा था। उन्होंने सोचा कि यदि ऐसे महान आचार्य को तिब्बत में आमंत्रित किया जा सका तो शासन में फैली समस्त मिथ्यादृष्टियों एवं भ्रामक प्रचारों का समाधान हो जाएगा और तिब्बत की जनता के हित में एक महान् कार्य होगा।

तत्पश्चात् महामहिम येशे होद् ने आर्यावर्त भारतवर्ष से महापण्डित आचार्य दीपंकरश्रीज्ञान को बुलाने के लिए महानुवादक 'ग्या चोन्डुस्-सेङ्गे' (=वीर्यसिंह) को प्रभूत स्वर्णमुद्राएं और अनेक सेवकों के साथ भारत भेजा। दुर्भाग्य से अधिकांश स्वर्णमुद्राओं की मार्ग में डकैती हो गई। उनके अधिकांश सेवकों का नेपाल तथा भारत के बीच मार्ग में गर्मी के कारण देहान्त हो गया तथा कुछ हताश होकर तिब्बत वापस लौट गए। उनमें से केवल मात्र ग्या-चोन्डुस्-सेङ्गे ही विक्रमशिला महाविहार में पहुँच सके। आचार्य दीपंकरश्रीज्ञान को स्वर्ण मुद्राओं के अभाव में भोट देश में निमन्त्रित करने की उनकी हिम्मत नहीं हुई, इस कारण वे आचार्य को निमन्त्रण न दे सके। इस तरह महानुवादक 'ग्या चोन्डुस्-सेङ्गे' (=वीर्यसिंह) विक्रमशिला में ही अध्ययन करते हुए रह गये।

इस सम्बन्ध में सूचना न पाकर येशे-होद् के उत्साह में कोई कमी नहीं आयी और वे अधिक सोना एकत्रित करने की अभिलाषा से भारत की सीमा पर गए। वहां के मुस्लिम राजा अर्थात् गरलोक ने उन्हें कैद कर लिया। मुस्लिम राजा ने दो शर्तों पर उन्हें रिहा करने का प्रस्ताव रखा, उनमें से पहला, बौद्ध धर्म त्यागकर मुस्लिम धर्म स्वीकार कर लें, दूसरा अपने शरीर के वज़न के बराबर सोना पेश करें। तब येशे-होद ने कहा कि चाहे मेरा प्राण क्यों न चले जाएं, किन्तु बौद्ध धर्म का परित्याग नहीं करूंगा।

बाद में येशे-होद् के छोटे भाई 'जङ-छुब-होद' अर्थात् बोधिप्रभ काफी सोना लेकर अपने भाई को मुस्लिम राजा की कैद से छुड़ाने गए। जब सोना तौला गया तो 'येशे-होद्' के सिर के बराबर सोना कम पड़ गया। जिस कारण उन्हें कैद से रिहा नहीं किया गया और 'जङछुब-होद्' मायूस हो गए, किन्तु उन्हें अपने बड़े भाई से कैदखाने में मिलने की अनुमति दी गई, जहाँ 'येशे-होद्' ने बताया- 'मुझे अपने मरने का कोई दुःख नहीं है। मेरी आयु भी अधिक हो चुकी हैं मैं जीवित रहने पर भी, बौद्ध-शासन का कार्य अधिक नहीं कर पाउँगा, आप इनको एक कोड़ी भी सोना न दें। बल्कि तुम सारा सोना ले जाकर भारत से आचार्य दीपंकरश्रीज्ञान को तिब्बत बुला

सको तो मैं अपने को भाग्यशाली समझूंगा।' तब 'जङ-छुब-होद्' सोना लेकर वापस अपने राज्य लौट गए। इस प्रकार तिब्बत में बौद्ध शासन के पुनरुत्थान के लिए राजा 'येशे-होद्' ने अपने प्राणों की आहुति दे दी। इस तरह मुस्लिम राजा के कैद में ही उनकी मृत्यु हो गयी।

येशे-होद' की इच्छा के अनुसार 'जङ-छुब-होद्' (=बोधिप्रभ) ने लोचावा नगछो-छुलठिम-ग्यलवा' (=शीलजित) को पांच सेवकों एवं सात सौ स्वर्ण मुद्राओं के साथ भारत से आचार्य दीपंकरश्रीज्ञान को आमंत्रित करने हेतु प्रस्थान कराया। भारत पहुँचकर छुलठिम-ग्यलवा विक्रमशिला बौद्ध विहार में अध्ययन कर रहे तिब्बती अनुवादक 'ग्या-चोन्डुस्-सेङ्गे' से मिले। दोनों ने विचार-विमर्श कर यह निर्णय लिया कि फिलहाल इस बात को गुप्त रखा जाए और अध्ययन के बहाने वहीं रहा जाए, क्योंकि यदि यहाँ पता चल गया कि वे आचार्य को आमंत्रित करने आए हैं, तो शायद ही आचार्य को जाने दें। इस प्रकार समय बीतने लगा। लोचावा ग्या-चोन्डुस्-सेङ्गे ने लोचावा नगछो को बताया कि विक्रमशीला में उपस्थित महापण्डितों में से हम भोटवासियों के आचार-विचार के अनुरूप सबसे उपयुक्त आचार्य दीपंकरश्रीज्ञान ही हैं, जो भोटवासियों के लिए अत्यंत कल्याणकारक सिद्ध हो सकते हैं। अतः उन्हें ही निमन्त्रण हेतु प्रयास करना चाहिए। वैसे तो इस विश्वविद्यालय में आचार्य दीपंकरश्रीज्ञान के अतिरिक्त आचार्य शान्तिपाद, नारोपाद, डोम्बीपाद, दीपंकर भद्रपाद, अवधूतीपाद, बोधिभद्र, रत्नभद्र, जेतारि, ललितवज्र, भूमिगर्भ, ज्ञानगर्भ, कल्याण धर्म और शैलेन्द्र आदि 52 से अधिक प्रतिष्ठित महाचार्य भी विद्यमान हैं, जो सभी अपने-अपने विषय के प्रकाण्ड पण्डित हैं।

आचार्य दीपंकरश्रीज्ञान का भोट देश में आमन्त्रण

एक दिन अवसर पाकर बिना किसी भारतीय आचार्य एवं शिष्यों की जानकारी के 'ग्या-चोन्डुस्-सेङ्गे' ने लोचावा 'छुलठिम-ग्यल्वा' को आचार्य दीपंकरश्रीज्ञान से एकांत में भेंट करवाया। उन्होंने आचार्य को एक बड़ा सोने का टुकड़ा तथा चारों तरफ स्वर्ण मुद्राओं से सजा एक 'मण्डल' भेंट किया। तदुपरान्त दोनों ने तिब्बत में बौद्ध धर्म की स्थापना तथा राजा सोङ्चन-गम्पो, ठिसोङ्-देउचन एवं ठि-रलपाचन के काल में हुए बौद्ध धर्म के विकास एवं लङ-दरमा द्वारा सद्धर्म का विनाश, तत्पश्चात पुनः सद्धर्म का पुनरुत्थान आदि का वर्णन करते हुए भोट देश में सद्धर्म की उन्नति एवं ह्रास के बारे में आचार्य को विस्तारपूर्वक बताया। उस समय तिब्बत में बौद्ध धर्म की जो दयनीय स्थिति थी और सद्धर्म के प्रति जो गलत धारणाएं फैल रही थीं, उन सभी समस्याओं से आचार्य को अवगत कराया। इन 'दुष्प्रवृत्तियों को दूर करने के लिए एक भारतीय आचार्य को तिब्बत में बुलाया जाना आवश्यक समझकर 'येशे-होद्' ने जो प्रयास किया तथा जिसके फलस्वरूप उन्हें मुस्लिम राजा ने कैद कर लिया और वहीं उन्होंने अपने प्राण त्याग दिए, इन सब बातों को भी विस्तारपूर्वक आचार्य दीपंकरश्रीज्ञान को बताया गया। साथ ही आचार्य को भी यह संदेश दिया कि येशे-होद् ने किस तरह से सद्धर्म की रक्षा हेतु अपने प्राण न्योछावर किया

और अपने अनुज जङछुब-होद् से कहा कि तिब्बत में बौद्ध शासन की पुनः स्थापना एवं विस्तार के लिए भारत से आपको किसी भी तरह तिब्बत बुलाना परम आवश्यक है। तद्नुसार, हमें महाराज के अनुज जङछुब-होद् ने आपको बुलाने के लिए भेजा है। वे आपके आने की प्रतीक्षा में पलकें बिछाए राह देख रहे हैं। ऐसा निवेदन करते हुए दोनों की आंखें भर आईं और उन्होंने अश्रुपूर्ण नेत्रों से आचार्य से निवेदन किया कि वे सद्धर्म की रक्षा हेतु महाराज का निमंत्रण स्वीकार कर तिब्बत चलने की कृपा करें।

तब आचार्य दीपंकरश्रीज्ञान ने कहा□ भोट के तीनों पूर्व नरेश, लाछेन गोङपा-रबसेल, येशे-होद् आदि ये सभी बोधिसत्व के अवतार मालूम होते हैं । अतः मैं बोधिसत्त्वों की आज्ञा की अवमानना नहीं कर सकता। राजा जङछुब-होद् भी करुणा के पात्र हैं। उन्हें सद्धर्म की सेवा के लिए अपार धन-सम्पत्ति एवं मानव की भी हानि उठानी पडी। मुझे तिब्बतवासियों पर दया आती है, फिर भी मेरे आचार्य रत्नाकरशांति बहुत ही सख्त मिज़ाज के हैं, वे शायद ही मुझे जाने की अनुमति दें। इतना ही नहीं, मैं तो अब वृद्धावस्था की ओर अग्रसर हूँ। विक्रमशिला का भण्डारपाल होने के करण बहुत अधिक कुञ्जियों की जिम्मेदारी का बोझ मुझ पर है और बहुत अधिक कार्य अभी अवशिष्ट हैं। शायद ही मैं तिब्बत जा सकूँ। फिर भी मैं आज रात इष्टदेवी से परीक्षण करुँगा।

उस रात आचार्य ने अपनी इष्ट देवी तारा की स्तुति कर उनसे तिब्बत जाने के बारे में निवेदन किया। तारादेवी ने उन्हें साक्षात् दर्शन दिए और भविष्यवाणी की□ आप के जाने से तिब्बत के लोगों का कल्याण तो होगा। विशेषकर, एक उपासक के द्वारा तुम्हारा सत्त्वार्थ बहुत अधिक सार्थक होगा, किन्तु तुम्हारी आयु कम हो जाएगी। आयु कितनी कम हो जाएगी? ऐसा पूछने पर देवी ने कहा कि□ "यदि तुम भारत में रहोगे तो 92 वर्ष जीवित रहोगे। किन्तु यदि तिब्बत चले गए तो 20 वर्ष आयु कम हो जाएगी अर्थात् तुम 72 वर्ष तक ही जीवित रहोगे।" भविष्यवाणी के आधार पर आचार्य ने यह निर्णय लिया कि यदि मेरी वजह से भोटवासियों का उपकार होता है, तो मैं अवश्य तिब्बत जाऊंगा, चाहे मेरी आयु कम क्यों न हो जाए। दूसरे दिन उन्होंने दोनों भोटवासी लोचावा को बुलाकर तिब्बत जाने की इच्छा व्यक्त की तथा कहा कि मुझे यहां के शेष कार्यों को समाप्त करने में कम से कम डेढ़ वर्ष लग जाएंगे। तब तक तुम दोनों आचार्य रत्नाकरशान्ति के पास अध्ययन करो। वे दोनों आचार्य की इस स्वीकारोक्ति से फूले नहीं समाए और उन्होंने आचार्य से कहा कि आचार्य, यदि आपने तिब्बत जाने का निर्णय कर लिया है तो जितना आप चाहें हम दोनों यहाँ रुकने के लिए तैयार हैं ।

इस दौरान आचार्य दीपंकरश्रीज्ञान ने अपने सेवकों तथा शिष्यों को बोधगया और नेपाल स्थित स्वयंभू चैत्य में पूजा करने हेतु भेजा, ताकि मार्ग में बाधा न आये। एक दिन समय पाकर आचार्य ने अपने गुरु रत्नाकरशान्ति से निवेदन किया कि तिब्बत में बौद्ध धर्म का बहुत ज्यादा

विकास हुआ है तथा वहां के लोगों की बौद्ध धर्म में अगाध श्रद्धा है, किंतु वर्तमान समय में वहां सद्धर्म की स्थिति अच्छी नहीं है। इसलिए मेरी वहां जाने की अभिलाषा है, कहकर विस्तार से जैसा सुना था, वैसा आचार्य रत्नाकरशान्ति को भी बतलाया और पूछा कि क्या आप मुझे वहां जाने की अनुमति देंगे? तब आचार्य रत्नाकरशान्ति ने लोचावा छुलठिम-ग्यलवा से कहा कि तुमने कहा था कि तुम यहां अध्ययन करने आए हो, लेकिन तुम तो यहां हमारे पण्डित को चुराने आए हो, दीपंकरश्रीज्ञान तिब्बत जाने के लिए आग्रह कर रहा है। इतना ही नहीं, तिब्बत में बौद्ध धर्म को पुनः प्रतिष्ठित करने के लिए जो जनहानि एवं धनहानि हुई है, यहां तक कि येशे-होद् ने अपने प्राण तक त्याग दिए, उन सबका वर्णन भी तुमने आचार्य से किया है। इसलिए तुम लोगों पर दया भी आती है, अतः मैं तुम्हें मात्र तीन वर्ष के लिए आचार्य को तिब्बत ले जाने की अनुमति देता हूं। किन्तु याद रहे, तीन वर्ष बाद आचार्य को भारत में वापस लाना होगा ऐसी लोचावा छुलठिम ग्यलवा से प्रतिज्ञा करवाई।

इस तरह 1040 ई. में आचार्य दीपंकरश्रीज्ञान दोनों भोटवासी लोचावा एवं अपने सेवकों सहित भारत से तिब्बत की यात्रा पर निकल पड़े। एक वर्ष उपरांत नेपाल पहुंचे तथा वहां एक वर्ष रहे। तत्कालीन नेपाल नरेश अनन्तकीर्ति आदि श्रद्धालुजनों ने आचार्य को आदरपूर्वक सत्कार किया तथा आचार्य ने उन लोगों को अपेक्षानुसार धर्म प्रवचन दिया। नेपाल के प्रसिद्ध 'थाङ्' विहार का निर्माण इसी समय प्रारंभ किया गया। आचार्य इससे काफी आनन्दित हुए। इसी समय किसी तैर्थिक के काले जादू से महा-अनुवादक लोचावा ग्या-चोन्डुस्-सेङ्गे की नेपाल में मृत्यु हो गयी। आचार्य को गहरा आघात पहुंचा और उन्होंने कहा कि "मेरी जीभ कट गई।" अर्थात् लोचावा संस्कृत के अच्छे ज्ञाता एवं विद्वान थे। फलस्वरूप उन्हें तिब्बत जाने की इच्छा नहीं हुई। इस पर लोचावा नागछो सोच में पड़ गए और उन्होंने उनसे काफी प्रार्थना की। साथ ही, उन्हें इस बात से भी अवगत कराया कि तिब्बत में मा-गेवे-लोडो, रिनछेन-साङ्पो, लेगपे-शेरब आदि अनेक संस्कृत के अच्छे ज्ञाता एवं लोचावा विद्यमान हैं। मैं स्वयं भी कुछ हद तक अनुवादक का कार्य कर सकता हूँ। अतः आप चिन्तित न होएं। आचार्य ने कहा-"ग्या-चोन्डुस-सेङ्गे जैसा कोई नहीं है।" अर्थात वे बहुत अच्छे विद्वान थे।

आचार्य नेपाल से प्रस्थान कर 1042 ई. में तिब्बत के ङरी प्रान्त के गुगे नामक स्थान पर पहुंचे। वहां के राजा जङछुब-होद् ने उनका भव्य स्वागत किया। तदुपरांत वहाँ से 'माङ्युल' तथा थोलिङ विहार पधारे । जङछुब-होद् की बहन आचार्य के दर्शन के लिए आई, जो एक भिक्षुणी थी। उसने आचार्य से निवेदन किया-"मेरा हीरा जैसा एक भाई था, जिसने आपके लिए अपने प्राणों की आहुति दे दी। इस कारण मैं शोक से व्याकुल हूँ।" आज आपके तिब्बत आगमन से मेरे भाई का बलिदान सार्थक हो गया। अतः आज मुझे दुःख से मुक्ति मिल गई। तिब्बत में प्रवास के दौरान बुद्ध शासन के विकास एवं जगत् हित के लिए आप व्यापक कार्य करें, ऐसी मेरी हार्दिक

अभिलाषा है। उस समय जङछुब-होद् ने तिब्बत में विद्यमान ङरी के विद्वानों के बारे में आचार्य से निवेदन किया। उनमें से लगभग 85 वर्ष के एक वयोवृद्ध प्रसिद्ध अनुवादक लोचावा रिनछेन साङ्पो भी ङरी प्रान्त में रहते थे। उन्होंने आचार्य के तिब्बत बुलाए जाने तथा वहाँ पहुँचने के बारे में सुना, किन्तु उनके मन में यह विचार आया कि वे मुझसे अधिक विद्वान नहीं होंगे। फिर भी महाराज जङछुब-होद् के द्वारा आमंत्रित किए जाने तथा शाही मेहमान होने के कारण उन्होंने उनका सत्कार करने का निर्णय किया। उन्होंने आचार्य को 'थोलिङ' विहार में आमंत्रित किया। थोलिङ विहार के चारों मंजिलों की दीवारों पर क्रमशः चारों तन्त्रों के इष्ट देवों के चित्र बने हुए थे। जब आचार्य ने वहां प्रवेश किया तो उन्होंने प्रत्येक तन्त्र के इष्टदेवों की एक-एक श्लोक द्वारा स्तुति की। इस प्रकार चारों तंत्र के देवों की चार श्लोकों द्वारा स्तुति कर आसन पर विराजमान हुए। रिनछेन-साङ्पो ने आचार्य से निवेदन किया कि आपके द्वारा की गई स्तुति की रचना किसने की है? आचार्य ने उत्तर दिया कि यह किसी की रचना नहीं है, यह तो मैंने तत्काल इसी समय रचना कर स्तुति की है। रिनछेन-साङ्पो आश्चर्यचकित होकर सहम गए। तब आचार्य ने उनसे पूछा-आप क्या-क्या जानते हैं? उन्होंने अपने सम्पूर्ण अध्ययन का विवरण संक्षेप में निवेदन किया। तब आचार्य ने बड़े आश्चर्य के साथ कहा कि आप जैसे महाविद्वान पुरुष के होते हुए मुझे तिब्बत आने की क्या आवश्यकता थी। पुनः उन्होंने लोचावा से पूछा कि चारों तन्त्रों के अर्थों को एक में संगृहीत करके एक ही आसन पर एक ही व्यक्ति के द्वारा किस प्रकार अनुष्ठान किया जा सकेगा? लोचावा ने उत्तर दिया□ "प्रत्येक तन्त्र की अपनी व्याख्यानुसार क्रमशः पृथक्-पृथक् अनुष्ठान किया जाना चाहिए। तब आचार्य ने कहा कि महानुवादक जी यहाँ आप मात खा गए । मेरे तिब्बत में आगमन का प्रयोजन सार्थक सिद्ध हुआ है[1]।

तब आचार्य ने चारों तन्त्रों को एक में संगृहीत कर अभ्यास-विधि को संक्षेप में बताया बाद में आचार्य ने **"गुह्यऋद्धि-आदर्श"** की टीका भी रची, जिससे लोचावा अति प्रसन्न हुए। तब उन्होंने सोचा कि ये तो महा आचार्यों से भी महान हैं । कालान्तर में आचार्य एवं लोचावा ने मिलकर **अष्टसाहस्रिका प्रज्ञापारमिता, पञ्चविंशतिसाहस्रिका आलोक-प्रज्ञापारमिता**, **अष्टसाहस्रिका -प्रज्ञापारमितालोक** सहित पूर्व में अनूदित प्रज्ञापारमिता ग्रंथों का भी संशोधन किया।

महाराज जङछुब-होद् ने आचार्य को तिब्बत में बौद्ध धर्म के पूर्व शासन का विकास, लङ-दरमा द्वारा शासन का विनाश, शासन का विप्रलोप, बौद्ध संघ का पुनरुत्थान, परवर्ती शासन में तन्त्र एवं सूत्र का बारे में लोगों के द्वारा फैलाई जा रही भ्रान्तियाँ, एवं गलत धारणाओं से अवगत कराया। इस कारण उन्होंने आचार्य से निवेदन किया कि□ "बहुत अधिक न कहकर बुद्धवचनों

---

1. यह वृतांत गोस्-शुनु-पल की 'नील पुस्तक' में कहा गया है।

को एक में संगृहीत कर अनुष्ठान करने का एक संक्षिप्त उपदेश दें।" हम भोटवासियों को गम्भीर एवं अद्भुत धर्म की आवश्यकता नहीं है। अतः आप कर्म-हेतुफल से सम्बन्धित धर्म का उपदेश करने की कृपा करें। इसके अतिरिक्त, महाराज ने बौद्ध धर्म से संबंधित सूत्र एवं तंत्र से सम्बद्ध दस प्रश्न किए।

आचार्य अत्यन्त प्रसन्न हुए। उन्होंने कहा□ कर्म एवं हेतुफल के अतिरिक्त अन्य कोई गम्भीर धर्म नहीं है। यही सबसे गंभीर धर्म है। अतः सावधानी बरतें। धर्मविरुद्ध, गलत धारणाओं एवं धर्म के विपरीत भ्रांतियों को दूर करने के लिए ग्रंथ की रचना करने के निवेदन को ध्यान में रखकर आचार्य ने 1044 ई. में **"बोधिपथप्रदीप"** नामक प्रसिद्ध ग्रंथ की रचना की, जिसके फलस्वरूप लोगों में बौद्ध धर्म के प्रति जो गलत धारणाएं एवं विप्रतिपत्तियां थीं, वे स्वतः दूर हो गईं।

इस बोधिपथप्रदीप का मुख्य अभिधेय विषय मुख्य रूप से तीन प्रकार के पुरुषों के मुक्तिमार्ग का क्रम है तथा इसमें सूत्र एवं तन्त्र दोनों का समन्वय है। समस्त ग्रंथ महायान के शील, समाधि और प्रज्ञा के तीन विषयों पर आधारित है। यह ग्रंथ तिब्बत में बहुत अधिक लोकप्रिय हुआ।

कालान्तर में इस ग्रंथ को आधार बनाकर तिब्बत के चारों सम्प्रदायों की परम्पराओं में अनेक ग्रंथों की रचनाएं हुई हैं। जैसे□ गेलुग परम्परा में **लमरिम-छेनमो** (=बृहद् मार्गक्रम) तथा **ङगस्-रिम-छेनमो** (=बृहद् वज्रयान मार्गक्रम), साक्य में **थुबपा-गोङ्सेल** (=मुनिमत प्रकाश) एवं **लम-डेस्** (= मार्ग-फल), कार्ग्युद में दग-पो सोनम रिनछेन कृत **थर-ग्यन** (=मोक्ष-अलङ्कार) तथा जिङमा में ज़-पलटुल कृत **कुनजङ्-लामई श्यल-लुङ** (=गुरु समन्तभद्र मुखागम) आदि।

आचार्य अतिश द्वारा रचित, संशोधित एवं अनूदित ग्रन्थों का संक्षिप्त परिचय

आचार्य दीपंकरश्रीज्ञान ने तिब्बत प्रवास के दौरान लगभग सौ से भी अधिक ग्रंथों की रचना की। उनके द्वारा अनूदित एवं संशोधित ग्रन्थों में से कुछ प्रसिद्ध ग्रंथ इस प्रकार हैं□ लोछेन रिनछेन-सङपो के साथ इन्होंने **अभिसमयालंकारदुरवबोधिनी आलोकटीका** का अनुवाद किया। लोच़ावा छुलठिम-ग्यलवा के साथ **'माध्यमिकहृदयकारिका'** एवं उसकी टीका **'तर्कज्वाला'** का अनुवाद किया तथा लोच़ावा ग्या-चोन्डुस् सेङ्गे के साथ **'माध्यमिक रत्नप्रदीप'** का अनुवाद किया।

इन के अतिरिक्त कुछ प्रमुख स्वतंत्र रचनाओं में **'बोधिपथप्रदीप'** एवं उसकी **स्ववृत्ति, सत्यद्वयावतार,** लघु एवं विस्तृत माध्यमिक उपदेश, **'चर्यासंग्रहप्रदीप' बोधिसत्त्वमण्यावलि, महायानसूत्रसमुच्चय** आदि हैं।

आचार्य दीपंकरश्रीज्ञान के तिब्बत में भी अनेक शिष्य हुए, उन में डरी के लोछेन रिनछेन-सांगपो, नागछो-लोच़ावा छुलठिम-ग्यलवा, जङछुब-होद्, च़ङ प्रान्त के गोस्-खुकपा-ल्हाच़े,

योल, छोस, वङ-तन भाई, ल्होडाग के छब ठिछोग, ग्यलवा क्योङ, ग्याचोन्डुस सेङगे, मा गेवे-लोडो, छुलठिम जुङने, खम प्रान्त के जङछुब-रिनछेन, गोनपावा, शेरबदोर्जे, छागदर तोनपा, जमपल लोडो तथा मध्य तिब्बत के खुतोन चोन्डुस्-युङडुङ, ङोग लगपेई शेरब, डोमतोन ग्यलवई-जुङने आदि प्रसिद्ध शिष्य हैं ।

इस प्रकार आचार्य दीपंकरश्रीज्ञान तिब्बत के ङरी में तीन वर्ष, ञेथाङ में नौ वर्ष तथा उ-चाङ में पांच वर्ष रहे । इस दौरान उन्होंने सौभाग्यशाली विनेयजनों को सूत्र एवं तंत्र ग्रंथों का प्रवचन, उपदेश एवं अववाद दिया । आचार्य ने तिब्बत में विलुप्त हो रहे बौद्ध शासन परम्परा का न केवल पुनरुत्थान एवं संवर्धन किया अपितु तिब्बत में बौद्ध धर्म की विप्रतिपत्तियों को चन्द्रमा पर सूर्य के प्रकाश पड़ने की भांति धूमिल किया । उन्होंने विशुद्ध बुद्धशासन की पुनर्स्थापना की । इस जीवन के समस्त विनेयजनों की अभिलाषाओं की पूर्ति होने पर आचार्य को दूसरे लोक में जाने की इच्छा हुई । तदनुसार वे 73 वर्ष की अवस्था में 1054 ई. में तिब्बती पञ्चाङ्ग के अनुसार 9वें माह की 20वीं तिथि को ञेथाङ में महापरिनिर्वाण को प्राप्त हो गए । उनके परिनिर्वाण के उपरांत उनकी अस्थियाँ 'ञेथाङ' के 'नामोछे' में रखी गई । 'ञेथाङ' के 'होद' में उनकी अस्थियों को प्रतिष्ठित कर स्तूप का निर्माण किया गया । इस प्रकार भोट देश के बौद्ध धर्म के इतिहास में 'जङ-छुब-होद' अर्थात् बोधिप्रभ का अमूल्य योगदान रहा है ।

एसोसिएट प्रोफेसर
के.उ.ति.शि.सं., सारनाथ, वाराणसी
मो.नं.- 8009149740

परम पावन दलाई लामा जी का वैज्ञानिक अध्यात्म दर्शन

—डॉ. हरिकेश सिंह—

'दर्शन' स्वयं अपनी विधात्मक प्रक्रिया में 'विज्ञान' है। मीमांसात्मक रूप से सन्नद्ध विद्वान मित्र इस आलेख के शीर्षक 'परम पावन दलाई लामा जी का वैज्ञानिक अध्यात्म दर्शन' से प्रारम्भ में ही असहमत हो सकते हैं। ऐसा होना उचित भी होगा, परन्तु मैंने जानबूझकर, 'वैज्ञानिक अध्यात्म दर्शन' लिखा है, जिसका मूल मंतव्य है वैज्ञानिक अध्यात्म दर्शन की दलाई लामा जी की विगत कुछ वर्षों से लगातार अभिव्यक्त प्रस्थापनाओं एवं उनकी उद्घोषणाओं की समीक्षा। मैंने किसी अन्य के कहे, सुने अथवा लिखे अंश के आधार पर नहीं, अपितु सन् 2000 से अब तक उनके व्याख्यानों और उनकी लिखी पुस्तकों को प्रत्यक्षतः पढ़ने और सुनने के उपरान्त जैसा मैंने अपनी अल्पबुद्धि से समझा है, उसे ही विश्लेषित करके इस लघु आलेख में लिपिबद्ध किया है। यहाँ मेरा यह प्रयास है कि प्रकारान्तर से ही सही, तिब्बत और तिब्बती समाज की वर्तमान स्थिति पर भी कुछ कह सकूँ। इस आलेख की विषयवस्तु को आगे बढ़ाने से पूर्व ही मैं इतना स्पष्ट करना चाहता हूँ कि मैं 'दर्शनशास्त्र' अध्ययन विद्या का न तो प्रत्यक्ष औपचारिक विद्यार्थी रहा हूँ और न ही विद्वान हूँ। एक सामान्य अध्येता की समझ तथा तिब्बत और तिब्बती समाज के प्रति मेरे मन में जो सम्मान है तथा उनके प्रति जो अगाध श्रद्धा। इसी कारण इस विषय पर लिखने का साहस कर सका हूँ। इस प्रकार यदि इस निबन्ध में भावनात्मक अतिरेक परिलक्षित हो तो समीक्षक इसे मेरी अपरिपक्वता मानकर स्वयं क्षुब्ध नहीं होंगे, अपितु मुझे क्षमा करेंगे।

परम पावन दलाई लामा जी के देश और उनके समाज की त्रासदी अपनी तरह की अकेली ही है। दानव प्रवृत्ति वाला चीन जो कभी प्रधानतः बौद्ध देश रहा है, पिछली शताब्दी में हिंसावादी राज्यदर्शन एवं वैचारिकी के प्रभाव में आते ही, सबसे पहले विश्व के सर्वोच्च आध्यात्मिक समाज एवं राष्ट्र तिब्बत को ही अपना शिकार बनाया और इस प्रकार हिमालयी श्रेष्ठतम मानवीय समाज को अद्वितीय पीड़ा पहुँचाते हुए अपने अधीन कर लिया।

आज भी बहुतायत तिब्बती निर्वासित जीवन जीने को विवश हैं। आज भी कुछ ऐसे वरिष्ठ तिब्बती लोग विभिन्न देशों में बस रहे हैं, जिन्होंने उस क्रूर रात को क्रूर दानवी चीन द्वारा किये गये अमानवीय आक्रमण के कारण अपने कुटुम्ब के शेष जीवित परिजनों को वहीं छोड़कर भागकर अपना जीवन बचाने के लिए विवश हुए थे। इनके मानस पटल पर अभी भी वह पीड़ा रह-रह कर अकथ्य-दंश बेधती है। कभी बीसवीं सदी में एक समूचे बौद्ध राष्ट्र को दुनिया का आध्यात्मिक पीठ कहा जा सकता था, तो वह 'तिब्बत' ही था। आज ऐसा श्रेष्ठ राष्ट्र और उसके जन 'शरणार्थी' कहे जा रहे हैं। प्रश्न उठता है- कहाँ गये विश्व के मानवाधिकारवादी जन और कहाँ गये

विश्व मंच ? इसी शीर्षस्थ राष्ट्र और विश्वचेतना के दिव्यस्थल में वर्तमान निर्वासित परमपावन दलाई लामा जी 16 जुलाई 1935 को जन्मे थे, जिनका वास्तविक नाम तेनज़िन ग्यात्सो है। यही तेनज़िन ग्यात्सो जी आज निर्वासित तिब्बती समाज की मुक्ति के आशाकेन्द्र हैं तथा आध्यात्मिक गुरु हैं, जो भारतवर्ष में हिमाचल प्रदेश के धर्मशाला में निवास करते हुए विश्व-शान्ति की स्थापना हेतु 'जय जगत' की अवधारणा का सन्देश दुनिया भर को दे रहे हैं। इन्हें विश्व का सर्वोच्च सम्मान नोबेल पुरस्कार पिछली शताब्दी में 80 के दशक में ही प्राप्त हो चुका है।

मार्च 1959 से अब तक निर्वासित जीवन जी रहे परम पावन दलाई लामा जी निश्चित ही एक अवतारी महागुरु की तरह विश्व कल्याण, विश्वमना मानवता एवं विश्वशान्ति हेतु संकल्पित हैं। उनके मन, वचन और कर्म में अप्रतिम ऐक्य हैं। कभी भी उन्होंने अपनी पीड़ा को आधार बनाकर कुछ नहीं बोला है। ऐसे महान साधक के सम्बोधन के एक-एक शब्द में बौद्धदर्शन की वैज्ञानिक मूल्यपरक दार्शनिकता स्पष्टतः झलकती है। मंगोलिया के महाराजा द्वारा प्रदत्त 'दलाई लामा' उपाधि का हिन्दी भाषा में शाब्दिक अर्थ 'प्रज्ञा का महासागर' होता है। वर्तमान परम पावन का व्यक्तित्व ऐसा ही है। वह दार्शनिकों के दार्शनिक एवं साधकों के साधक हैं। पावनता और पूज्य दलाई लामा जी पर्यायवाची हैं। तिब्बत की भोट परम्परा के परम पुरुष हैं। साधनारत इस महान साधक की मात्र उपस्थिति एक पवित्र आभामण्डल का बोध करा देती है।

'अप्प दीपो भव' के दर्शन से उद्बुद्ध परम पावन दलाई लामा अपने दार्शनिक उत्कृष्ट पड़ाव पर 'जय जगत' और 'वैज्ञानिक आध्यात्मिकता' के प्रति उत्तरोत्तर संकल्पित होते प्रतीत होते हैं। उनके अनुसार 'वैज्ञानिक चिन्तन' या 'वैज्ञानिकता आधृत आध्यात्मिकता' ही 'धर्मनिरपेक्षता' है। विश्वमानवता को वैज्ञानिक आध्यात्मिक दर्शन से समृद्ध बनाने का उनका अभियान निरन्तर चल रहा है। अपने लोगों एवं अपने देश की पीड़ा को सहते हुए कभी भी अपने संकल्प से वह विचलित नहीं हुए और न ही विचलित होते दीखते हैं। यह उनकी विशुद्ध चित्त शक्ति ही है। इस महान अद्भुत विश्व-शान्ति के देवदूत की दार्शनिक प्रस्थापनाओं का विश्लेषण आवश्यक प्रतीत होता है।

परम पावन दलाई लामा जी के नाम में ही भोट भाषा में 'प्रज्ञा का महासमुद्र' का पर्यायवाची अर्थबोध होता है। इस महान चिन्तक ने अपनी साधना का उद्देश्य स्वार्थपरक मोक्ष नहीं, अपितु 'सर्वकल्याण' की सुनिश्चित प्राप्ति को माना है। 'सर्वकल्याण' को ही प्राप्त करने के लिए 'जय जगत' दर्शन की मीमांसा का मूल विश्व के समस्त धर्मशास्त्रों के मन्थन के उपरान्त ठोस तार्किक आधार पर उपसंहारित है। वास्तव में 'वैज्ञानिकता' का आधार वस्तुपरक तार्किक उत्कृष्टता ही है। और जब भी हम तार्किक उत्कृष्टता की मीमांसात्मक यात्रा में होते हैं, तो अपने धर्मशास्त्र अथवा किसी दूसरे के धर्मशास्त्र के प्रति न तो दुराग्रह होता है, और न ही पूर्वाग्रह। दुराग्रह और पूर्वाग्रह से समदूस्थता (या उदासीनता) ही वैज्ञानिकता है। दलाई लामा जी निस्पृह

चिन्तक हैं, और यही कारण है कि वह सच्चे अर्थों में पंथनिरपेक्ष हैं। हाँ, पंथ निरपेक्षता और धर्म निरपेक्षता को वह पर्यायवाची मानते हुए वह 'जय जगत' के दर्शन में केवल मानवजाति के ही 'जय' की बात नहीं कर रहे हैं, अपितु अस्तित्व के तीनों साम्राज्यों, यथा- मानव, जन्तु एवं वनस्पति को समवेत रूप से लेते हैं। वह इसी दर्शन के आज प्रतिपादक एवं प्रणेता ऋषि हैं।

परम पावन दलाई लामा जी ने विश्व के प्रचलित प्रमुख धर्मों के शास्त्रों का गहन अध्ययन किया है तथा सभी धर्मों के धर्मशास्त्रों की उत्कृष्टताओं का निष्कर्षण करते हुए यह निवेदन किया है कि हमें आधुनिक विश्वसमाज के कल्याण के लिए अपने-अपने धर्मशास्त्रों की विषयवस्तुओं का भी वैज्ञानिक विश्लेषण करना चाहिए। वह स्पष्ट कहते हैं कि कोई भी और किसी का भी धर्मशास्त्र मानव द्वारा ही प्रणीत, संकलित एवं सम्पादित है, अतः वह मानवजनित दुर्बलताओं अथवा कालसापेक्ष सीमाओं से मुक्त नहीं हो सकता। अस्तित्व और अस्तित्वबोध कालसापेक्ष होते हैं, अतः दार्शनिक प्रस्थापनाओं का भी परिवर्तनशील होना स्वाभाविक है। उनकी मान्यता है कि अक्षरों, शब्दों एवं सिद्धान्तों के प्रति रूढ़ि अवैज्ञानिक है। सर्वग्राह्यता के लिए उदारता एक अनिवार्य तथ्य है। अतः वस्तुपरक वैज्ञानिक विश्लेषण की विधि का अनुकरण आधुनिक चिन्तकों को अवश्य ही करना चाहिए। रूढ़ियों ने समाजों को तोड़ा है तथा हमें मौलिकता से दूर करते हुए कर्मकाण्डों, बिम्बों, पद्धतियों, प्रतीकों में जकड़ दिया है। विनयशीलता से स्वमुक्ति और सर्वमुक्ति का अभीष्ट प्राप्त होता है। ऐसे में वैज्ञानिक निष्कर्षण के निमित्त प्रणालीबद्ध चिन्तन एवं तार्किक उपसंहार की आदत डालनी ही पड़ेगी।

आदि प्रवर्तकों के धर्मबोधों का लिपीकरण तो उनके तिरोधान होने के बाद ही हुआ होगा। श्रवण परम्परा के आधार पर कालान्तर में लिपीकरण एवं ग्रन्थीकरण हुआ है। ऐसे में अधिकांश धर्मग्रन्थ वास्तव में आदि प्रवर्तक के तत्वबोधानुसार ही हैं, अथवा अर्थविपर्यय हुआ है, इसे भी जाँचना चाहिए, परन्तु ऐसी कट्टर मानसिकता के भी भाष्यकार, टीकाकार, अनुवादक हुए हैं, जिन्होंने अर्थबोध को स्वबोधानुसार ही अगली पीढ़ियों को विभिन्न रूपों में धर्मशास्त्रों को सौंपा है। परम पावन एक विशद् मानसिक वैज्ञानिकता को दृष्टिगत रखते हुए शास्त्र केन्द्रित रूढ़िवादिता से ऊपर उठकर सभी धर्मावलम्बियों का आह्वान करते हैं कि पाण्डुलिपिय समीक्षा करते हुए अद्यतन प्राप्त वैज्ञानिक तथ्यों के आधार पर पुनर्भाषित, आख्यायित एवं सम्प्रेषित करने की नितान्त आवश्यकता है। यह प्रयास 'वैज्ञानिक आध्यात्मिकता' को सुनिश्चित करेगा। उनका यह अभियान कि शास्त्रीयधार्मिकता से वैज्ञानिक आध्यात्मिकता सर्वोपकारी है, समीचीन है तथा वर्तमान विश्वमानवता को आहत करने वाली विषता और विषाणुता का सम्यक् समाधान भी।

'वैज्ञानिक आध्यात्मिकता' ही सर्वहितकारी विवेक है। इसका आधार तत्वमीमांसक की वैज्ञानिक मनस्विता है। आज ज्ञानप्रदायी सभी अभिकरणों, प्रक्रियाओं का मूल लक्ष्य 'वैज्ञानिक मनस्विता' के सृजन का ही है क्योंकि ऐसी ही मनस्विता वाले नागरिक सच्चे विश्वमानव होंगे

तथा विश्व में अशान्ति एवं आक्रमण के सम्पूर्ण निर्मूलीकरण के साधक भी । परम पावन ने भारतीय सनातन बौद्ध, जैन तथा सिक्ख धर्मों की मौलकिताओं के साथ इसाई एवं इस्लाम धर्मों की भी मौलिकताओं को बड़े ही गहन अध्ययन के उपरान्त सर्वमान्य निःश्रेयसता, अभ्युदय, वैज्ञानिक चेतना के ठोस स्तम्भों पर प्रतिष्ठित 'वैज्ञानिक आध्यात्मिकता' की आवश्यकता को ही वर्तमान मानवता की रक्षा के लिए अपरिहार्य बताया है । विश्वमैत्री, विश्वप्रेम एवं विश्वशान्ति के लिए 'वैज्ञानिक आध्यात्मिक' संस्कृति को विकसित करने के लिए ही वे सम्बोधन, उद्बोधन एवं प्रबोधन करते रहते हैं । आज के जगत की समस्त अपूर्णताओं, कलुषों, विपत्तियों, द्वन्द्वों, संघर्षों, दुविधाओं, संकीर्णताओं आदि को सत्याग्रही विवेक द्वारा प्राप्त करने का रामबाण (सर्वहल) 'वैज्ञानिक आध्यात्मिकता' का ही मार्ग है । इनका 'वैज्ञानिक आध्यात्मिकता' का दर्शन ही विश्वमानव समाज के महासंकटों के महासमाधान के रूप में स्वीकारने के योग्य है । इक्कीसवीं शताब्दी की मानवजाति के सर्वमंगल हेतु विश्व के बौद्धिकों का जितना अभिमुखीकरण तथा अनुश्रवण परम पावन दलाई लामा जी ने किया है, वह अप्रतिम है । 'वैज्ञानिक आध्यात्मिकता' को ही स्वीकारने के संकल्प के साथ ही साथ इस महामानव एवं प्रज्ञा, करुणा तथा शील के त्रयी ऋषि को कोटिशः नमन् । 'जय जगत', 'जय वैज्ञानिक आध्यात्मिकता' ।

पूर्व कुलपति
जे.पी. विश्वविद्यालय, छपरा
मो.नं.- 6202213898

बुद्ध के विचार एवं सम्प्रेषण-युक्तियाँ

—दीपंकर—

आज से 2584 वर्ष पूर्व जन्मे भगवान् बुद्ध एक ऐसे स्वतंत्र दार्शनिक थे, जिनके संबंध में जन्म से लेकर निर्वाण तक की अधिकांश घटनाएँ कालक्रम के अनुसार ज्ञात हैं, जैसे जन्म ईसा से 563 वर्ष पूर्व वैशाख पूर्णिमा के दिन कपिलवस्तु नामक स्थान के लुम्बिनी वन (वर्तमान नेपाल) में, 29 वर्ष की अवस्था में गृहत्याग, 35 वर्ष की अवस्था में ज्ञान प्राप्ति तथा सारनाथ में प्रथम धर्मचक्र प्रवर्तन, 80 वर्ष की उम्र अर्थात् ईसा पूर्व 483 ईसवी में कुशीनगर, उ.प्र. में महापरिनिर्वाण की प्राप्ति। सिद्धार्थ, जो बुद्धत्व प्राप्ति के पश्चात् बुद्ध कहलाए, लगभग 45 वर्षों तक विभिन्न स्थानों पर विचरण करते हुए अपने द्वारा अर्जित ज्ञान का लोगों में उपदेश करते रहे। उनके द्वारा प्रवर्तित धर्म को बौद्ध धर्म कहा जाता है जो आज संसार के प्रमुख धर्मों में से एक माना जाता है तथा जिसके अनुयायियों की संख्या 35 करोड़ से भी अधिक है और जो एक समय में पृथ्वी के एक बड़े भू-भाग पर विस्तारित था।

ऐसे समय में, जबकि आज की तरह के संचार माध्यम उपलब्ध नहीं थे, प्रश्न उठता है कि अल्प समय में बुद्ध का ज्ञान पृथ्वी के एक बड़े भू-भाग पर कैसे छा गया? ऐसे समय जब ईश्वर एवं अवतारवाद की परिकल्पना समाज में गहरी पैठ बना चुकी थी, एक अनीश्वरवादी धर्म को उसी समाज में कैसे स्वीकार्यता प्राप्त हुई। गम्भीरता से विचार करने पर निम्न तथ्यों को उत्तर के रूप में संज्ञान में लिया जा सकता है-

1. वैशाख पूर्णिमा के दिन बोधगया में ज्ञान प्राप्त करने के उपरान्त तथागत इस विचार में उलझे हुए थे कि लोकहितकारी यह जो गूढ़ ज्ञान उन्हें प्राप्त हुआ है, उसे कैसे और किन लोगों को प्रदान करें। कारण यह कि अपने-अपने रोजी-रोजगार में लगे हुए लोग अपने काम-धंधों में इतने संलिप्त हैं कि इस तरह की क्लिष्ट एवं गंभीर बातों को सुनने में न तो उनका मन लगेगा, न ही उनके पास समय है, चाहे कितनी ही ये बातें उनके ही कल्याण की क्यों न हों। फलतया उन्होंने यह मन बनाया कि वे एकान्तवास में रहेंगे, चिन्तन-मनन-साधना करेंगे एवं अर्जित ज्ञान का अभ्यास करते हुए शेष जीवन व्यतीत करेंगे। तथागत के इस निश्चय को जानकर ब्रह्मा एवं इन्द्र उनके समीप आये और उनसे यह निवेदन किया कि आपने जो यह लोकहितकारी संबोधि प्राप्त की है, उसे यदि जन-मानस को नहीं प्रदान करेंगे तो उनका कल्याण कैसे होगा ? इस पर तथागत ने उनके समक्ष वही बात रखी, जिसके कारण उन्होंने यह निश्चय लिया था। इसका समाधान करते हुए देवगण द्वारा यह कहा गया- "संसार में तीन तरह के लोग हैं। एक तो वे, जो सांसारिकता में आकण्ठ डूबे हुए हैं। वे इसके अतिरिक्त कुछ और नहीं जानते। दूसरे वे, जो यद्यपि सांसारिकता में डूबे हुए हैं, किन्तु उसकी नश्वरता को समझते हैं और बाहर निकलने का मार्ग तलाश रहे हैं,

और, तीसरे वे जिन्होंने सांसारिक प्रपंचों को जान लिया है, उनका त्याग कर चुके हैं, किन्तु इससे आगे मोक्ष का मार्ग उन्हें सूझ नहीं रहा है। तो ऐसी दूसरी और तीसरी श्रेणी वाले लोगों के लिए आपका सुझाया मार्ग अत्यंत कल्याणकारक सिद्ध हो सकता है। इसलिए उचित यही होगा कि आप अपने द्वारा अर्जित ज्ञान का मानवमात्र के कल्याण हेतु उपदेश के रूप में विस्तार दें।" अतः ज्ञान प्राप्ति के पश्चात् तथागत बुद्ध लगभग 45 वर्षों तक अनवरत चर्या करते हुए, विभिन्न स्थानों पर धर्म का उपदेश करते रहे। इससे पता चलता है कि वे अपनी बातों में कितने दृढ़ थे और उनमें लोककल्याण की भावना कितनी प्रबल थी। **अर्थात् उपदेष्टा का स्वयं अपनी बातों में आस्थावान एवं दृढ़ होना तथा लोककल्याण की भावना से ज्ञानदान के प्रति सतत उत्साहित एवं लगनशील होना अनिवार्य है।**

2. सारनाथ में प्रथम धर्मचक्रप्रवर्तन के पश्चात् वर्षावास समाप्त होने तक बुद्ध के 60 अनुयायी शिष्य हो चुके थे। इन शिष्यों को धर्म के मार्ग का प्रचार करने का सुझाव देते हुए बुद्ध ने कहा-

"चरथ भिक्खवे चारिकं बहुजनहिताय बहुजनसुखाय लोकानुकंपाय अत्थाय हिताय सुखाय देवमनुस्सानं मा एकेन द्वे अगमित्थ देसेथ भिक्खवे धम्मं आदिकल्याणं मज्झेकल्याणं परियोसान कल्याणं सात्थं सब्बजनं केवलं परिपुण्णं परिसुद्धं ब्रह्मचरियं पकासेथ।"

अर्थात् भिक्षुओं! अनेकजनों के हित और सुख के सम्पादन के लिए, देवता और मनुष्यों के हित और सुख-साधन के लिए विचरण करो। एक ही रास्ते पर दो लोग एक साथ मत जाओ। अलग-अलग रास्तों और दिशाओं में जाओ जिससे अधिक से अधिक लोगों से संवाद स्थापित हो सके। वहाँ जाकर प्रारम्भ में कल्याणकारक, मध्य में कल्याणकारक एवं अन्त में भी कल्याणकारक इस धर्म का उपदेश करो। **इस प्रकार बुद्ध ने धर्म के प्रचार के लिए अधिक से अधिक लोगों को प्रेरित किया और यह सुनिश्चित किया कि अधिक से अधिक लोगों तक बातों को सीधा पहुँचाया जा सके।**

3. पूर्ववर्ती धर्मों में धर्म की बातों की स्थापना एवं उनके विस्तार का अधिकार सीमित लोगों के पास संरक्षित था। **बुद्ध ने जात-पाँत एवं लिंग के भेद को मिटाते हुए सभी को धर्म में प्रविष्ट होने की अनुमति प्रदान की** और इसके प्रचार-प्रसार का उत्तरदायित्व सौंपा। उन्होंने बताया-

न जच्चा वसलो होति न जच्चा होति ब्राह्मणो,
कम्मुना वसलो होति, कम्मुना होति ब्राह्मणो ।।

अर्थात्, कोई भी व्यक्ति जन्म से छोटा या बड़ा नहीं होता, व्यक्ति के कर्म ही उसे उच्च या निम्न बनाते हैं।

इस प्रकार हम देखते हैं कि कि तथागत बुद्ध ने विचार सम्प्रेषण के लिए हर वर्ग के अधिक से अधिक लोगों को तैयार किया जिससे ज्यादा से ज्यादा लोगों तक उनकी बातें पहुँच सकें।

4. भगवान् बुद्ध ने भाषाई सीमाओं को भी तोड़ते हुए इस बात की **अनुमति प्रदान की कि उनकी बातों को और धर्म के सिद्धांतों को अन्य लोकभाषाओं, जनभाषाओं में प्रसारित किया जाए।** स्वयं उन्होंने उस समय की क्षेत्र की जन-भाषा 'पालि' को अपनी उपदेश-भाषा बनाया जिससे अधिकांश लोगों तक उनकी बातें आसानी से पहुँच सकें। वह क्षत्रिय राज-परिवार से थे, संस्कृत भाषा की महत्ता एवं उसके सम्मान को अच्छी तरह समझते थे किन्तु उन्हें इस बात की भी भली-भाँति जानकारी थी कि यह भाषा कहीं न कहीं सम्भ्रान्त जनों की भाषा है, विचारों को गूढ़ता से रखे जाने की भाषा है, साहित्य की भाषा है, आमजन की भाषा नहीं। इसलिए उन्होंने पालि, प्राकृत तथा मागधी पर जोर दिया।

   इस प्रकार हम देखते हैं कि बौद्ध धर्म जिन-जिन देशों में गया वहाँ वहाँ के लोगों ने अपनी-अपनी भाषा में धर्म की बातों का अनुवाद कर लिया जिससे अल्प समय में ही इस धर्म का विस्तार इसके उत्पत्ति क्षेत्र से विश्व के लगभग आधे भू-भाग पर हो गया अर्थात् **विचारों का विस्तार भाषायी बन्धनों से मुक्ति की अपेक्षा करता है।**

बुद्ध ने अपने उपदेशों के माध्यम से **मध्यम मार्ग** का प्रतिपादन किया। इसका अर्थ है कि किसी भी प्रकार की अतियों से बचते हुए बीच के जीवन-मार्ग को अपनाना। उन्होंने जहाँ एक तरफ **परमार्थ सत्य** के रूप में इस संसार एवं संसार की सभी वस्तुओं को अनित्य, अनात्म एवं असत् बताया वही दूसरी तरफ सांसारिक गतिविधियों के संचालन हेतु **व्यावहारिक सत्य** के रूप में इनके अस्तित्व को स्वीकारा भी। बुद्ध ने चार आर्यसत्यों को हमारे समक्ष रखा-

1. **दुःख आर्यसत्य-** अर्थात् यह संसार दुःखस्वरूप है। जन्म में, बूढ़े होने में, बीमारी में, मौत में, प्रियतम से दूर होने में, अप्रिय के साथ में, चाहे हुए को न पाने में, सब में दुःख है।
2. **दुःख समुदय आर्यसत्य-** अर्थात् दुःख का कारण है। तृष्णा या चाहत ही दुःख का कारण है। यह तृष्णा भी तीन तरह की है- कामतृष्णा, भवतृष्णा, विभवतृष्णा।
3. **दुक्खनिरोधआर्यसत्य-**अर्थात् दुःख के कारण का निरोध भी है। अर्थात् दुःख के कारणस्वरूप तृष्णा से मुक्ति पाई जा सकती है।
4. **दुक्खनिरोधगामिनी प्रतिपदा आर्यसत्य-**दुःख के निरोध का मार्ग है। यही मार्ग आर्य अष्टांगिक मार्ग कहलाता है। यही निर्वाण का मार्ग है। अष्टाङ्गिक मार्ग के निम्न आठ अङ्ग हैं-
   1. **सम्यक् दृष्टि** : कुशल तथा अकुशल कर्म को भलीभाँति निर्विकल्प रूप से जानना एवं चार आर्य सत्य में विश्वास करना सम्यक् दृष्टि है।

2. **सम्यक् संकल्प** : मानसिक और नैतिक विकास की प्रतिज्ञा करना।
3. **सम्यक् वाक्** : हानिकारक बातें और झूठ, चुगली व कटुवचन न बोलना।
4. **सम्यक् कर्मान्त** : हानिकारक कर्म न करना। पंचशील का पालन करना।
5. **सम्यक् आजीविका** : कोई भी स्पष्टतः या अस्पष्टतः हानिकारक व्यापार न कर शुद्ध आजीविका अपनाना।
6. **सम्यक् व्यायाम** : अच्छे प्रयास से परिश्रम करके अपने आप को सुधारने की कोशिश करना।
7. **सम्यक् स्मृति** : स्पष्ट ज्ञान से देखने की मानसिक योग्यता पाने की कोशिश करना व काय, वेदना, चित्त तथा धर्म के स्वरूप को जानना, उसकी स्मृति बनाये रखना।
8. **सम्यक् समाधि** : श्रुतमयी चित्त व भावनामयी प्रज्ञा के बल पर निर्वाण प्राप्त करना। प्रज्ञा, शील व समाधि का पल्लवित रूप आर्य अष्टाङ्ग मार्ग है।

बुद्ध के पाँच उपदेश हैं, जिन्हें हम पंचशील या पञ्च शिक्षापद का सिद्धांत भी कहते हैं:

- **प्राणातिपात-विरति-** प्राणीमात्र की हिंसा से विरत रहना।
- **अदत्तादान विरति-** चोरी करने या जो दिया नहीं गया है उसको लेने से विरत रहना।
- **काममिथ्याचार विरति-** दुराचार या व्यभिचार से विरत रहना।
- **मृषावाद विरति-** असत्य बोलने से विरत रहना।
- **सुरामैरेय मद्य प्रमाद विरति-** मादक पदार्थों से विरत रहना।

बहुत से लोग बुद्ध के धर्म को निराशावादी (pessimistic) धर्म बताते हैं, लेकिन अगर हम भगवान बुद्ध द्वारा प्रदान किये गये पंचशील सिद्धांत को ही गौर से देखें तो यह जीवन के प्रति सहज दृष्टिकोण का परिचय देता है। यह पंचशील का सिद्धांत, क्या गलत है या क्या सही है की परिभाषा तय नहीं करता बल्कि यह हमें सिखाता है कि अगर हम सचेत रहें और पल-पल की गतिविधियों को गौर से देखें तो हम पायेंगे कि हमारे कुछ कर्म हमको या दूसरों को दु:ख पहुंचाते हैं और कुछ हमें प्रसन्नता का अनुभव भी कराते हैं। यही पाप और पुण्य है।

साथ-ही-साथ बुद्ध का धर्म **कर्मवादी धर्म** है। परिस्थितियों को भाग्य पर न छोड़ते हुए कर्म के द्वारा उन्हें अपने वश में करने की बात बहुत ही सकारात्मक सोच है। कर्म के सिद्धान्त को प्रतिपादित करते हुए उन्होंने बताया है कि कर्म और उसके फल में हेतु-फल का संबंध है। **कर्म स्वयं में चेतन है अर्थात् यह अपने फल को स्वयं सुनिश्चित करता है। फल की कोटि, उसका विस्तार, उसकी मात्रा इत्यादि का विचार एवं निर्णय किये जाने हेतु किसी अन्य दैवीय अस्तित्व की आवश्यकता नहीं है।** इस तरह उन्होंने पूजा-पाठ द्वारा पापकर्मों के परिणाम में परिवर्तन का पूर्ण खंडन किया और **सीधे एवं सरल शब्दों में मनुष्य को मात्र सत्कर्म करने हेतु प्रेरित किया।** सार यह है कि हमारे द्वारा किये गये किसी भी पापकर्म एवं पुण्यकर्म का फल अपने-आप सुनिश्चित हो जाता है, और उसके फल में किसी भी प्रकार के

परिवर्तन किये जाने की गुंजाइश स्वतः ही समाप्त हो जाती है। इस तरह उन्होंने सभी प्रकार के पूजा-पाठ, कर्मकाण्ड, हिंसक यज्ञ-यज्ञादि का एक झटके में निषेध कर **समाज को तत्कालीन धर्मों के आडम्बरों एवं धार्मिक अधिष्ठानों की जकड़न से मुक्त कर दिया और उसे जन्म-जन्मान्तरों में पुण्य कर्मों के संचय किये जाने की सीख दी ताकि वह बुद्धत्व अथवा निर्वाण के मार्ग की ओर अग्रसर हो सके। इसीलिए इस मार्ग को मुक्ति का मार्ग कहा जाता है। बन्धन कुछ और नहीं बल्कि अपनी ही अविद्याजनित एवं संस्कारजनित बेड़ियाँ हैं, जो हमें प्रत्यक्ष के बोध से अवरुद्ध करती हैं। मुक्ति पारलौकिक नहीं अपितु ऐहलौकिक वस्तु है। इन बन्धनों को तोड़ कर जीते जी मुक्ति प्राप्त की जा सकती है अर्थात् प्रत्यक्ष का बोध करने की क्षमता प्राप्त की जा सकती है। सत्य और असत्य के विकल्प से मुक्ति, अच्छे और बुरे के विकल्प से मुक्ति, अर्थात् निर्विकल्प ज्ञान की प्राप्ति, दूसरे शब्दों में, यही निर्वाण है।**

संक्षेप में कहा जाय तो **हमारा सम्प्रेषण तभी सफल होगा जब वह सरल होगा, बोधगम्य होगा, व्यक्ति के अनुकूल होगा, विश्वसनीय होगा एवं सभी तरह से परीक्षण किये जाने के बाद सच्चा जान पड़ेगा।** इसीलिए बुद्ध ने कहा –

तापात् छेदात् च निकषात् सुवर्णमिव पण्डितैः।
परीक्ष्य भिक्षवो ग्राह्यं, मद् वचो न तु गौरवात् ।।

अर्थात्, हे भिक्षुओं! मेरे वचनों को इस गौरव-बोध मात्र से ग्रहण मत करना कि वह मेरे द्वारा कहे गये हैं, बल्कि उनकी उसी तरह परीक्षा करना जैसे एक सुवर्णकार खरे सोने की परीक्षा तपा कर, घिस कर और पीट कर करता है। इतने के पश्चात् यदि सत्य जान पड़े तभी ग्रहण करना।

आज के परिदृश्य को देखते हुए, जिसमें सूचनाओं का सच्चा-झूठा विस्फोट हो रहा है, बुद्ध के द्वारा कही गई बातें एवम् उनके द्वारा धर्म के विस्तार हेतु किये गये उपाय और भी प्रासंगिक हो उठे हैं एवं विद्वद् समाज का यह पुनीत कर्त्तव्य बन गया है कि वह सीधी-सच्ची बातों को सीधे-सच्चे तरीके से लोगों के सामने रखे एवं लोगों को उनके संस्कार-जनित अज्ञान एवं अविद्या से मुक्त करते हुए उनके अन्दर मौजूद बुद्धत्व के बीज को अनावृत करे तथा ज्ञानमार्ग अथवा बुद्धत्व के मार्ग की ओर प्रेरित करे, अर्थात् उसे **अत्तदीपो भव** यानी कि **तुम अपना प्रकाश स्वयं बनो** के विचार का अनुगामी बनाए।

वैयक्तिक सहायक
कुलसचिव कार्यालय
के.उ.ति.शि.सं., सारनाथ, वाराणसी
मो.नं.- 9415600692

बौद्ध दर्शन का ऐतिहासिक महत्त्व

—डॉ० रवि रंजन द्विवेदी—

महात्मा बुद्ध का जीवन स्वयं इस बात का साक्षी है कि वे ज्ञान प्राप्ति के पश्चात् जीवन पर्यन्त लोक मंगल के लिए कार्य करते रहे। यद्यपि इस निवृत्ति प्रधान दर्शन में जो सामाजिक संदर्भ उपस्थित है, वे थोड़े भिन्न प्रकार के अदृश्य है। इसमें मूलतः सामाजिक सम्बन्धों की शुद्धि का प्रयास परिलक्षित होता है। सामाजिक संदर्भ की दृष्टि में इनमें समाज रचना एवं सामाजिक दायित्वों के निर्वहन की अपेक्षा समाज जीवन को दूषित बनाने वाले तत्त्वों का परित्याग करने पर बल दिया गया है। बौद्ध दर्शन के पंचशील का सम्बन्ध अनिवार्यतया हमारे सामाजिक जीवन से है। हिंसा, झूठ, चोरी, व्यभिचार संग्रह में सब सामाजिक जीवन की दुष्प्रवृत्तियाँ है।

बौद्ध दर्शन में सदाचार को शील कहा जाता है। शील का पालन प्रत्येक व्यक्ति के लिए आवश्यक हैं। इस प्रकार बौद्ध दर्शन में लोक मंगल की भावना का स्रोत प्रारम्भ से ही प्रवाहित रहता है। इत्तिवुतक में बुद्ध कहते हैं कि एकान्त ध्यान का संकल्प और प्राणियों के हित का संकल्प लो। महात्मा बुद्ध ने अपने भिक्षुओं को लोकहित का संदेश दिया और कहा कि हमें बुद्धजनों के हित के लिए कार्य करना चाहिए। बौद्ध धर्म की महायान शाखा ने तो लोकमंगल के आदर्श को ही अपनी नैतिकता का प्राण माना। वहाँ तो साधक लोकमंगल के आदर्श की साधना में परम मूल्य निर्वाण की भी उपेक्षा कर देता है, उसे अपने वैयक्तिक निर्वाण में कोई रुचि नहीं रहती है। बौद्धदर्शन की सामाजिक लोकहितकारी दृष्टि का रूप हमें आचार्य शान्ति देव के ग्रन्थ शिक्षा समुच्चय और बोधिचर्यावतार में मिलता है। लोकमंगल के आदर्श को प्रस्तुत करते हुए वे लिखते है, 'अपने सुख को अलग रख और दूसरों के दुःख दूर करने में लगे। दूसरों का सेवक बनकर इस शरीर में जो कुछ है, उसे दूसरे के हित में लगा दे। इस प्रकार बौद्ध दर्शन आत्मार्थ और परमार्थ में कोई भेद नहीं देखता। इतना ही नहीं वह आत्मार्थ को परार्थ के लिए समर्पित करने के लिए भी तत्पर है। लेकिन यह ध्यान रखना होगा कि बौद्ध दर्शन उसके लिए अपनी नैतिकता को, अपने सदाचार को समर्पित करने के लिए नहीं है। कहने का यह अर्थ है कि नैतिकता और सदाचरण की कीमत पर किया गया लोक-कल्याण उसे स्वीकार नहीं है। एक बौद्धक साधक शरीर वाली वेश्या की सेवा तो कर सकता है, लेकिन कामवासना की पूर्ति नहीं कर सकता। किसी भूख से व्याकुल व्यक्ति को अपना भोजन भले ही दे दे, लेकिन उसके लिए चोरी नहीं कर सकता। बौद्ध दर्शन में लोकहित की वही रूप आचरणीय है जो नैतिकता के समस्त कार्यों को लोकहित के लिए समर्पित किया जा सकता है, लेकिन स्वयं नैतिकता को नहीं। बौद्ध दर्शन में लोकहित वही तक आचरणीय है जहाँ तक नैतिकता की परिधि में आता है।

बौद्ध नीति दर्शन में ऐसा लोकहित ही स्वीकार्य है, जिसका व्यक्ति के आध्यात्मिक एवं नैतिक विकास से अविरोध है। यद्यपि बौद्ध दर्शन की हीनयान शाखा स्वहितवादी और महायान शाखा परहितवादी आदर्शों के आधार पर विकसित हुई, तथापि बुद्ध के मौलिक उपदेशों में हमें कहीं भी स्वहित और लोकहित में एकान्तवादिता नहीं दिखाई देती। लोकहित और आत्महित में विरोध और संघर्ष तो तब होता है, जब उनमें से कोई भी नैतिकता का अतिक्रमण करता है। महात्मा बुद्ध का कहना यही था कि यदि आत्महत्या करना है तो वह नैतिकता की सीमा में करो और परहित करना है तो वह भी नैतिकता की सीमा में धर्म की मर्यादा में रहकर करो। कुछ आत्मार्थ और पदार्थ के सम्यक् रूप को जानने पर बल देते हैं। उनके अनुसार यथार्थ दृष्टि से आत्मार्थ और परार्थ में अविरोध है। आत्मार्थ और पदार्थ में विरोध तो उसी स्थिति में दिखाई देता है जब हमारी दृष्टि राग, द्वेष तथा मोह से युक्त होती है। क्योंकि रत और घर का विरोध तो राग और द्वेष में ही है। जहाँ राग-द्वेष नहीं है, वहाँ कौन अपना और कौन पराया? जब मनुष्य राग-द्वेष से ऊपर उठ जाता है तब वहाँ न आत्मार्थ रहता है, न परार्थ, वहाँ तो केवल परमार्थ रहता है।

राग-द्वेष और मोह का अन्त होने पर ही मनुष्य अपने वास्तविक हित को, दूसरों के वास्तविक हित को तथा अपने और दूसरों के वास्तविक या सामाजिक हित को जान सकता है। बुद्ध के अनुसार पहले यह जाना कि अपना और दूसरों का अथवा समाज का वास्तविक कल्याण किसमें है। जो व्यक्ति अपने दूसरों के और समाज के वास्तविक हित को समझे बिना ही लोकहित परहित एवं आत्महित का प्रयास करता है, वह वास्तव में किसी का भी हित नहीं करता है। क्योंकि बौद्ध दर्शन की दृष्टि से तो राग-द्वेष, मोहादि चित्त के मल है और इन यदि जल में गन्दगी है, विकार है, चंचलता है तो वह सत्य का प्रतिबिम्ब करने में कदापि समर्थ नहीं होगा, ठीक दर्शन के इस कथन का सार यही है कि जीवन में जब तक राग-द्वेष और मोह की वृत्तियाँ सक्रिय है, तब तक उदय होता है और जब यह यथार्थ दृष्टि उत्पन्न नहीं होती है। राग-द्वेष का अन्त होने पर ही सच्ची दृष्टि का रह जाता। यद्यपि व्यावहारिक रूप में यह तथ्य सही है कि जहाँ एक ओर हीनयान ने एकांगी साधना और व्यक्ति निष्ठ आचार परम्परा का विकास किया और साधना को अधिकांश रूप से आन्तरिक एवं वैयक्तिक बना दिया, वहीं दूसरी ओर महायान ने भी उसी की प्रतिक्रिया में साधना के वैयक्तिक पक्ष की अपेक्षा कर उसे सामाजिक और बहिर्मुखी बना दिया।

सम्भवतः यहाँ यह प्रश्न उपस्थित हो सकता है कि राग के अभाव में सामाजिक सम्बन्धों को जोड़ने वाला तथा क्या होगा, राग के अभाव में तो सारे सामाजिक एवं व्यावहारिक सम्बन्ध टूट जायेंगे। रागात्मकता ही तो हमें एक दूसरे से जोड़ती है। अतः राग सामाजिक जीवन का एक आवश्यक तत्व है। किन्तु मेरी अपनी विनम्र धारणा में तो तत्व व्यक्ति से या समाज से जोड़ता है, वह राग नहीं, विवेक है। विवेक के आधार पर दायित्व बोध एवं कर्तव्य बोध की जागृत होगी। राग की भाषा अधिकार है, जबकि विवेक की भाषा कर्तव्य की भाषा है। जहाँ केवल की बात

होती है, जहाँ केवल विकृत सामाजिकता होती है। स्वस्थ सामाजिकता अधिकार का नहीं कर्तव्य का बोध कराती है और ऐसी सामाजिकता का आधार विवेक होता है, कर्तव्य बोध होता है। बौद्ध दर्शन ऐसी सामाजिकता दृष्टि को निर्मित करना चाहता है।

बौद्ध दर्शन इस बात पर बल देता है कि संयम के बिना जीवन नहीं चल सकता। सामाजिक जीवन में भी संयम के अभाव में सुखद जीवन की कल्पना नहीं की जा सकती है। सामाजिक जीवन में प्रविष्टि संयम के बिना सम्भव ही नहीं है। व्यक्ति जब तक अपने हितों को मर्यादित नहीं कर सकता और अपनी आकांक्षाओं को सामाजिक हित के लिए बलिदान नहीं कर सकता वह सामाजिक जीवन के अयोग्य है। समाज में शान्ति और समृद्धि तभी संभव है जब उसके सदस्य हितों का नियंत्रण करना सीखे। सामाजिक जीवन में हमें अपने हितों के लिए एक सीमा रेखा निश्चित करनी होती है। हम अपने हित साधन की सीमा वहीं तक बढ़ा सकते है, जहाँ तक एक दूसरे के हित की सीमा प्रारम्भ होती है। समाज में व्यहिक्त अपने स्वार्थ की सिद्धि तभी तक कर सकता है। मात्र यही नहीं वरन हमें अपने हितों के त्याग के लिए भी तैयार होना पड़ता है।

सामाजिक जीवन के आवश्यक तत्व है अनुशासन, सहयोग की भावना और अपने हितों को बलिदान करने की क्षमता। क्या इन सबका आधार संयम नहीं है? परन्तु स्थिति यह है कि संयम के बिना सामाजिक जीवन की कल्पना ही सम्भव नहीं। संयम और मानव जीवन ऐसे घुले मिले हैं कि उनसे परे एक सुव्यवस्थित जीवन की कल्पना सम्भव नहीं है।

महात्मा बुद्ध ने सुधारात्मक आन्दोलन के रूप में बौद्धधर्म को जन्म दिया और उसमें निहित ज्ञान बौद्धदर्शन के नाम से प्रसिद्ध हुआ। बौद्धदर्शन में तप, ब्रह्मचर्य और आर्य सत्य का दर्शन, निर्वाण का साक्षात्कार इत्यादि मंगलमूल बतलाये गये हैं। जिसमें सम्पूर्ण मानव की मानवता समाहित है। यद्यपि बौद्धमत का मूल स्रोत यह सुत्तपिटक है जो पाँच निकायों-दीर्घ, मज्झिम, संयुक्त, अंगूत्तर और खुद्दक के रूप में विभक्त है, परन्तु ध्यान है कि महात्मा बुद्ध ने स्वयं कोई ग्रन्थ नहीं खिा और न अपने अनुवायी शिष्यों को ही अपने उपदेशों को विशिष्ट प्रामाणिक भाषा में स्मरण रखने के लिए ही आदेश दिया। उन्होंने अपना उपदेश प्रचलित लोककल्याण मागधी में दिया ताकि सर्वसाधारण उसे समझ सके। सर्वप्रथम बुद्ध के उपदेशों का संग्रह उनके महापरिनिर्माण बाद राजगृह में सम्पन्न होने वाली प्रथम बौद्ध महासंगीति में हुआ। महात्मा बुद्ध के दर्शन में सार्वभौमिकता उसमें उपनिषद् के वाक्यों का प्रभाव भी दृष्टिगत होता था। अद्वैत वेदान्त की भाँति बौद्धदर्शन जन्म से किसी छोटा या बड़ा नहीं मानता है। इस दर्शन का ज्ञान अत्यन्त व्यावहारिक था, क्योंकि तप, ब्रह्मचर्य, आर्य सत्य दर्शन निर्वाण का साक्षात्कार- इन सभी को मंगलदायक कहा है। रागद्व द्वेष एवं मोह को अमंगलदायक बतलाया है और इनका उनका (दुःख) निरोध बतलाया है।

इस प्रकार स्पष्ट है कि दुःख संसार में सर्वाधिक सत्य है और मानव जीवन का सर्वप्रथम लक्ष्य उससे मुझे प्राप्त करना है। बौद्धदर्शन का द्वितीय आर्य सत्य दुःख का मूल कारण दुःख-समुदाय है महात्मा बुद्ध के अनुसार दुःख का मूल कारण तृष्णा है जो प्राणी को एक दूसरे जन्म चक्र में भरमाती रहती है। तृष्णा पुनर्भव को करने वाली आसक्ति और राग के साथ चलने वाली है। महात्मा बुद्ध तृष्णा के साथ-साथ अविद्या को भी दुःख का मूल कारण स्वीकार किया। अब आप चिन्तन कीजिये ये दोनों जिसके पास हो, उसकी क्या स्थिति होगी। वह व्यक्ति चेतनयुक्त होते हुए भी विवेकशन्यूता की स्थिति में संचरण करता है। सम्प्रति वह भौतिकवादिता को ही यथार्थ बैठता है और उसे सम्पूर्ण जगत सत्य प्रतिभान होने लगता है। शरीर और मन से अपना तादात्मय स्थापित कर लेता है तथा नाना प्रकार के स्वार्थपूर्ण कर्मों में अभिरत होता रहता है। महात्मा बुद्ध स्वयं कहते हैं- हे भिक्षुओं संसार अनादि है। अविद्या से आछन्न और तृष्णा से आबद्ध एक जन्म से दूसरे जन्म को दौड़ते हुए जीवों की मूलकोटि पता नहीं चलती है एतादृश अद्वैतवेदान्ती आचार्य शंकराचार्य ने भी कहा-

पुनरपि जननं पुनरपि मरणं पुनरपि जठरे शयनीयम्।
कृपयाऽपारे पाहि मुरारेः भज गोविन्दं भज गोपाला॥

महात्मा बुद्ध को दुःख का कारण अविद्या से माना है। अविद्या बुराई कैसे उत्पन्न करती है। यदि हम एक बार उत्पत्ति की इस प्रक्रिया को जान लें तो उसका जो फल होता है उससे बचने के राजयोग को हम पकड़ लेंगे। महात्मा बुद्ध स्वयं इसके उदाहरण है और इनका दर्शन संसार तट से निर्वाण के तट तक ले जाने वाला एक सेतु है। यहाँ ध्यातव्य है कि जब राजकुमार सिद्धार्थ तरूण हुए तब वे संसार से कुछ विरक्त तथा अधिक विचारमग्न रहने लगे। इसे देखकर शुद्धोदन डर गये कि कहीं मेरा बच्चा साधुओं के संसर्ग में आकर घर से बेघर न हो जाय। अतः उनके पिता ने कोलिय गणतंत्र की राजकुमारी यशोधरा से विवाह कर दिया। विवाह के कारण सिद्धार्थ कुछ दिन और घर ठहर गये। इसी बीच उन्हें एक पुत्र रत्न की प्राप्ति हुई। महात्मा बुद्ध पुत्र को अपने मार्ग का रोडा (चहु) समझकर राहुल नाम दिया। जगत् से अशान्त राजकुमार गौतम अपने वर्षों तक कोशल और मगध के जंगलों में भटकते रहे। एक दिन इनका आचार्य आराडकलाम से साक्षात्कार हुआ। अराडकलाम ने सिद्धार्थ को ध्यानयोग की दीक्षा दिया। राजकुमार ने ध्यान की 7वीं सीढ़ी अंकिचन आयतन तक अभ्यास कर उसमें श्रेष्ठतम हासिल कर ली। फलतः भोग-विलास, सुख-सुविधा, जन्म, यश, रोग, मृत्यु, दुःख, अपवित्रता इत्यादि से इतने अधिक प्रभावित हुए कि वे अपना ध्यान इस ओर से हटाकर आत्म कल्याण कृते संकल्प लिया। महात्मा बुद्ध के अनुसार अविद्या, संस्कार (कर्म), विज्ञान (चेतना), नामरूप (मन एवं शरीर), षडायतन (पंचेन्द्रिय और मन), स्पर्श (इन्द्रियों और विषयों का सम्यक्) वेदना (इन्द्रियजाल), तृष्णा (इच्छा), उपादान (सांसारिक पदार्थों का राम), भय (अस्तित्व), जाति (संसार में जन्म तथा जरा-मरण ये बाहर

अविद्या दुःख को उत्पन्न करते है) जिसका तृतीय आर्य सत्य से निरोध बतलाया है। तृतीय आर्य सत्य दुःख निरोध से ही निर्वाण की अवस्था प्राप्त होती है- ''निर्वाण भान्तम''

दुःख निरोध किस मार्ग के अनुसरण से किया जाय, इसे बुद्ध ने चतुर्थ आर्य सत्य दुःख निरोध गामिनी प्रतिपद से बतलाया है। इसके लिए महात्मा बुद्ध ने अष्टांगिक मार्ग का दर्शन दिया। यह अष्टांगिक मार्ग मानव की पूर्ण मानवता का द्योतक है। जिसके अन्तर्गत सम्यक् दृष्टि सम्यक् संकल्प, सम्यक् वाणी, सम्यक् कर्मान्त, सम्यक् जीविका, सम्यक् स्मृति, सम्यक् व्याख्याम और सम्यक् समाधि निहित है। महात्मा बुद्ध ने इस अष्टांगिक मार्ग में भी सम्यक् दृष्टि, सम्यक् संकल्प, सम्यक् वाणी को प्रज्ञास्कन्ध, सम्यक् कर्मान्त तथा सम्यक् आजीव को शीलस्कन्ध, सम्यक् व्यायाम, सम्यक् स्मृति तथा सम्यक् समाधि को समाधिस्कन्ध कहा है। महात्मा बुद्ध ने मानव की पूर्ण मानवता रूपी अष्टांगिक मार्ग की सफलता के लिए **10** शील, अहिंसा, सत्य, अस्तेय, अपरिग्रह, ब्रह्मचर्य, असमय भोजन का त्याग, सुगन्धित द्रव्य परित्याग, संगीतादि का त्याग कामिनी-कांचन का त्याग तथा महाशय्या का परित्याग भी बतलाया है। बौद्धदर्शन कर्मवाद की सत्ता को स्वीकार करता है किन्तु वेदी की प्रामाणिकता यज्ञ, बलि इत्यादि में अविश्वास करता है। आत्मा और ईश्वर के अस्तित्व के प्रसंग में महात्मा बुद्ध मौन धारण कर लेते थे, किन्तु निर्वाण की सत्ता को स्वीकार करते थे-

यत्थ आपो च पठवी तेजो वायी न गाधति।
अतो सरा निवत्तन्ति एत्थ वटं च वट्टति॥

ज्ञान प्राप्ति के बाद सिद्धार्थ बुद्ध कहताये तथा निरंजना नदी का तट बोधगया कहलाया।

बुद्ध के गुणों और शक्तियों के आधार पर बौद्ध साहित्य में अनेक नामों से सम्बोधित किया गया। ललित विस्तार में लिखा है कि बुद्ध को ज्ञान प्राप्ति के बाद धर्मोपदेश से अनिच्छा हुई किन्तु संघपति की प्रार्थना पर धर्मोपदेश के लिए तत्पर हुए। बुद्ध ने अपना पहला उपदेश सारनाथ में दिया जिसे बौद्ध ग्रन्थों में चक्र प्रवर्तन कहा गया। बुद्ध ने अपना उपदेश कोशल वैशाली कौशाम्बी एवं अन्य राज्यों में दिया। बुद्ध ने अपना सर्वाधिक उपदेश कोशल देश की राजधानी श्रावस्ती में दिया। श्रावस्ती के शासक बिम्बिसार प्रसेनजित तथा उदयन थे। जो इनके अनुयायी हुए।[6]

बुद्ध ने अपने उपदेश में कहा कि-''भिक्षुगण जन्म भी दुःख है, जरा भी दुःख है, व्याधि भी दुःख है, मरण भी दुःख है, अप्रिय भी दुःख है, इच्छितु वस्तु का न मिलना भी दुःख है। इनके इस संदेश से कहा जा सकता है कि राग-द्वेष के द्वारा उत्पन्न रूप, वेदना, संज्ञा, संस्कार तथा विज्ञान भी दुःख है। इसी तथ्य को दीर्घ निकाय महानिदान सुक्त में कहा गया है कि सर्वम दुखम अर्थात् यह सम्पूर्ण संसार दुःखमय है। जगत के प्रत्ये कार्य प्रत्येक घटना में दुःख की सत्ता बनी हुई है। आज पूरे संसार में तृष्णा, घृणा, ईर्ष्या का दुःख फैला हुआ है प्रेम दया का नाम नहीं है यदि बुद्ध के

दिये गये उपदेशों को पालन करें तो जीवन के दुःखों से छुटकारा पाया जा सकता है और संसार में शान्ति बनी रहेगी।

संदर्भ ग्रन्थ-

1. बौद्धधर्म के विकास का इतिहास, पृ० 72
2. डॉ० एम० हिरियन्ना- भारतीय दर्शन की रूपरेखा, पृ० 150
3. संयुक्तनिकाय, धम्म चक्कपवनत्तनसुत्त, 2/9
4. आचार्य शंकराचार्य अद्वैतवेदान्त।
5. भर्तृहरि वैराग्यशतकम् 31
6. संयुक्त निकाय- धम्मचक्कपवत्तनसुत्त।

अतिथि प्राध्यापक
के.उ.ति.शि.सं., सारनाथ, वाराणसी
मो.नं.- 6390630002

सत्य जीवन के प्रति महात्मा बुद्ध का दृष्टिकोण

—एम.एल. सिंह—

महात्मा बुद्ध द्वारा उद्घाटित सत्य 'आर्य सत्य' के नाम से जाना जाता है। यहाँ आर्य का मतलब श्रेष्ठ है। अर्थात् ये श्रेष्ठ सच्चाइयाँ हैं। महात्मा बुद्ध ने चार सत्य बताये हैं– धर्मज्ञान वस्तुत: चार आर्य सत्यों का ज्ञान ही है। कुशल धर्मों के समग्र रूप को बुद्ध शिष्य चार आर्य सत्यों में ही निहित मानते हैं। बुद्ध के अनुसार चार आर्य सत्य हैं– (1) दुःख आर्य सत्य (2) दुःख समुदय आर्य सत्य (3) दुःख निरोध आर्य सत्य (4) दुःख निरोधगामिनी प्रतिपदा आर्य सत्य।

बुद्ध के अनुसार सम्पूर्ण मानव समाज दुःख के अन्धेरे में जी रहा है। यह सम्पूर्ण समाज ही जन्म-मरण शोक रोग भय निराशा आकांक्षा आदि दुःखों से परिपूर्ण है। इन दुःखों का कारण है क्षणिक वस्तुओं के प्रति आसक्ति अर्थात् तृष्णा। इस आसक्ति का कारण है अविद्या। जब तक वस्तु के वास्तविक स्वरूप का ज्ञान नहीं होगा तब तक आसक्ति से छुटकारा नहीं मिलेगा और दुःखों से मुक्ति पाना असम्भव होगा। तथागत ने स्वयं प्रथम आर्यसत्य की व्याख्या करते हुये कहा है कि चिरकाल तक माता के गर्भ में रहने का दुःख माता के मरने का दुःख, पुत्र के मरने का दुःख कुटुम्ब के मरने का दुःख सहा है, सम्पत्ति के विनाश का दुःख सहा है, रोगी होने का दुःख सहा है। इन सभी प्रकार के दुःखों को सहने वाले संसार में बार-बार जन्म लेकर प्रिय के वियोग एवं अप्रिय के संयोग के कारण आँसू बहाये हैं। इससे पता चलता है कि दुःख सत्य ही तथागत की पहली शिक्षा एवं उनका पहला उपदेश है। यह संसार भव-ज्वाला से प्रदीप्त भवन के समान है। परन्तु मूढ़जन इस स्वरूप को न जानकर ही विविध भोग विलास की सामग्री एकत्रित करते हैं। लेकिन देखते-देखते बालू की भीति की भाँति उसका विनाश हो जाता है। परिश्रम और प्रयास से तैयार की गयी भोग सामग्री सुख न पैदाकर दुःख पैदा करती है। अत: तथागत ने इस संसार में दुःख को ही प्रथम आर्य सत्य माना है।

बुद्ध का प्रथम आर्य सत्य है कि यह संसार दुःख से भरा पड़ा है लेकिन यह अन्तिम सत्य नहीं है। बुद्ध ने दुःख के बारे में भी खोज की। वह कारण ही दूसरा आर्य सत्य है जिसे उन्होंने दुःख समुदय कहा है समुदय का अर्थ है कारण। बिना कारण के कार्य उत्पन्न नहीं होता। दुःख के कारण की खोज हो जाने के बाद दुःख दूर करने की सम्भावना स्वभाविक है। जिस तरह दुःख एक आर्य सत्य है, उसी प्रकार दुःख का कारण दूसरा आर्य सत्य है। तथागत दुःख का कारण तृष्णा को बताते हैं, जिसे वे हमारे दुखों के लिये दोषी ठहराते हैं। हमारी अनेक तृष्णा हमसे अनेक काम करवाती है। लेकिन हम अपनी सभी तृष्णाओं को पूरा नहीं कर सकते। इसलिये दुःख का होना स्वाभाविक है।

तथागत मानते हैं कि दुःख की उत्पत्ति तृष्णा से होती है। यदि विषयों को पाने की प्यास हमारे मन में न हो, हमारे हृदय में न हो तो हम इस संसार में न पड़ें, न दुःख भोगें। तृष्णा सबसे बड़ा बन्धन है जो हमे संसार एवं संसार के जीवों से बाँधे हुये है। धम्मपद का यह कथन है कि जिस प्रकार मकड़ी अपना जाल स्वयं बुनती है और अपने ही जाल में बँधी रहती है। उसी प्रकार संसार के जीवों की भी दशा है।

बौद्ध दर्शन में यह तृष्णा तीन प्रकार की बतायी गयी है –

भवतृष्णा– संसार में जीवित रहने की इच्छा भवतृष्णा कहलाती है। हमारी तृष्णा ने ही इस संसार को उत्पन्न किया है, जो इसकी सत्ता बनाये रखती है।

विभवतृष्णा– उच्छेद प्राप्त करने की तृष्णा विभवतृष्णा है। संसार के नाश की इच्छा उसी प्रकार दुःख उत्पन्न करती है जिस प्रकार उसके शाश्वत होने की इच्छा दुःख उत्पन्न करती है।

कामतृष्णा– इन्द्रिय सुख की इच्छा कामतृष्णा कहलाती है। अर्थात् जो तृष्णा नाना प्रकार के विषयों की कामना करती है।

बौद्ध दर्शन में दुःख के कारण पर बड़ी गहराई से विचार किया गया है। बुद्ध का द्वितीय आर्य सत्य प्रतीत्य समुत्पाद या कारण कार्य सिद्धान्त के नाम से भी जाना जाता है। दुःख की उत्पत्ति सकारण है अर्थात् संसार में कोई भी घटना बिना कारण के नहीं होती। यदि दुःख की सत्ता है तो इसका कारण भी अवश्य है। डॉ. श्यामवृक्ष मौर्य ने लिखा है कि प्रतीत्य समुत्पाद के अनुसार महात्मा बुद्ध किसी विशेष शरीर की उत्पत्ति उसमें अन्तर्निहित वासना के कारण मानते हैं। इसी बात को आधुनिक काल में फ्रान्स के सुप्रसिद्ध दार्शनिक बर्गसॉ (Bergson) भी किसी वस्तु में विकास उसमें अन्तर्निहित शक्ति की प्रेरणा से मानते हैं। बुद्ध और वर्गसॉ दोनों कार्य कारण के नियम को प्रतिपादित करते हुये संसार की परिवर्तनशीलता को मानते हैं।[1]

बौद्ध दर्शन में तृतीय आर्य सत्य दुःख निरोध या निर्वाण के नाम से जाना जाता है। निर्वाण जीवन का सर्वोच्च लक्ष्य है। निर्वाण का अर्थ न निष्क्रियता है न जीवन का अन्त। इसीलिये भगवान बुद्ध निर्वाण प्राप्ति के बाद निष्क्रिय न होकर अपार करुणा से सम्पन्न अन्य लोगों के दुःख निवारण के लिये धर्मोपदेश करते हैं। कभी-कभी निर्वाण का अर्थ जीवन का अन्त समझ लिया जाता है। किन्तु इसमें जीवन का अन्त न होकर अविद्या और दुःख का अन्त होता है। यदि जीवन का अन्त होता तो निर्वाण प्राप्ति के बाद महात्मा बुद्ध धर्म का प्रचार और मानव सेवा कैसे करते।

निर्वाण के बाद मनुष्य कर्म बन्धन में नहीं फसता है। निर्वाण की प्राप्ति जीवन के रहते ही होती है। निर्वाण का स्वरूप वर्णनातीत है। निर्वाण से जन्म मरणादि दुखों से मुक्ति और

---

1. डॉ. श्यामवृक्ष मौर्य, बौद्ध धर्म एवं दलित चेतना; सत्यम् पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली, पृ. 43

परमशान्ति की प्राप्ति होती है। भरत सिंह उपाध्याय ने लिखा है कि निर्वाण अमानुषी राते हैं जो धर्म को सम्यक् दर्शन करने से उत्पन्न होता है वह निर्विषय मन का आनन्द है। ऐसा सुख है जो निरामिष है आलम्बन की अपेक्षा से रहित है। निर्वाण बुद्ध शासन का सार है। वह चित्त की मुक्ति है। निर्वाण राग द्वेष एवं मोह का क्षय है। निर्वाण शिव पद है, निर्वाण जन्म जीवन मरण और शोक से विमुक्ति है।[1]

संयुक्त निकाय में कहा गया है कि इच्छाओं के कारण मनुष्य बन्धन में रहता है। इच्छा पर विजय पाने के बाद वह मुक्त हो जाता है। यही मुक्ति निर्वाण है।

बौद्ध दर्शन में चतुर्थ आर्य सत्य–

दुःख निरोध मार्ग या निर्वाण मार्ग कहलाता है। चतुर्थ आर्य सत्य के रूप में जो निर्वाण मार्ग है, जिसे अष्टांगिक मार्ग कहा जाता है। क्योंकि इसके आठ अंग हैं जो बौद्ध धर्म के सार हैं – ये अंग निम्नलिखित हैं–

1. सम्यक् दृष्टि–

अविद्या के कारण हम मिथ्या दृष्टि से अनित्य को नित्य, दुःखद को सुखद, अनात्म को आत्मरूप मान बैठे हैं। इस मिथ्या दृष्टि को त्यागकर वस्तु के यथार्थ स्वरूप पर ध्यान रखना ही सम्यक् दृष्टि है। सम्यक् दृष्टि का अर्थ बुद्ध के चार आर्य सत्यों का यथार्थ ज्ञान है। इन चारों का अर्थ बुद्ध के चार आर्य सत्यों का यथार्थ ज्ञान है। इन चार आर्य सत्यों का ज्ञान ही मानव को निर्वाण की ओर ले जाता है। अत: दार्शनिक विषयों के चिन्तन के बजाय निर्वाण हेतु बुद्ध के चार आर्य सत्यों का ज्ञान आवश्यक है।

2. सम्यक् संकल्प–

सम्यक् दृष्टि रखने से ही हम अपनी आध्यात्मिक यात्रा आगे नहीं बढ़ा सकते। उसके लिये साधक को सांसारिक विषयों के प्रति आसक्ति, दूसरों के प्रति विद्वेष और हिंसा का परित्याग करने का भी दृढ़ निश्चय करना चाहिये। इसी का नाम सम्यक् संकल्प है।

3. सम्यक् वाक्–

सम्यक् संकल्प केवल मानसिक ही नहीं होना चाहिये बल्कि उसे आचरण में भी उतारना चाहिये। सर्वप्रथम साधक को अपने वचन पर नियंत्रण रखना चाहिये। अर्थात् साधक को मिथ्यावादिता, निन्दा, अप्रिय वचन तथा वाचालता से बचना चाहिये। इसको सम्यक् वाक् कहा गया है।

---

1. भरत सिहं उपाध्याय, बौद्ध दर्शन तथा अन्य भारतीय दर्शन; मोतीलाल बनारसीदास, वाराणसी, पृ. 489

4. सम्यक् कर्मान्त–

सम्यक् संकल्प का आचरण केवल वचन में न होकर साधक को अपने कार्यों में भी आचरित करना चाहिये। अकुशल कर्मों से इसमें बचना पड़ता है। अहिंसा अस्तेय और इन्द्रिय संयम ही सम्यक् कर्मान्त है।

5. सम्यगाजीव–

बुरे वचन तथा कर्म के परित्याग के साथ-साथ मनुष्य को शुद्ध उपाय के साथ जीविकोपार्जन करना चाहिये। इसमें विष, मद्य, मांस, शस्त्र आदि का व्यापार वर्जित है तथा वंचना से प्राप्त धन जीविकोपार्जन के लिये उचित मार्ग का अनुसरण तथा निषिद्ध मार्ग का परित्याग करके सम्यक् संकल्प को सुदृढ़ करना चाहिये। व्यक्ति के इस प्रकार के व्यवहार को सम्यगाजीव कहा जाता है।

6. सम्यक् व्यायाम–

उपर्युक्त साधनों का अभ्यास करने के बाद भी सम्भव है पुराने दृढ़मूल कुसंस्कारों के कारण मनुष्य सम्यक् मार्ग से स्खलित हो जायँ और उसके मन में नये-नये बुरे भावों की उत्पत्ति हो। इसलिये व्यक्ति को निरन्तर प्रयास करना चाहिये कि पुराने बुरे भाव नष्ट हो जाँय और नये बुरे भाव मन में न आवें। चूँकि मन कभी विचारों से खाली नहीं रहता है। इसलिये मन को अच्छे विचारों से पूर्ण रखना चाहिये और अशुभ विचारों को मन में धारण की निरन्तर इच्छा नहीं करनी चाहिये। उपर्युक्त प्रकार के प्रयत्नों को सम्यग् व्यायाम कहा जाता है। साधना में आगे बढ़े हुये लोगों के लिये भी सम्यग् व्यायाम आवश्यक होता है क्योंकि थोड़ा प्रयास ढीला होने पर स्खलित होने की सम्भावना बनी रहती है।

7. सम्यक् स्मृति–

यह शारीरिक तथा मानसिक योग्य वस्तुओं एवं काम, मोह तथा लोभ आदि भावों की अनित्यता और अशुचिता की निरन्तर भावना को स्मरण करते रहना चाहिये। इससे व्यक्ति में वस्तुओं के प्रति आसक्ति नहीं उत्पन्न होगी और उनके नष्ट होने पर हमको कष्ट नहीं होगा। इस प्रकार वस्तु के यथार्थ ज्ञान के स्मरण मात्र से विषयासक्ति दूर करने को बौद्ध दर्शन में सम्यक् स्मृति कहा जाता है। इससे काय, चित्त, धर्म व वेदना के स्वरूप को हमेशा स्मृति में रखना पड़ेगा।

8. सम्यक् समाधि–

उपर्युक्त सातों नियमों का पालन करते हुये मनुष्य अपनी बुरी प्रवृत्तियों को दूर कर वह समाधि अवस्था में प्रवेश करने के योग्य हो जाता है। और समाधि की चार अवस्थाओं को पार करते हुये मोक्ष को प्राप्त कर लेता है।

समाधि की चार अवस्थाएँ निम्नवत् हैं –

प्रथम अवस्था–

इस अवस्था में साधक सर्व प्रथम अपने शान्त चित्त से आर्य सत्यों पर विचार करता है। विरक्ति तथा शुद्ध विचार के कारण वह अपूर्व आनन्द तथा शान्ति का अनुभव करता है। यह समाधि की प्रथम अवस्था है।

द्वितीय अवस्था–

समाधि की इस अवस्था में सभी सन्देह दूर हो जाते हैं। आर्य सत्यों के प्रति श्रद्धा बढ़ जाती है। और विचार अनावाश्यक प्रतीत होने लगते हैं। प्रगाढ़ चिन्तन के कारण चित्त शान्ति तथा स्थिरता की प्राप्ति करता है साथ में शान्ति एवं आनन्द का ज्ञान भी बना रहता है।

तृतीय अवस्था–

समाधि की इस अवस्था में मन को आनन्द और शान्ति से हटाकर एक उपेक्षा का भाव लाने का प्रयास किया जाता है। इस प्रयास से चित्त में साम्य अवस्था के साथ-साथ दैहिक सुख का भी बोध होता है। इन दोनों बोधों के साथ चित्त में आनन्द के प्रति उदासीनता आ जाती है।

चौथी अवस्था–

समाधि की इस अन्तिम अवस्था में चित्त में शान्ति दैहिक सुखों एवं आनन्द का कोई भान नहीं रहता है। चितवृत्ति का पूर्ण निरोध हो जाता है। इस अवस्था में पूर्ण शान्ति की प्राप्ति हो जाती है जिसे प्रज्ञा कहा गया है। प्रज्ञा से पूर्व समाधि और समाधि से पूर्व शील का महत्व है। शील से समाधि और समाधि से प्रज्ञा दृढ़ होती है।

इसी प्रकार चतुरार्य सत्य बुद्ध शासन के मूल उपादान हैं। इन्हीं के द्वारा भगवान बुद्ध साधकों को उच्च मानसिक स्थिति में उठाया करते थे। चतुरार्य सत्यों में आर्य अष्टांगिक मार्ग और प्रतीत्य समुत्पाद दोनों अन्तर्भावित है।

प्रतीत्य समुत्पाद में प्रतीत्य का अर्थ है अपेक्षा रखकर या निर्भर अथवा आश्रित रह कर और समुत्पाद का अर्थ है उत्पत्ति। इस प्रकार शाब्दिक उत्पत्ति के अनुसार प्रतीत्य समुत्पाद का अर्थ हुआ एक ऐसी विचारधारा जिसमें कार्य की उत्पत्ति अपने कारण पर निर्भर करती है। अर्थात् कारण के होने पर कार्य की उत्पत्ति होती है और कारण के न होने पर कार्य की उत्पत्ति नहीं होती। महात्मा बुद्ध के अनुसार संसार दुःखपूर्ण है और इस दुःख का मूल कारण अविद्या अर्थात् वस्तु के यथार्थ स्वरूप को न समझना और उसके गलत स्वरूप से मोह उत्पन्न हो जाना।

जो लोग प्रतीत्य समुत्पाद को समझते हैं वह वस्तुओं के यथार्थ स्वरूप को समझते हैं और वस्तु के यथार्थ स्वरूप को समझने का अर्थ अविद्या से ग्रसित न होना और जो अविद्या से ग्रसित नहीं होगा वह जरा मरण के दुःख से मुक्ति पायेगा। जो प्रतीत्य समुत्पाद को नहीं समझता है वह

वस्तु के यथार्थ स्वरूप को नहीं समझने के कारण अविद्या ग्रसित होगा और अविद्या ग्रसित होने से बार-बार जरा मरण को प्राप्त करता है, वहीं अनेकानेक सांसारिक दुखों को भोगता है। प्रतीत्य समुत्पाद को समझकर ही हम बुद्ध की दृष्टि से संसार को देख सकते हैं। इस प्रकार प्रतीत्य समुत्पाद बौद्ध दर्शन का केन्द्रीय सिद्धान्त है जिसके चारों तरफ पूरा बौद्ध दर्शन चक्कर लगाता है।

इस प्रकार बुद्ध की दृष्टि में सत्य ईश्वर नहीं अपितु मनुष्य का दुःख संसार है जो समाज की सारी समस्याओं का कारण है। बुद्ध के बताये हुये मार्ग का अनुसरण करके ही दुःख निरोध रूपी सत्य को अच्छी तरह समझा जा सकता है। अर्थात् प्राप्त किया जा सकता है। वास्तविक सत्य निर्वाण में छिपा हुआ है जिसे प्राप्त करने का एकमात्र उपाय अष्टांगिक मार्ग एवं प्रतीत्य समुत्पाद को अच्छी तरह समझना है। यहाँ बुद्ध ईश्वरवादियों की तरह मिथ्या लोक में विचरण करने के बजाय मनुष्य और समाज की वास्तविक समस्याओं के मूल में जाने का आग्रह करते हैं। दुःख संसार से बाहर निकल कर स्वतंत्र एवं मुक्त जीवन जीने का रास्ता दिखाते हैं।

वरिष्ठ सहायक
के.उ.ति.शि.सं., सारनाथ, वाराणसी
मो.नं.- 9198241794

महावंस - तीन संगीतियाँ

—विरेन्द्र कुमार—

यह लेख मुख्यता पालि साहित्य के सुप्रसिद्ध ग्रंथ महावंस (महान राजाओं का इतिहास) पर आधारित है। इस ग्रंथ में सिंहल (श्रीलंका) के राजाओं का वर्णन है। इस ग्रंथ में तथागत बुद्ध के लंका में आगमन तथा तीनों संगीतियों का वर्णन है।

द्वितीय बौद्ध संगीति तथागत बुद्ध के महापरिनिर्वाण के 100 वर्ष पश्चात् ईसा पूर्व 443 में हुई। चुल्लवग्ग, दीपवंस, महावंस, सासनवंस, महाबोधिवंस इन ग्रंथों में इसी काल और द्वितीय संगीति का उल्लेख है, इस संगीति के विषय में आचार्यों के मध्य मत-भेद है। द्वितीय संगीति के अध्यक्ष स्थविर रेवत थेर थे, और इसके राजा कालाशोक के काल में 700 भिक्षुओं द्वारा संगायन किया गया। इस संगीति का विनय पिटक के चुल्लवग्ग में सत्तसतिकाक्खन्धकं नाम से उल्लेख किया गया है। इसे (सप्तशतिका) कहकर भी उल्लेख किया गया है। द्वितीय संगीति का मुख्य कारण वज्जिपुत्र (वैशाली के भिक्खु) के द्वारा 10 वत्थुनि (विनय के विरुद्ध नियम) का पालन करना है।

दस वत्थूनि

प्रथम संगीतिकारों ने श्रद्धा और निष्ठा के साथ बुद्ध वचन का संगायन कर उसका एक सुव्यवस्थित रूप प्रस्तुत किया। उन 500 अर्हतों ने सत् प्रयत्नों से लोगों के सामने त्रिपिटक के रूप में बुद्ध वचन को स्थापित किया। सभी प्रसन्न थे सबके मन में आनंद था। उसके सामने अतुल्य रत्न समान बुद्धवचन था। उन्होंने श्रद्धा पूर्वक 100 वर्षों तक पालन पोषण किया। उस में कहीं भी किसी प्रकार की विकृति नहीं आई। परंतु मनुष्य के परिवर्तित आचरणों के कारण भगवान बुद्ध के सहापरिनिर्वाण के एक 100 वर्ष बाद वैशाली के वज्जिपुत्र भिक्खुओं ने विनय के विरुद्ध 10 वत्थुनि (नियमों) का आचरण करना प्रारंभ किया। यह आचरण विनय के विपरीत था, पर उन्होंने इसे मान कर उसका जीवन में प्रयोग करना शुरू किया।

तदा वेसालिया भिक्खू अनेके वज्जिपुत्तका।
सिङ्गलोणं द्वङ्गुलं च तथा गामन्तरं पि च ॥
आवासानुमताचिण्णममथितं जलोगि च।
निसीदनं अदसकं जातरूपादिकं इति ॥
दस वत्थूनि दीपेसुं कप्पन्ती ति अलज्जिनो।
तं सुत्वान यसत्थेरो चरं वज्जीसु चारिकं ॥

1. **सिङ्गिलोणकप्प -** भिक्षा के समय स्वाद के लिए सिंह की खाल में नमक ले जाना।

2. **द्वङ्गुलकप्प -** सूर्य के दो अंगुल ढलने के बाद भोजन करना, अर्थात दोपहर के बाद भोजन करना।
3. **गामान्तरकप्प -** एक ग्राम में भिक्षाटन करने के बाद दूसरे ग्राम में भिक्षा के लिए जाना।
4. **आवासकप्प -** एक उपोसथागार (आवास घर) में न रहकर पृथक् आवासों में रहना।
5. **अनुमतिकप्प -** भिक्षु संघ के काम के लिए दूर से आए हुए भिक्षुओं को विलंब होने पर संघ में सम्मिलित होने की अनुमति न देना। (उपोसथ के लिये पृथक् संघ बनाने की अनुमति देना)
6. **आचिण्णकप्प -** बुद्धवचनों की अपेक्षा गुरु परंपरा को अधिक महत्व देना।
7. **अमथितकप्प -** भोजन ग्रहण करने के बाद दूध और दही का सेवन करना।
8. **जलोगिकप्प -** जल पीने के नाम पर सुरा (ताडी) का पान करना।
9. **अदसकनिसीदनकप्प -** बिना किनारे के आसन पर बैठना अर्थात् जिसकी लंबाई तथा चौड़ाई की सीमा निर्धारित न हो।
10. **जातरूपरजतकप्प** – सोना, चांदी, रुपये आदि ग्रहण करना।

वैशाली के निर्लज्ज भिक्षुओं के बारे में यह सुनकर यश चारिका करने के लिए वैशाली में गए उन्होंने मार्ग पर देखा कि वज्जीपुत्र भिक्खु उपोसथ के दिन जलभरी कांसे की थाली सामने रखकर गृहस्थों से संघ के लिए कांस्य आदि के सिक्के मांग रहे थे। यश ने ऐसे कार्य को संघ के ऊपर राहु जैसे ग्रह का प्रकोप समझा। यश ने वहां के उपासकों को यह कार्य धर्म के प्रतिकूल बताने पर वज्जी पुत्र भिक्षुओं ने यश को क्षमा याचना का दंड दिया। दूतों द्वारा इस घटना की खबर सुनकर 60,000 पश्चिम वासी एवं 80,000 अवन्ति वासी क्षीणास्रवभिक्षु अहोगंग पर्वत पर आ पहुंचे। इस तरह वहां पर अन्य भिक्षु भी एकत्रित हो गए तथा उनकी संख्या 11,90,000 हो गई तथा वे सभी भिक्षु रेवत स्थविर के पास गए और यश ने वज्जिपुत्रकों के द्वारा 10 वत्थुनि के विषय में रेवत थेर से कहा तथा रेवत थेर ने उन्हें उन बातों को धर्म के विरुद्ध कह दिया। वज्जिपुत्र भी अपने मत को लेकर रेवत स्थविर के पास गए परन्तु रेवत स्थविर ने उन्हें स्वीकृति नहीं दी। तत्पश्चात् वज्जिपुत्र भिक्खु ने वैशाली लौट कर महाराज काल अशोक के समक्ष जाकर धर्म वादी भिक्षुओं के बारे में मिथ्या सूचना देते हुए राजा कालाशोक से कहा और कालाशोक ने अपने सेनापति को उन्हें रोकने का आदेश दिया। उसी रात कालशोक को एक स्वप्न आया कि वह नरक योनि में पैदा हो गए हैं। वह अत्यंत भयभीत हो जाते हैं। इस स्वप्न को दिव्य दृष्टि से जानकर नंदा थेरी अपने भ्राता कालाशोक के समक्ष आकर उन्हें धर्म वादी भिक्षुओं का साथ देने पर आप का कल्याण होगा, ऐसा कहती है। तत्पश्चात् इस घटना को पूर्णतया समझकर राजा कालाशोक ने धर्म का पक्ष लेना उचित समझा।

उधर रेवतथेर से 1190000 भिक्खुओं ने निवेदन किया कि आप इस विवाद को किसी तरह शांत करें तथा रेवतस्थविर ने निर्णय किया कि वे वैशाली में धम्मसंगायन करेंगे ।

वैशाली में भालूकाराम नामक विहार को संगीति के लिए उचित समझकर राजा कालाशोक के नेतृत्व में राजा से भिक्षुओं के लिए उचित आवास तथा सभी उपयुक्त सामग्री का प्रबंध कराया। उस संगीति में 700 अर्हतों ने भाग लिया तथा उनमें से प्रमुख 8 थे 4 प्राचीनक एवं 4 पावेयक (पश्चिम) । प्राचीनक की तरफ से चुने गए- सर्वगामी, साल्ह, क्षुद्रशोभित, तथा वृषभगामिक । पावेयक से- रेवतस्थविर, काकण्डक द्विजपुत्र यश, शाणवासी सम्भूत स्थविर, सुमन। (ये 8 भिक्षु भगवान बुद्ध कालीन थे- सर्वकामी, साढ़, रेवत, क्षुद्रशोभित, यश एवं सम्भूत ये 6 महास्थविर आनन्द के शिष्य थे तथा वृषभगामिक, सुमन ये दोनों स्थविर अनुरूद्ध के शिष्य थे।) इन आठ भिक्खुओं की समिति के सामने सभी विनय विरुद्ध नियम रखे गए। दोनों पक्षों ने उन पर विचार किया कि ये सभी कार्य विनय के विरुद्ध हैं इस निर्णय को सबने सुना और सभी लोगों ने स्वीकार कर लिया। इसके बाद सभापति रेवत स्थविर ने इस सभा में 10 वत्थुनि के ऊपर संघ का निर्णय सुना दिया।

अंत में उन्होंने वज्जिपुत्तक भिक्खुओं का संघ से निष्कासन किया। इसके उपरांत स्थविर रेवत ने बुद्ध वचन मे आने वाली विपत्तियों को भी देखा तथा ऐसा देख उन्होंने समस्त बुद्ध वचनों के संगायन का निर्णय लिया 700 भिक्षुओं की सभा हुई एवं सब ने मिलकर पूर्व की भांति बुद्ध वचन का संगायन किया, यह कार्य 8 महीनों में सम्पन्न हुआ। रेवतस्थविर की प्रधानता में और राजा कालाशोक के संरक्षण में 700 भिक्षुओं ने वैशाली के भालूकाराम में द्वितीय संगीति की सभा संपन्न की एवं सुगत का शासन पुन: सुदृढ़ रूप से स्थापित किया गया।

छात्र (आचार्य, द्वितीय)
के.उ.ति.शि.सं., सारनाथ, वाराणसी
मो.नं.- 7275893961

बौद्ध संगीति पर थेरवादी और महायानी का मतभेद

—सिद्धार्थ नेगी—

नमो तस्स भगवतो अरहतो सम्मासम्मबुद्धस्स

बौद्ध धर्म की शुरूआत तथागत बुद्ध से हुई है । बुद्ध ने अपना सम्पूर्ण जीवन बहुजन हिताय, बहुजन सुखाय के लिए समर्पित किया । तथागत बुद्ध ने 45 वर्षों तक गाँवों-गाँवों में जाकर लोगों को सुख का मार्ग दिखाया और लोगों को अपना दीपक स्वयं बनने के लिए प्रेरित किया । तथागत के समय जम्बूद्वीप बौद्धमय हो गया था । बुद्ध के समय में सभी भिक्षु स्मृतिमान्, बहुश्रुत एवं अनेक गुणों से सम्पन्न थे । हम देखते हैं कि बहुत सी बौद्ध संगीतियों का वर्णन किया गया है । संगीति का अर्थ क्या है ? किसे संगीति कहा जाता है? संगीति के अर्थ के सन्दर्भ में प्रज्ञापारमिताहृदयसूत्र व्याख्या स्फुटार्था टीका में ऐसा कहा है (1) "संगायन अर्थात् अर्हतों एवं आचार्यों का एकत्रित होकर सामूहिक रूप से बैठकर पाठ करना, जैसे आजकल के विद्वान एकत्रित होकर एक साथ बैठकर अपना-अपना निबंध पढते हैं और उस पर चर्चा होती है, वैसे ही बुद्ध के वचनों का अर्हत् एवं आचार्य पाठ करते थे । यदि पाठ में किसी प्रकार का प्रक्षेप (जोड़ना) या छूट जाना होता था तो अन्य अर्हत् एवं आचार्यगण उसको स्पष्ट करते थे । जब सभी उस पाठ का अनुमोदन करते थे तो वह संगीति पूर्ण मानी जाती थी ।" मेरा मानना है कि संगीति वह है जिसमें विशेष ज्ञान से सम्पन्न लोगों की एक परिषत् बुलाई जाती है और विचारों का आदान-प्रदान करके उसे सही रूप से संगृहीत किया जाता है । बौद्धों के दो मत हैं- महायान एवं थेरवाद । महायान में तीन संगीतियों का वर्णन प्राप्त होता है और थेरवाद में 6/9 संगीतियों का वर्णन मिलता है । दोनों मतों की संगीतियों के मतभेद क्या-क्या हैं ? और विद्वानों का इन संगीतियों के बारे में क्या मत है । इसके बारे में मध्य भाग में विस्तार से लिखा जाएगा ।

मध्य भाग- बुद्ध के परिनिर्वाण के बाद हजारों स्मृतिमान् भिक्षुओं ने देह का त्याग किया जिन्होंने तथागत बुद्ध से उनके उपदेश को सुना था । उन भिक्षुओं को तथागत की देशना मौखिक रूप से याद थी पर भविष्य में आने वाले नये भिक्षुओं आदि को यह मौखिक रूप से याद रहेगा कि नहीं इस पर संदेह किया गया । यदि याद हुआ भी तो तथागत बुद्ध के द्वारा उपदेशित सही रूप में रहेगा या नहीं ? तथागत बुद्ध का शासन हजारों वर्षों तक इस पृथ्वी पर बना रहे और सदैव लोगों का कल्याण करता रहे । जहाँ तक हम देखते हैं कि महायान और थेरवाद में ज्यादा मतभेद प्राप्त नहीं होता है परन्तु कुछ-कुछ तो अवश्य है । उन्हें ध्यान में रखकर विषय की प्रस्तुति की जाएगी । प्रथम संगीति क्यों हुई? किसके द्वारा की गयी? कहाँ की गयी? आदि अनेक प्रकार के सवालों को ध्यान में रखते हुए विद्वानों ने क्या-क्या मत रखें है ।

प्रथम संगीति- यहाँ पर हम देखते हैं कि प्रथम संगीति तथागत बुद्ध के परिनिर्वाण के तीन मास के बाद में हुई। महावंस नामक ग्रंथ (2) में वर्षावास के प्रथम सप्ताह में भिक्षुओं ने राजा अजातशत्रु से कहकर उस जगह को ठीक करवाया। (3) सौत्रांतिक दर्शन नामक ग्रंथ में वर्षावास के तीन महीनों में से दूसरे महीने में संगीति का आरम्भ हुआ ऐसा कहा गया है। इतिहास को जानने वाले महापरिनिर्वाण के तीन या चार महीने के बाद में संगीति हुई ऐसा भी मानते हैं (4)। यहाँ संगीति होने के कारण पर ध्यान दें तो जब महाकश्यप भिक्षुओं के साथ कुशीनगर और पावा के मध्य में चल रहे थे, तब उन्हें बुद्ध के महापरिनिर्वाण का पता चलता है और वहाँ पर भिक्षु लोग रोते, शोक करते हैं। तब सुभद्र नामक भिक्षु उनसे यह कहता है- "अलं आवास, मा सोचित्थ, मा परिदेवित्थ, सुमत्ता मयं तेन महासमणेन, उपद्दुता च होम- 'इदं' वो कम्पनियों, इदं वो न कप्पति'ति। इदानि पन मयं यं इच्छिस्साम तं किस्सा, यं न इच्छिस्साम न तं करिस्सामा ति।" आयुष्मानो! अब कोई शोक न करो, विलाप न करो; क्योंकि अब तो उस महाश्रमण से मुक्त हो चुके हैं। उसने हमको दिन रात 'यह करो, यह न करो के नाना विध आदेश दे देकर त्रस्त कर रखा था (5)। सुभद्र का वर्णन हमें संदेह में डाल देता है कि सुभद्र था कौन? हमें पालि ग्रन्थों से पता चलता है कि दो सुभद्र हुए थे। "दीघनिकाय के महापरिनिर्वाण सूत्र के 'कस्सपत्थेरत्थु' प्रकरण में और 'चुल्ल-वग्ग' के संगीति खण्ड में उद्धृत सुभद्र दोनों एक और अभिन्न प्रतीत होते हैं, किन्तु दीघनिकाय के सुभद्रपरिव्राजक प्रकरण में उल्लिखित सुभद्र उनसे भिन्न है। यह (पूर्वोक्त सुभद्र) भगवान बुद्ध का अन्तिम श्रावक था। पालि-परम्परा के अनुसार वैशाख पूर्णिमा की जिस रात्रि में भगवान ने परिनिर्वाण प्राप्त किया, उसी रात्रि में इसने प्रव्रज्या प्राप्त की थी। ऐसा सुना जाता है कि वह वृद्ध नहीं था (6)। पालि परम्परा के कुछ ग्रन्थों में यही कारण दिया गया है। जिसके कारण प्रथम संगीति हुई थी। इसके बारे में बु स्तोन के इतिहास ग्रन्थ और इतिहास के विद्वान् प्रो० जम्पा सामतेन ने अपने एक लेख में संगीति के दो कारणों को बताया है। वह निम्नलिखित हैं- "तथागत बुद्ध के परिनिर्वाण के बाद शास्ता की परिषद, शारिपुत्र की परिषद और मोग्गलिपुत्त की परिषद में जो भिक्षु मृत्यु पर विजय पा चुके थे, और स्मृतिमान् हजारों ने अपने देह का त्याग किया। जिसके कारण शास्ता के वचनों का संग्रह या संगीति नहीं हो पाई यह पहला संदेह था संगीति के लिए। दूसरा कारण यह कहते हैं कि तथागत बुद्ध का महापरिनिर्वाण कुशीनगर में हुआ, उस समय महाकाश्यप राजगृह में थे। तथागत के महापरिनिर्वाण की सूचना मिलने पर वह उनके दर्शन के लिए कुशीनगर की ओर चले तो रास्ते में किसी से भेंट होने पर भिक्षुओं को तथागत के महापरिनिर्वाण की सूचना मिली। वे लोग विलाप आदि करने लगे तो एक वृद्ध भिक्षु ने उन सबको कहा- अरे भिक्षुओं! ऐसा करो, ऐसा मत करो कहने वाले से हम मुक्त हो गये हैं। यह सुनकर महाकाश्यप ने बहुश्रुत आनन्द आदि को एकत्रित किया। तथागत का शासन लम्बे समय तक इस संसार में बना रहे इसलिए प्रथम संगीति का आयोजन किया (7)। "इसी तरह हमारे

तिब्बती दुल्वा और युआन-च्वांग के ग्रन्थों में यह भी कारण बताया जाता है कि बुद्ध के परिनिर्वाण के बाद में धर्म लुप्त हो जाएगा। सुभद्र आदि सभी भिक्षुओं में इसकी आशंका थी इसलिए यह संगीति आयोजित की गई। यह संगीति कहाँ पर आयोजित की गई? दीपवंस नामक ग्रंथ के अनुसार सप्तपर्णी गुफा में संगीति हुई ऐसा सन्दर्भ प्राप्त होता है (8)। महावंस में वैभार पर्वत में स्थित सप्तपर्णी गुफा में की गयी यह मिलता है (9)। सौत्रांतिक दर्शन नामक ग्रंथ में भी राजगृह के विपुलगिरि के पार्श्व में स्थित सप्तपर्णी गुफा में संगीति हुई ऐसा मिलता है (10)। पालि साहित्य का इतिहास नामक ग्रन्थ में भी प्रथम संगीति के स्थान राजगृह में वैभार गिरि के उत्तरी पार्श्व में स्थित सप्तपर्णी गुफा में हुई ऐसा प्राप्त होता है (11)। तिब्बती दुल्वा और बुद्ध स्तोन के इतिहास आदि के अनुसार न्यग्रोध गुफा के पास में हुई ऐसा सन्दर्भ मिलता है (12)। अश्वघोष के अनुसार गृध्रकूट पर्वत की इंद्रशाल गुफा में हुई यह वर्णन मिलता है। किस राजा के संरक्षण में हुई? ज्यादातर ग्रन्थों में हम राजा अजातशत्रु का नाम उल्लिखित पाते हैं, परंतु चुल्ल-वग्ग में अजातशत्रु का नाम नहीं मिलता है (13)। कितने भिक्षुओं ने इस संगीति में भाग लिया था? हम अधिकतर ग्रन्थों में 500 भिक्षुओं के सहयोग से यह संगीति सम्पन्न हुई ऐसा पाते हैं, परंतु युआन-च्वांग ने 1000 भिक्षुओं के होने की बात की है (14)। यह संगीति "पंचशतिका" के नाम से प्रसिद्ध है। यह संगीति सात महीनों में सम्पन्न हुई। प्रथम संगीति के समय आनन्द पर सात आरोप लगे थे : महावंस में जो निम्नलिखित हैं :- 1वे बुद्ध के महापरिनिर्वाण से इतने अभिभूत हो गये थे कि वे छोटे-छोटे नियम-उपनियम का ध्यान नहीं रख पाये। 2 बुद्ध का चीवर सिलते समय उन्होंने उस चीवर को पैर के अंगूठे से दबाकर रखा। 3 उन्होंने भगवान के शरीर को अभिवादन करने की अनुमति पहले नारियों को दी। 4 उन्होंने भगवान से अपने शरीर को कल्पपर्यन्त स्थिर रखने की प्रार्थना नहीं की। 5 महाप्रजापति गौतमी के प्रभाव में आकर उन्होंने स्त्रियों को संघ में प्रवेश की अनुमति दिलायी। 6 भगवान बुद्ध के तीन बार मांगने पर भी उन्होंने पीने के लिए जल नहीं दिया। 7 उन्होंने दुश्चरित्र स्त्रियों एवं पुरुषों को भी भगवान के गुप्ताङ्गों का दर्शन करने दिया। ये सात हैं (15)। "बौद्ध धर्म के 2500 वर्ष" नामक पुस्तक में 5 आरोप और साथ में दो आरोप तिब्बती दुल्वा से लेकर सात दिखाये हैं (16)। जब हम तिब्बती दुल्वा आदि में देखते हैं तो हम आठ आरोपों की व्याख्या प्राप्त करते हैं (17)। आनन्द ने इनका समाधान सही रूप से किया तो संघ ने उन्हें इन आरोपों से मुक्त किया। इस संगीति में किसका संगायन हुआ? इसके विषय में हम चुल्ल-वग्ग में देखते हैं- "हन्द, मयं आवुसो, धम्मं च दिनों च संगायाम। पुरे अधम्मो दिप्पति, धम्मो पटवाहियति, अभिनय दिप्पति, विनयो पटवाहियति (18)।" बौद्ध धर्म के 2500 वर्ष नामक ग्रंथ में भी "उपालि के नेतृत्व में विनय की निश्चिति; आनन्द के नेतृत्व में धम्म के पाठ का निश्चय"; यह सन्दर्भ मिलता है। महावंस नामक ग्रंथ में उपालि द्वारा विनय और आनन्द स्थविर द्वारा सुत्तपिटक एवं अभिधम्म पिटक का संगायन किया गया यह प्रमाण मिलता है (19)। पालि साहित्य का

इतिहास नामक ग्रन्थ में भी विनय एवं सुत्त के संगायन का सन्दर्भ मिलता है (20)। परम पावन दलाई लामा जी ने बौद्ध विज्ञान और सिद्धांत समुच्चय नामक ग्रंथ की भूमिका में कहा है कि "महाकाश्यप ने अभिधम्म पिटक, अर्हत उपालि ने विनयपिटक और अर्हत आनन्द ने सुत्तपिटक का संगायन किया (21)।" यही सन्दर्भ सद्धम्मसङ्गहो महावंस आदि ग्रन्थों में भी मिलता है। प्रथम संगीति के समय छन्न (छन्दक) को ब्रह्मदण्ड दिया गया। यह वही छन्न था जो एक समय में राजकुमार सिद्धार्थ का सारथी था, तथा भगवान का विश्वसनीय था, पर भिक्षु बनने के बाद बहुत ही उद्दण्ड हो गया था। वह किसी को भी अपवचन बोलने में संकोच नहीं करता था। इसलिए उसे ब्रह्मदण्ड दिया गया। उसके पश्चात् वह पश्चाताप कर अर्हत्व को प्राप्त हुआ (22)। छन्न को ब्रह्मदण्ड देना तिब्बती इतिहास आदि में प्राप्त नहीं होता है। यह हम विशेष रूप से पालि परम्परा में ही देख पाते हैं।

दूसरी संगीति- तथागत बुद्ध के महापरिनिर्वाण के 100 वर्ष के बाद में आयोजित की गयी। दीपवंस में कहा गया है कि- "वस्ससतम्हि निब्बुते भगवति वेसालिका वज्जिपुत्तका वेसालियं दस वत्थुनि दीपेन्ति (23)।" महावंस नामक ग्रंथ में भी इसका सन्दर्भ मिलता है। जैसा कि- "सम्बुद्धपरिनिब्बाणा एवं वस्ससंत अहुरा, तदा वेसालिया भिक्खू अनेके वज्जिपुत्तका (24)। "सद्धम्मसङ्गह में भी इसका सन्दर्भ मिलता है" वस्ससतपरिनिब्बुते भगवति वेसालिका वज्जिपुत्तका भिक्खू वेसलियं दस वत्थुनि दीपेंद्र (25)। "सासनवंस नामक ग्रंथ में भी इसका सन्दर्भ मिलता है "परिनिब्बानतो हि भगवति वस्ससतानं उपरि (26)।" भोट एवं चीन की परम्परा को देखकर यह ज्ञात होता है कि वे लोग इस संगीति के आयोजन को बुद्ध के महापरिनिर्वाण के 110 वर्ष बाद में सम्पन्न हुआ मानते हैं (27)। इस संगीति के होने का मुख्य कारण वैशाली के निवासी वज्जी भिक्षुओं के द्वारा दस वत्थुनियों को अपनाना माना जाता है। जिन्हें काकंडक पुत्त यश विनय के विरुद्ध मानते थे। जिसके कारण वैशाली के भिक्षुओं ने उन्हें अनेक प्रकार के दण्ड आदि दिये। दस वत्थुनियों के विषय पर चुल्ल-वग्ग में इसका सन्दर्भ मिलता है- "कप्पति सिंगिलोण ठप्पा, कप्पति द्वयंगुलककप्पो, कप्पति गामन्तरकप्पो, कप्पति आवासकप्पो, कप्पति अनुमतिकप्पो, कप्पति आचिण्णकप्पो, कप्पति अमथितकप्पो, कप्पति जलोगिं पात्र, कप्पति अदसकं निसीदनं, कप्पति जातरूपरजतं ति (28)। "बौद्ध धर्म के 2500 वर्ष ग्रन्थ में भी इन दस वत्थुनियों का वर्णन किया गया है (29)। महावंस नामक ग्रंथ में दस वत्थुनियों का वर्णन मिलता है- सिङ्गलोणं द्वङ्गुलं च तथा गामान्तरं पिता च। आवासानुमताचिण्णममथितं जलोगि च। निसीदनं अदसकं जातरूपादिकं इति। 1. सिङ्गलोणंकप्प - भिक्षा के समय सिंह की खाल में नमक ले जाना, 2. द्वयंगुलककप्प - मध्याह्न में निश्चित समय के बाद सूर्य के दो अङ्ग्रेजी अधिक उतर जाने पर भी भोजन करना, 3. गामन्तरकप्प- मध्याह्न में भोजन के बाद भी दूसरे ग्राम में जाना और वहाँ निमन्त्रित होकर पुनः भोजन करना, 4. आवासकप्प- एक ही सीमा वाले स्थान के वासी

भिक्षुओं द्वारा अपना-अपना उपोसथागार पृथक् बना लेना, 5. अनुमतिकप्प- निश्चित समय के बाद आने वाले भिक्षुओं से बाद में अनुमति लेने की प्रत्याशा में भगवान द्वारा अननुमत सङ्ख्या के भिक्षुओं द्वारा भी उपोसथ करना, 6. आचिण्णकप्प- विनय = बुद्ध वचन की अपेक्षा गुरु परंपरा के आचार को अधिक प्रमाण मानना, 7. अमथितकप्प- भोजन काल के बाद भी, दूध एवं दही की मध्यावस्था वाले दूध को, जो मथा हुआ न हो, पी सकना, 8. जलोगिकप्प - मद्य रूप में अपरिणत सुरा (ताड़ी) का पी सकना, 9. अदसकनिसीदनकप्प- विना किनारे का आसन रख सकना, 10. जातरूप-रजतकप्प- सोना चांदी का ग्रहण कर सकना (30)। इस संगीति का वर्णन मुख्य रूप से चुल्ल-वग्ग में और सर्वास्तिवादी निकाय के क्षुद्रकवर्ग में मिलता है, तथा भोट देश के विद्वान एवं इतिहासकार लामा तारानाथ और बुस्तोन का भी यही कहना है कि यह संगीति क्षुद्रक-आगम पर आधारित है। आचार्य भव्य विवेक, वसुमित्र और विनीतदेव आदि भी इस संगीति का वर्णन करते हैं, परन्तु उनके वर्णन में यह आयोजन महादेव नामक भिक्षु के लिये पांच वस्तुएं थीं, वैशाली के भिक्षुओं के दस वत्थुनियों का नहीं (31)। हम तिब्बती वर्णनों में दस वत्थुनियों के अलावा दूसरी वस्तुओं को भी पाते हैं, जैसे- अलल शब्द का उच्चारण, भोजन में रुचि और पृथ्वीखनन आदि (32)। किस के संरक्षण में यह संगीति हुई? महावंस में राजा कालाशोक के संरक्षण में हुयी, ऐसा उल्लेख प्राप्त होता है (33)। बौद्ध धर्म के 2500 वर्ष नामक ग्रंथ में भी हम यह पाते हैं- अजातशत्रु के वंशज कालाशोक के समय में यह संगीति हुई (34)। दीपवंस और समन्तपासादिका में भी कालाशोक के समय में ही यह संगीति हुई ऐसा प्रमाण मिलता है (35)। भोट परम्परा के अनुसार इस संगीति का संरक्षक धर्माशोक को माना जाता है। (བསྟན་པ་གཉེས་པ་འདི་ཉིད་སྐྱེ་བདག་ནི། ཆོས་རྒྱལ་སྡུ་དན་མེད་ཀྱིས་བྱས་པའོ།) (36)। यहाँ कालाशोक की जगह पर धर्माशोक का नाम आया है यह भ्रान्ति से हुआ होगा ऐसा लगता है। इस संगीति का आयोजन काकंडक पुत्त यश के द्वारा कराया गया और इसकी अध्यक्षता रैवत स्थविर ने की। इसमें सात सौ अर्हत् सम्मिलित हुए और यह संगीति सप्तशतिका के नाम से प्रसिद्ध हुई। इसका प्रमाण सद्धम्मसङ्गहो और चुल्ल-वग्ग में प्राप्त होता है (37)। यह संगीति आठ महीनों तक चली थी। इस संगीति में धर्म, विनय और अभिधम्म आदि समस्त अंगों का संगायन हुआ था। सद्धम्मसंगहो नामक ग्रंथ में इसका सन्दर्भ मिलता है- "अथ थेरा पनं धम्मं च विनयं च संगायिस्सामा ति वत्वा ... सब्बं सासनमलं सोधेत्वा पुन पिटकवसेन च निकायवसेन च अंगवसेन च धम्मक्खन्धवसेन च सब्बं धम्मविनयं संगायिंसु (38)।" महावंस में भी कहा गया है- "अपि च- ते सब्बे बालुकारामे कालासोकेन रक्खिता। रेवतत्थेरपामोक्खा अकरुं धम्मसंगणि (39)। "यह संगीति वैशाली में हुई थी। इस संगीति के समय वैशाली के भिक्षुओं द्वारा किये जा रहे कार्यों को विनय के विरुद्ध पाया गया। जिसके कारण उस संगीति से वैशाली के दस हजार भिक्षुओं को संगीति से बाहर कर दिया गया। वैशाली के भिक्षुओं ने इस संगीति को नहीं माना और एक

संगीति का आयोजन किया जो "महासांघिक संगीति" के नाम से जानी गयी। इसके बाद बौद्ध निकायों का विभाजन शुरू हुआ और वह दो निकायों में बंट गया। वे दो है महासांघिक और स्थविरवादी। यहीं से बौद्धों में निकायों का विभाजन शुरू हुआ और तृतीय संगीति के समय तक यह 18 निकायों में विभाजित हो चुके थे।

तृतीय संगीति- यह संगीति तथागत बुद्ध के महापरिनिर्वाण के 235 वर्षों बाद में हुई (40)। महावंस नामक ग्रंथ में 218 वर्षों के बाद में हुई ऐसा सन्दर्भ मिलता है (41)। अट्ठसालिनी की निदानकथा में आचार्य बुद्धघोष ने इस संगीति का समय तथागत परिनिर्वाण के 218 वर्ष बाद दिखाया गया है। वहां तथागत बुद्ध को यह भविष्यवाणी करते हुए दिखाया है- "मेरे परिनिर्वाण के 218 वर्ष बाद मौद्गलिसुत्त तिष्य स्थविर नामक भिक्षु "कथावस्तु" नामक प्रकरण-ग्रन्थ का विभाजन (विश्लेषण) करेगा।" "मम परिनिब्बानत्तो अट्ठारसवस्साधिकानं दिन्नं वस्ससतानं मत्थे मोग्गलिपुत्ततिस्सत्थेरो नाम भिक्खु कथावत्थुप्पकरणं भाजेस्सती"ति। अवदानशतक में कहा गया है, "वर्षशतपरिनिर्वृते बुद्धे भगवति पाटलिपुत्रे नगरे राजा अशोक राज्यं कारयता" (42)। तिब्बती और चीन के महायानी बौद्ध-साहित्य में भी इस संगीति का उल्लेख नहीं मिलता और न ही चुआन-चुआङ ने ही इसके विषय में कुछ लिखा है (43)। तीसरी संगीति के समय बौद्ध धर्म में बहुत सारे संप्रदाय हो गये थे जिन्हें एकरूपता में लाने की अति आवश्यकता थी। कुछ विद्वानों का मानना है कि यह तीसरी सभा मात्र स्थविरवादियों या विभज्यवादियों की सभा थी (44)। मोग्गलिपुत्त तिस्स ने राजा अशोक को बौद्ध धर्म में दीक्षित किया। राजा अशोक ने अपने समय में बौद्ध धर्म को भारत और भारत के बाहर तक फैलाया। अशोक ने तथागत के समय के दानी अनाथपिण्डद के लिये बौद्ध धर्म का सहयोग किया। जिसके लिए वह प्रतिदिन चार लाख मुद्रायें दिया करता था। अशोक के समय में हर विहार को हर प्रकार की सुविधाओं से सम्पन्न करके रखा गया था। जिसे देखकर दूसरे संप्रदाय के लोग भिक्षु न होते हुए भी विहारों में जाकर रहने लगे। अनेक प्रकार के कुकर्म को करते थे। वे लोग उससे बचने के लिए भिक्षु बन जाते थे। बहुत सारे दूसरे पंथ के लोग अपने-अपने पाठ आदि को भगवान बुद्ध के वचन कहकर धर्म को हानि पहुचाते थे। जिसके कारण सात वर्ष तक अशोकाराम विहार में उपोसथ नहीं हुआ था, न ही कोई प्रवारणा विधि सम्पन्न हुई। जब राजा अशोक को यह पता चला तो उसने वहाँ के भिक्षुओं को उपोसथ करने का आदेश दिया। उसने अपने एक मंत्री को यह काम सम्पन्न करने को कहा और वह उपोसथ का अर्थ जाने बिना ही विहार गया और वहाँ के भिक्षुओं को उपोसथ करने को कहने लगा। भिक्षुओं ने उससे कहा कि यह उपोसथ का सही समय नहीं है, तो कुछ ने कहा कि हम इन दूसरे भिक्षुओं के साथ उपोसथ नहीं कर सकते हैं। जिस पर वह मंत्री क्रोधित हुआ और उसने आज्ञा मनवाने के लिए तलवार चलवा दी। जिससे वहाँ पर कुछ भिक्षुओं की मृत्यु हो गई। जब राजा अशोक को ज्ञात हुआ तो वह बहुत दुःखी हुआ। तब उसने मोग्गलिपुत्त तिस्स से इसके बारे

में पूछा कि क्या वह पाप का भागी है या नहीं? जिस पर स्थविर ने अशोक को यह स्पष्ट किया कि अनजाने में हुए इस कार्य के लिए वह पाप का भागी नहीं है । उसके बाद अशोक ने स्थविर मोग्गलिपुत्त तिस्स और सभी भिक्षुओं को एकत्रित किया और प्रत्येक भिक्षु को अपना-अपना मत प्रतिपादित करने का अवसर प्रदान किया । जिन भिक्षुओं ने स्थविरवाद (विभज्यवाद) का समर्थन किया उन्हें वास्तविक भिक्षु माना गया और इसके अतिरिक्त अन्य साठ हजार भिक्षु वेषधारी चोर संवासकों को संघ से निष्कासित किया गया । शुद्ध मतवाले भिक्षुओं ने उपोसथ किया और संघ से समग्र पापवासना एवं अकुशल धर्मों की निवृत्ति हुई । उसमें से स्थविर तिस्स ने तिपिटक में पारंगत एक हजार भिक्षुओं का चयन किया और वह स्वयं उस सभा के सभापति की कार्यवाही चलाने लगा । यह सभा नौ माह तक चली । इस सभा में समग्र तिपिटक को संगृहीत किया और मोग्गलिपुत्त तिस्स के द्वारा रचित "कथावत्थुप्पकरण" नामक ग्रंथ को भी तिपिटक के एक ग्रंथ के रूप में मान्य किया गया । तृतीय संगीति की बहुत सी उपलब्धियां हैं (45) ।

चौथी संगीति- यह संगीति शक या तुरुष्क वंश के राजा कनिष्क के समय में हुई । माना जाता है कि राजा कनिष्क का साम्राज्य काबुल, गंधार सिंध, उत्तर-पश्चिमी भारत, कश्मीर और मध्यप्रदेश तक फैला था । चौथी संगीति ईसवी के 100 के बाद में बुलाई गई । कोई कहता है कि यह संगीति जालंधर में हुई तो कोई कहता है कि कश्मीर में हुई (46) । कोई कहता है कि यह संगीति कश्मीर के राजधानी के पास कुण्डलवन विहार में हुई । इस संगीति के अध्यक्ष वसुमित्र और उपाध्यक्ष महाकवि अश्वघोष थे । यह संगीति सर्वास्तिवाद सम्प्रदाय की संगीति मानी जाती है (47) । इस संगीति में बड़े परिश्रमी विद्वानों ने बौद्ध धर्म के विशिष्ट सिद्धांतों पर अपने मत निश्चित किये और विरोधों का परिहार किया तथा त्रिपिटकों पर बहुत सी व्याख्या लिखी जो "महाविभाषा" के नाम से प्रसिद्ध हुआ ।

श्रीलंका में बौद्ध संगीति- महावंस और कुछ सिंहली परम्पराओं के अनुसार श्रीलंका में तीन बौद्ध संगीतियां हुई । श्रीलंका में प्रथम संगीति राजा देवानां पिया तिस्स के समय में हुई थी (247 से 207 ईसा पूर्व) । इसके सभापति अरिट्ठ थेर थे। थेर महिंद के श्रीलंका आने के बाद यह संगीति हुई और इसमें साठ हजार भिक्षु आये थे । यह संगीति अनुराधपुर के थुपाराम में हुई । दूसरी संगीति राजा वट्टगामणि अभय के समय (101-77 ईसा पूर्व) में हुई । थेरवाद निकाय के बौद्ध इसे चौथी संगीति मानते हैं । सिंहली परम्परा के अनुसार इस संगीति में त्रिपिटक और अट्ठकथाओं को भी ताम्र पत्र पर लिखा गया । ये पांच सौ बार पढ़े और शुद्ध करके लिखे गये थे । महादेव रक्खित की अध्यक्षता में पांच सौ भिक्षुओं ने इस संगीति में भाग लिया । इस संगीति को अलु-विहार अथवा आलोक-विहार संगीति कहा जाता है। इस संगीति को राजा के एक मंत्री से सहायता मिली थी । 1865 ईसवी में श्रीलंका के रत्नपुर में हिक्कड्डव सिरि सुमंगल की अध्यक्षता में एक

अन्य संगीति हुई और यह पांच महीने तक चलती रही। इद्दमलगोद बसनायक नीलमे ने इस संगीति को संरक्षण दिया।

थाईलैंड की संगीति- थाई भिक्षु सोमदेज फ्रा वनराट (भदंत वनरतन) के द्वारा राम प्रथम यानी बौद्ध संवत 2332 (1739) को संगीतिवंस नामक इतिहास लिखा, जिसमें नौ संगीतियों का उल्लेख मिलता है। इसमें पहले तीन भारत में और चौथी से सातवीं श्रीलंका में तथा आठवीं और नौवीं थाईलैंड में हुई। सिंहली स्रोतों में प्रथम पांच संगीति का ही उल्लेख मिलता है। छठीं संगीति श्रीलंका में राजा महानाम के समय में हुई थी। जो बौद्ध संवत 516 में हुई। सातवीं संगीति भी श्रीलंका में ही हुई। उस समय राजा पराक्रमबाहु का राज्यकाल था। यह संवत 1587 में राजमहल में एक वर्ष तक होती रही। थाईलैंड में आठवीं और नौवीं संगीति हुई। यह चिंगमाई में राजा श्री धर्मचक्रवीर्त तिलक के समय में बौद्ध धर्म को सुदृढ़ करने के लिए की गयी। 2000 से 2026 ईसा पूर्व के बीच महाबोधि आराम में यह संगीति हुई। नौवीं संगीति बैंकाक में बौद्ध संवत 2331 में हुई। पुरानी राजधानी अयुधिया (अयोध्या) में आग के कारण कई ग्रन्थ और हस्तलिखित प्रतियाँ नष्ट हो गईं। राजाश्रय में 218 वृद्ध और 32 विद्वान एकत्र हो कर यह कार्य किया गया।

वर्मा की संगीति- 1871 ईसवी में राजा मिन दोन मिन के आश्रय में 2400 विद्वान भिक्षु इस संगीति में सम्मिलित हुए। जागराभिवंस, नरिंदाभिधज और सुमंलसामि एक के बाद एक ने संगीति की अध्यक्षता की। इस संगीति में 729 संगमरमर की शिलाओं पर त्रिपिटकों को लिखा गया और यह कार्य राजमहल में पांच महीने तक चला। मई 1954 में रंगून में छठी महान बौद्ध संगीति हुई। इस संगीति में दुनिया के अनेक देशों से भिक्षु आये। अभिधज महारथ गुरु भदंत रेवत सभापति बनाये गये। वर्मा के 500 भिक्षु बुलाए गए, जिन्होंने पूरे त्रिपिटकों का शोधन किया। वैशाख 1956 तक बुद्ध के महापरिनिर्वाण के 2500वीं पुण्यतिथि तक यह परिषत् तिपिटक का शोध कार्य करती रही है (48)।

महायान की संगीति- महायान की संगीति हुई थी या नहीं। यह प्रश्न है पर हम कुछ ग्रन्थों में देखते हैं कि जब प्रथम संगीति के समय आचार्यगण सप्तपर्णी गुफा में महाकाश्यप की अध्यक्षता में संगीति कर रहे थे। उसी समय राजगिरि के दक्षिण पर्वत पर मञ्जुश्री, अवलोकितेश्वर और वज्रपाणि आदि महायान का संगायन कर रहे थे (49)। तर्क ज्वाला और चङक्या डुब था नामक ग्रंथ में भी इसका सन्दर्भ मिलता है। (རྒྱ་བའི་སྡུད་པ་ཡོ་གྱན་ཏུ་བཟང་པོ་དང་འཇམ་དཔལ་དང་གསང་བའི་བདག་པོ་དང་། བྱམས་པ་སོགས་པ་རྣམས་ཀྱིས་བསྡུད་པའི་ཕྱིར་རོ། བདག་ཅག་གི་རྒྱ་བར་བྱེད་པ་པོ་ཉན་ཐོས་ནི་མ་ཡིན་ཏེ། ཐེག་པ་ཆེན་པ་ཚེན་པོའི་གསུང་རབ་ན་དེའི་ཡུལ་མ་ཡིན་པའི་ཕྱིར་རོ།(50) चीनी यात्री द्वारा इस संगीति का उल्लेख किया गया है (51)।

उपसंहार- उपर्युक्त दी गयी संगीतियों के विवरण को देखकर हमें संदेह होता है कि इन संगीतियों के बारे में क्या कहा जाय। मैंने बहुत सारे ग्रन्थों पर चिन्तन करने के बाद ही इस विषय

पर लेख लिखा है। प्रथम संगीति के होने का मुख्य कारण तो तथागत बुद्ध का शासन सहस्त्र वर्षों तक सुदृढ़ होकर रहा, यह है। उपर्युक्त दिये गये सन्दर्भों को देखकर मुझे सबसे सही तो भोट इतिहासकारों के दिये गये कारण सही लगते हैं। इनके द्वारा जो भी कारण दिये गये हैं उनका बुद्ध के धर्म पर संगीति होना क्यों जरूरी था, यह सही रूप में दर्शाता है। विद्वानों के अनेक मत हैं और हम सभी को उन मतों पर विचार-विमर्श कर उसका कारण क्या है ? क्यों हुआ आदि सही तरह से जानना चाहिए। इस संगीति को किस राजा का संरक्षण मिला था ? इसके सन्दर्भ में भी अनेक तरह के तथ्य मिलते हैं। कोई कहता है राजा अजातशत्रु ने किया पर कुछ में अजातशत्रु का नाम नहीं मिलता है। मैं मानता हूँ कि हर कार्य को सुचारु रूप से सम्पन्न करने के लिए धन आदि की आवश्यकता होती है तथा उस समय राजा अजातशत्रु इन सबमें सम्पन्न थे तो वही उसके संरक्षण कर्ता थे। इस संगीति में अभिधर्म का संगायन हुआ या नहीं इस विषय में मेरा मानना है कि यह संगीति मुख्यतः विनय और सुत्त की ही थी। अत: इसमें अभिधर्म का संगायन नहीं हुआ। इस संगीति के विषय में अनेक विद्वानों ने अपने-अपने मत रखे हैं जो जिस तरह से सही लगता है उसके बारे में हम अपने तर्क रख सकतें हैं। यह संगीति सप्तपर्णी गुफा में हुई या दूसरी जगह पर हुई थी। इसके विषय में विद्वानों का कथन अलग-अलग है पर प्राचीन ग्रन्थों को देखकर और उस समय की परिस्थितियों को देख यह संगीति सप्तपर्णी गुफा में ही सिद्ध होती है। सुभद्र के बारे में भी दो सुभद्रों का वर्णन मिलता है, पर उन दोनों में से तथागत के परिनिर्वाण के समय जो प्रव्रज्या ग्रहण किया वह इस संगीति का कारण नहीं था। दूसरी संगीति के बारे में ज्यादातर मतभेद नहीं मिलता है, पर यहाँ पर भोट विद्वानों ने राजा अशोक को माना है जो तर्कसंगत नहीं है। इस विषय में कुछ भोट इतिहास के छात्र आदि का कहना है कि कालाशोक और अशोक को भोट इतिहास में एक ही माना जाता है। अगर ऐसा है तो भी यह सही नहीं है क्योंकि कालाशोक और अशोक के जन्म और वंश परम्परा भी भिन्न-भिन्न है। राजा अशोक के समय में जो संगीति हुई थी वह विशेष प्रकार से थेरवाद की संगीति मानी जाती है जिसमें मोग्गलिपुत्त तिस्स ने स्थविरवाद के सिद्धांत को कथावस्तु नामक ग्रंथ में प्रतिपादित किया था। महावंस दीपवंस आदि प्राचीन ग्रन्थों से यह पूर्णतया सिद्ध ही है कि कालाशोक और अशोक एक नहीं, भिन्न थे। हम चौथी संगीति जो राजा कनिष्क के समय में हुई थी। वह कुण्डलवन में ही हुई, यह भी सही मानते हैं। इस संगीति में वसुमित्र आदि के द्वारा महाभाष्य संगृहीत किया गया था। कुछ जालन्धर में भी मानते हैं पर यह सही नहीं लगता है। इसके अतिरिक्त कुछ और संगीतियों का उल्लेख मिलता है। जिनमें अलग-अलग मत होने पर कोई नौ तो कोई पांच संगीतियों का वर्णन करते हैं। यह सभी अपने इतिहास आदि के द्वारा सिद्ध करते हैं। महायान की एक विशेष संगीति हुई थी, यह भी मानना गलत नहीं होगा क्योंकि महायान के सुत्त आदि को भी संगृहीत करना अति आवश्यक था। इन संगीतियों के मतभेदों को आप लोगों के सामने प्रस्तुत करते हुए मुझे अति हर्ष हो रहा है, कि आप लोग दिये

गये इन सन्दर्भों आदि के सहारे अपने अपने मतों को सही रूप से सिद्ध कर पायेंगे। अन्त में मैं तथागत बुद्ध के धर्म का सार लोगों को परस्पर मैत्री, करुणा, सद्भाव आदि का पाठ समझा पाये और यह विश्व करुणामय और शान्तिमय हो, ऐसी प्रार्थना करता हूँ।

॥ भवतु सब्ब मङ्गलम् ॥

सन्दर्भ ग्रन्थ :

1. द्र० प्रज्ञापारमिताहृदयसूत्र व्याख्या-स्फुटार्था, पृ० 18
2. द्र० महावंस, पृ० 31
3. द्र० सौत्रांतिक दर्शन, पृ० 19। सद्धम्मसंगह, पृ० 2
4. द्र० पालि साहित्य का इतिहास (डा० भरत सिंह उपाध्याय) पृ 77। पालि साहित्य का इतिहास (राहुल सांकृत्यायन)
5. द्र० दीघनिकाय, द्वितीय भाग, पृ० 125। महावंश, सौत्रांतिक दर्शन।
6. द्र० दीघनिकाय, द्वितीय भाग, पृ० 115, 124। चुल्लवग्ग, पृ० 406
7. द्र० 5 पर देखें
8. द्र० दीपवंस, पृ० 55
9. द्र० महावंस, पृ० 33
10. द्र० सौत्रांतिक दर्शन, पृ० 19
11. द्र० पालि साहित्य का इतिहास, पृ० 115
12. द्र० सर्वास्तिवादविनय, क्षुद्रकवर्ग, भोटभाषा कग्युर संग्रह "द"। बु स्तोन के इतिहास में, पृ० 178
13. द्र० बौद्ध धर्म के 2500 वर्ष और चुल्लवग्ग
14. द्र० भारत यात्रा का विवरण
15. द्र० महावंस, पृ० 31
16. द्र० बौद्ध धर्म के 2500 वर्ष, पृ० 10
17. द्र० डेपूङ लोसेलिङ का विनय, पृ 2, རྒྱ་བོད་ཡིག་ཚང་ཆེན་སོ་སོའི་གཏ 47 ནས 59
18. द्र० चुल्लवग्ग, पृ० 403
19. द्र० बौद्ध धर्म के 2500 वर्ष, पृ० 11
20. द्र० पालि साहित्य का इतिहास, पृ० 115,120
21. द्र० बौद्ध विज्ञान एवं सिद्धांत समुच्चय (ནང་ངའི་ཚན་རིག་དང་ལྡ་གྲྭ་གྱུན་བཏུས), पृ० 42, 43
22. द्र० महावंस, पृ० 32, सद्धम्मसंगह आदि
23. द्र० दीपवंस 54, 123
24. द्र० महावंस, पृ० 31, 107
25. द्र० सद्धम्मसंगह, द्वितीय परिच्छेद

26. द्र० सासनवंस, पृ० 5
27. द्र० क्षुद्रकवर्ग भोटभाषा कग्युर संग्रह "द" पृ० 413, 414, खेडुबजे, ग्युद्- स्दे-स्पिय्-र्नम "ज", पृ० 23 ह्वेनसांग कृत भारत यात्रा विवरण, पृ० 26
28. द्र० चुल्लवग्ग, पृ० 426
29. द्र० बौद्ध धर्म के 2500 वर्ष, पृ० 11
30. द्र० महावंस, पृ० 40, 41
31. द्र० बौद्ध धर्म के विकास का इतिहास, पृ० 175
32. द्र० अर्ली मोनेस्ट्री बुद्धिजम, पृ० 35, 40, बौद्ध धर्म के विकास का इतिहास, पृ० 171
33. द्र० महावंस, पृ० 51
34. द्र० बौद्ध धर्म के 2500 वर्ष, पृ० 12, 13
35. द्र० सद्धम्मसंगह, पृ० 11, सासनवंस, पृ० 6, महावंस टीका, पृ० 120
36. द्र० ग्युद्-स्दे-स्पिय्-नम् खेडुबजे कृत "ज", पृ० 14
37. द्र० सद्धम्मसंगह, पृ० 12, चुल्लवग्ग, पृ० 427,430
38. द्र० सद्धम्मसंगह, पृ० 12
39. द्र० महावंस, पृ० 50
40. द्र० सासनवंस, पृ० 6
41. द्र० महावंस, पृ० 54,107
42. द्र० अवदानशतक, पृ 261
43. द्र० भण्डारकर और मजूमदार- इन्सक्रिप्शन्स आवाज अशोक, पृ० 34, 36, भोट इतिहास को भी देखें
44. द्र० महावंस, पृ० 3/40, दीपवंस 4/40
45. द्र० महावंस 37 ..... 54, 107
46. द्र० बौद्ध दर्शन मीमांसा, पृ 34, 35, तारानाथ कृत बौद्ध धर्म का इतिहास हिन्दी, पृ० 35, 36, बु स्तोन कृत सद्धर्म का इतिहास, पृ० 34,
47. द्र० बौद्ध दर्शन मीमांसा, 34, 35
48. द्र० बौद्ध धर्म के 2500 वर्ष, पृ० 9, 18
49. द्र० प्रज्ञापारमिताहृदयसूत्र व्याख्या-स्फुटार्था, पृ०28
50. द्र० तर्कज्वाला, भव्यकृत 'ज' देगे संस्करण, चङक्या डुब था, पृ० 71
51. द्र० ह्वेनसांग कृत भारत यात्रा का विवरण, पृ० 313

छात्र (आचार्य, द्वितीय)
के.उ.ति.शि.सं., सारनाथ, वाराणसी
मो.नं.- 7905073283

अवच्छिन्नवाद और प्रतिबिम्बवाद

—डॉ. योगेश कुमार त्रिपाठी—

जीवतत्व और जीव की उत्पत्ति, स्थिति और लय का विज्ञान मनुष्य के जानने योग्य सब विषयों में परम आवश्यक विषय है। स्वयं की उन्नति और स्वयं की मुक्ति तब तक संभव नहीं है जब तक जीव अपना स्वरूप न जान जाये, अतः जीवतत्व समझने की आवश्यकता सर्वोपरि है। जिन विज्ञानों को विचार करने से जीवतत्व को समझा जा सकता है उनकी विचार शैलियों में जो संदेह रूप बाधा डालने वाले विषय हैं, उनका निराकरण अत्यावश्यक है। जीवतत्व की निरूपण शैली में प्राय: दो सम्प्रदाय अत्यधिक प्रचलित हैं। जिन्हें क्रमशः प्रथम अवच्छिन्नवाद एवं दूसरा प्रतिबिम्बवाद के नाम से जाना जाता है।

यद्यपि जीवतत्व के साथ उक्त वादों का साक्षात् सम्बन्ध नहीं है, तथापि इनको समझ लेने के पश्चात् किसी प्रकार की शङ्का उत्पन्न होने की संभावना नहीं रहेगी, अतः इन वादों का दिग्दर्शन करना आवश्यक है। जीवात्मा के विषय में अन्यान्य सम्प्रदायों में जितने प्रकार के वाद हैं उन सबको दो विभागों में विभक्त कर सकते हैं।

जैसे पहला-

ब्रह्म सत्यं जगन्मिथ्या जीवो ब्रह्मैव ना परः।[1]

जीव और ब्रह्म में अभेद हैं, इसलिए ब्रह्म के समान जीव भी नित्य-शुद्ध-बुद्ध-मुक्त-सत्य-स्वभाव वाला है।

दूसरे के मत में जीव और ब्रह्म पृथक्-पृथक् वस्तु हैं। जीव दुःख त्रय के अधीन है और ब्रह्म क्लेश विहीन है। जीव अनित्य, अशुद्ध, अबुद्ध, और अमुक्त है। ब्रह्म नित्य, शुद्ध, बुद्ध और मुक्त है। जीव नियम्य है, ब्रह्म नियामक है और जीव व्याप्य है, ब्रह्म व्यापक है।

इन दोनों वादों की पुष्टि वेदांत दर्शन, श्रुति और शास्त्रों में भिन्न भिन्न प्रकार के प्रमाणों द्वारा होती है। वेदांत दर्शन के अनुसार इन दोनों वादों को अवच्छिन्नवाद और प्रतिबिम्बवाद के नाम से जाना जाता है।

अवच्छिन्नवाद के विषय में वेदांत दर्शन का यह सूत्र है-

अंशो नानाव्यपदेशात्[2]

जीवात्मा परमात्मा का अंश रूप है। जिस प्रकार सर्वव्यापक आकाश के एक होने पर भी घट,पट आदि के उपाधिभेद से घटाकाश, पटाकाश आदि उसकी संज्ञा होती है, किन्तु वास्तव में

---

1. विवेकचूडामणि।
2. ब्रह्मसूत्र, अंशाधिकरणम् 2.3-43

घटाकाश और महाकाश में स्वरूपतः कोई भेद नहीं है। उसी प्रकार केवल अंतःकरण रूप उपाधि के योग से एक ही ब्रह्म नाना जीवरूप में व्याप्त हो रहा है।

प्रतिबिम्बवाद के विषय में वेदांत दर्शन का यह सूत्र है-

आभास एव च[1]

जीवात्मा परमात्मा का अंश नहीं है अपितु केवल आभास मात्र है जिस प्रकार आकाश में स्थित सूर्य या चन्द्रमा का प्रतिबिम्ब जल में पड़ता है। वह प्रतिबिम्ब सूर्य या चंद्र की तरह दिखाई देने पर भी वह सूर्य या चन्द्रमा नहीं है, उसी प्रकार अंतःकरण पर परमात्मा का जो प्रतिबिम्ब पड़ता है वही जीवात्मा है, वह वास्तव में ब्रह्म नहीं है।

इन दोनों मतों की पुष्टि में श्रुति आदि अनेक प्रमाण शास्त्रों में पाए जाते हैं। जैसे अवच्छिन्नवाद के विषय में अथर्ववेद में-

ब्रह्म दाशा ब्रह्म दासा ब्रह्मैवेमे कितवाः।[2]

श्वेताश्वतर उपनिषद् में-

त्वं स्त्रीत्वं पुमानसि त्वं कुमार उत वा कुमारी[3]
त्वं जीर्णो दण्डेन वञ्चासि त्वं जातो भवसि विश्वतोमुखः।

ब्रह्म स्त्री है, ब्रह्म पुरुष है, ब्रह्म कुमार एवं कुमारी है, वृद्ध रूप में दण्ड लेकर ब्रह्म ही चलता है। संसार में नानारूप धारण करके ब्रह्म ही सर्वत्र विराजमान है।

मुण्डकोपनिषद् में-

यथा सुदीप्तात् पावकाद् विस्फुल्लिंगःसहस्रशाः प्रभवन्ते सरूपाः।
तथाक्षरात् विविधाः सौम्य भावाः प्रजायन्ते तत्र चैवापियन्ति।।[4]

जिस तरह सुदीप्त अग्नि से हजारों चिनगारियाँ निकलती हैं, उसी तरह अक्षर ब्रह्म से नाना प्रकार के जीव उत्पन्न होकर फिर उसी में लीन हो जाती हैं।

गीता में भी भगवान कहतें हैं-

ममैवांशो जीवलोके जीवभूतः सनातनः।[5]

श्रीमद्भगवत गीता में-

---

1. ब्रह्मसूत्र अंशाधिकरणम् 2.3-50
2. ब्रह्मसूत्रभाष्यम्, द्वितीयाध्याय, तृतीयपाद 43
3. श्वेताश्तरोपनिषद्, चतुर्थोध्याय, तृतीयपाद।
4. मुण्डकोपनिषद्, द्वितीयमुण्डकः, प्रथम।
5. श्रीमद्भगवद्गीता, अध्याय-15, श्लोक-7

मनसैतानी भूतानि प्रणमेद् बहु मानयन्।
ईश्वरो जीवकलया प्रविष्टो भगवानिति ।।[1]

सभी जीवों को सम्मान के साथ प्रणाम करना चाहिए, क्योंकि ईश्वर ही जीवरूप में सर्वत्र व्याप्त है। अवच्छिन्नवाद के पोषक इत्यादि अनेक प्रमाण शास्त्रों में पाए जाते हैं।

इसी प्रकार से प्रतिबिम्बवाद के विषय में भी अनेक शास्त्रों में प्रचुर मात्रा में प्रमाण उपलब्ध हैं।

जैसे ब्रह्मबिन्दूपनिषद् में-

एक एव हि भूतात्मा भूते भूते व्यवस्थितः।
एकधा बहुधा चैव दृश्यते जलचंद्रवत् ।।[2]

एक ही ब्रह्म समस्त जीवों में अवस्थान कर रहा है। जल में चन्द्र बिम्ब की तरह समस्त जीवों के अन्तःकरण में उसका प्रतिबिम्ब है, वही जीवात्मा है।

यथा ह्ययं ज्योतिरात्मा विवस्वानपो भिन्ना बहुधैकोऽनुगच्छान्।
उपाधिना क्रियते भेदरूपो देवः क्षेत्रेष्वेवषमजोऽयमात्मा ।।[3]

जिस तरह सूर्य एक होने पर भी अलग अलग जलों में प्रतिबिम्बित होकर अनेक प्रकार से दिखता है, उसी प्रकार अद्वितीय ब्रह्म अंतःकरण रूप उपाधि में प्रतिबिम्बित होकर अनेक होता है। अंतःकरण में पड़ा हुआ उसका प्रतिबिम्ब ही जीव है। इस प्रकार से प्रतिबिम्बवाद के विषय में अनेक प्रमाण मिलते हैं। आगे इन दोनों वादों के मध्य अनेक परस्पर विरुद्ध तर्क, शङ्का और उसके समाधान भी हैं।

अवच्छिन्नवाद के विषय में यह शङ्का होती है कि जब जीवात्मा परमात्मा का अंश है तो जीवात्मा नियम्य और परमात्मा नियन्ता कैसे हो सकता है ?

इस शङ्का के समाधान में यह कहा गया है कि जीवात्मा परमात्मा का अंश तो है, परन्तु परमात्मा की उपाधि माया उत्कृष्ट है और जीवात्मा की उपाधि अविद्या निकृष्ट है, इसलिए उत्कृष्टोपाधि संपन्न ईश्वर निकृष्टोपाधि संपन्न जीवात्मा का नियंता हो सकता है।

लोक में भी उत्कृष्ट शक्ति संपन्न मनुष्य निकृष्ट शक्ति संपन्न मनुष्य का नियंता देखा जाता है एवं यह भी विचारणीय है कि केवल अविद्याजनित उपाधि के बल से ही जीवात्मा और परमात्मा के बीच में इस तरह का नियम्य-नियामकभाव है, यह भाव वास्तविक नहीं है क्योंकि ज्ञान द्वारा आत्मा का साक्षात्कार होने पर यह भाव पूर्णतया नष्ट हो जाता है। इसलिये पूज्यवाद सुरेश्वराचार्य ने कहा है-

---

1. श्रीमद्भागवत्पुराणाम्, स्कन्धः-3, अध्याय 29, श्लोक 34
2. ब्रह्मसूत्र, 3-2-18, बिन्दूपनिपद-1
3. वेदान्तपरिभाषा एवं श्रीमद्भगवद्गीता 13.34

ईशेशितत्यसम्बन्धः प्रत्यगज्ञानहेतुजः।
सम्यग्ज्ञाने तमोध्वस्तावीश्वराणामपीश्वरः॥[1]

जीवात्मा ईशितव्य और परमात्मा इशिता है, इस प्रकार का सम्बन्ध ज्ञान केवल जीवात्मा के स्वरुप के अज्ञान से ही होता है। स्वरुप का ज्ञान होने पर अज्ञान विनष्ट हो जाता है। अज्ञान का नाश होने पर इस तरह का नियम्य-नियामकभाव नहीं रहता।

द्वितीय शङ्का यह होती है कि जीव और ब्रह्म अभिन्न हैं, तो जीव के दुःखी होने पर ब्रह्म भी दुःखी होगा, परन्तु ऐसा नहीं होता। इसके उत्तर में महर्षि वेदव्यास ने वेदान्तदर्शन में कहा है-

प्रकाशादिवन्नैवं परः[2]

जिस प्रकार सूर्य रश्मियों के उपाधिवश सरल और वक्र आदि होने पर भी सूर्य तत्त्वद्भावापन्न नहीं होता है, उसी तरह अंशभूत जीव के दुःखी होने पर भी ब्रह्म दुःखी नहीं होता।

तीसरी शङ्का यह होती है कि जब जीव ब्रह्म का ही अंश है तो शास्त्रों में जीव के लिए विधि और निषेध का उपदेश क्यों किया गया है ? इसके उत्तर में वेदान्तदर्शन में सूत्र है-

अनुज्ञापरिहारौ देहसम्बन्धाज्ज्योतिरादिवत्[3]

शास्त्रों में देह सम्बन्ध को लक्ष्य करके जीव के लिए विधि और निषेध का उपदेश किया गया है। जैसे अग्नि एक होने पर भी श्मशानाग्नि हेय है और होमाग्नि उपादेय है। इसी प्रकार यहाँ भी समझना चाहिए।

चौथी शङ्का यह होती है कि यदि जीव ब्रह्म ही है तो कर्मों का साङ्कर्य क्यों नहीं होता ? अर्थात एक जीव का कर्म अन्य जीव के कर्म के साथ क्यों नहीं मिल जाता ? इसके उत्तर में वेदांतदर्शन में सूत्र है-

असन्ततेश्चाऽव्यतिकरः[4]

भगवत्पाद शंकराचार्य ने इस सूत्र के भाष्य में लिखा है कि

उपाधितंत्रो हि जीव इत्युक्तम्। उपाध्यसन्तानाच्च नास्ति जीवसन्तानः।
ततश्च कर्म्मव्यतिकरः फलव्यतिकरो वा न भविष्यति।

जीव उपाधितंत्र है। जब उपाधियाँ भिन्न-भिन्न होने के कारण परस्पर मिश्रित नहीं हो सकती तब जीवों के कर्म और कर्मफल कैसे मिश्रित हो सकते हैं ? अवच्छिन्नवाद के विषय में इस प्रकार के अनेक संदेह और उनके निराकरण शास्त्रों में पाए जाते हैं।

---

1. सुरेश्वराचार्यः भाष्यरत्नप्रभाव्याख्या, ब्रह्मसूत्र, द्वितीयाध्याय, तृतीयपाद-45
2. ब्रह्मसूत्र, द्वितीयाध्याय, तृतीयपाद, सूत्र 46
3. वही, सूत्र 48
4. वही, सूत्र 49

अवच्छिन्नवाद की तरह प्रतिबिम्बवाद के विषय में भी पहली शङ्का होती है कि लोक में स्वरुप सहित वस्तु का ही प्रतिबिम्ब होता है। जैसे दर्पण में स्वरुप वाला होने के कारण ही मुख का प्रतिबिम्ब पड़ता है, नीरूप (रूपरहित) वस्तु का प्रतिबिम्ब नहीं होता। आत्मा नीरूप है, इसलिए अंतःकरण पर आत्मा का प्रतिबिम्ब नहीं पड़ सकता।

इस शङ्का के उत्तर में यह कहा जा सकता है कि रूपवान् द्रव्य प्रत्यक्षगोचर होता है, इसलिए उसका प्रतिबिम्ब भी प्रत्यक्षगोचर होता है। नीरूप द्रव्य प्रत्यक्षगोचर नहीं होता, इसीलिए उसका प्रतिबिम्ब भी प्रत्यक्षगोचर नहीं हो सकता। नीरूप द्रव्य का प्रत्यक्ष होता ही नहीं, ऐसा नहीं कह सकते, क्योंकि वस्तु के अस्तित्व में केवल प्रत्यक्ष प्रमाण ही नहीं हैं अपितु अन्य प्रमाण भी उपलब्ध हैं। अप्रत्यक्ष नीरूप द्रव्य की सिद्धि जिस प्रकार प्रमाणान्तर द्वारा की जाती है, उसी प्रकार अप्रत्यक्ष होने पर भी श्रुत्यादि प्रमाणों से सिद्ध होने के कारण आत्मा के प्रतिबिम्ब को स्वीकार किया जा सकता है।

प्रतिबिम्बवाद के विषय में ही अगली शङ्का यह होती है कि आत्मा जब सर्वव्यापी है तो अंतःकरण में भी आत्मा पहले से ही विद्यमान है। अतः अंतःकरण में आत्मा का प्रतिबिम्ब नहीं पड़ सकता क्योंकि दोनों के मध्य कोई व्यवधान नहीं है।

इस शङ्का के समाधान में यह कहा जा सकता है कि यह कोई अवश्यम्भावी नियम नहीं है कि जिसका जिस पर प्रतिबिम्ब पड़ेगा उन दोनों के मध्य व्यवधान आवश्यक है, क्योंकि कहीं कहीं नियम का व्यभिचार देखने को मिलता है। जैसे- जल में आकाश का प्रतिबिम्ब पड़ता है। सर्वव्यापी होने के कारण जल में आकाश के पहले से विद्यमान रहने पर भी जल में आकाश का प्रतिबिम्ब दिखाई देता है, इसलिए व्यवधान कि कल्पना निरर्थक है।

इस प्रकार यह सिद्ध होता है कि जिस तरह नीरूप और व्यापक आकाश का प्रतिबिम्ब जल में पड़ सकता है, उसी तरह नीरूप व्यापक आत्मा का भी प्रतिबिम्बित चैतन्य जीवात्मा है।

इस तरह से अवच्छिन्नवाद और प्रतिबिम्बवाद के सिद्धांतों को लेकर अनेक प्रकार के वाद-विवाद, जल्प तथा वितण्डा के माध्यम से पुष्ट किया हुआ मिलता है। अतः इन दोनों वादों का समन्वय तथा समाधान करते हुए जीवात्मा के वास्तविक तत्त्व का यथा मति निरूपण करने का प्रयास किया है। इसी प्रयास का निष्कर्ष है कि अवच्छिन्नवाद और प्रतिबिम्बवाद पृथक्-पृथक् मत नहीं है, किन्तु जीवात्मा के क्रमोन्नतिमार्ग में परिदृश्यमान दो अवस्थामात्र हैं।

सहायक आचार्य
श्री लालबहादुर शास्त्री,
संस्कृत विश्वविद्यालय, नई दिल्ली
मो.नं.- 9889222270

जीवन जीने की कला – एक सोच

—डॉ. आर. के. उपाध्याय—

प्रत्येक व्यक्ति प्रसन्नता एवं सुखपूर्वक जीवन जीना चाहता है, लेकिन जो व्यक्ति अपने बौद्धिक कौशल का प्रयोग करते हुए समय-परिस्थिति से सुंदर तालमेल बैठाने में सफल होते हैं, उनकी जीवन यात्रा सुगम एवं उद्देश्यपूर्ण होती है। प्राचीन काल से ही यह प्रयास चल रहा है कि व्यक्ति या इन्सान को कैसे सुख, शान्ति एवं प्रसन्नता मिले व बेहतर तरीके से मनुष्य अपना जीवन सुन्दर एवं उपयोगी बना सके। युवा जन का कौशल और उनकी ऊर्जा सामाजिक एवं राष्ट्रीय विकास की सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण आधारशिला है, पर विकास का हमारा लक्ष्य केवल आर्थिक-सामाजिक उन्नति तक ही सीमित नहीं रह जाना चाहिए। हमारा उच्चतर लक्ष्य होना चाहिए एक सभ्य और मानवोचित समाज के आदर्शों की ओर आगे बढ़ना। इस आदर्श की प्राप्ति के लिए बौद्धिक क्षमता के साथ-साथ देश के भविष्य निर्माताओं की नैतिक, सांस्कृतिक और मानवीय मूल्य चेतना भी विकसित होनी चाहिए। शिक्षा द्वारा ही मानव विकास के इस मूल्यात्मक पक्ष का अभिवर्धन कर जीवन को सहज एवं उत्कृष्ट बनाया जा सकता है।

यह विषय बहुत व्यापक है। हमारी भारतीय संस्कृति एवं समय-समय पर देश के ऋषियों या महर्षियों ने समाज को व्यवस्थित करने हेतु अपने-अपने विचारों को सम्प्रेषित किया, जो आज भी सम-सामयिक है। यह विषय अपने आप में एक बृहद् आयाम है, एवं व्यक्ति विशेष के लिए इसके अलग-अलग मापदंड या पैमाने हो सकते हैं, लेकिन यहाँ कुछ ऐसे बिन्दुओं को आज के सन्दर्भ में जो अनुकूल हैं, उन्हें सूत्र-रूप में प्रस्तुत किया जा रहा है। आज पूँजीवादी व्यवस्था एवं भोगवाद की आँधी में मानव बाहरी चकाचौंध और भाग-दौड़ में, प्रसन्नता की तलाश में दर-दर भटक रहा है, मन अशान्त रहता है, उसे इन सूत्रों के अभ्यास से सार्थक, उद्देश्यपूर्ण जीवन जीने में मदद अवश्य मिलेगी।

- **वर्तमान में जिएँ-**

  अपने वर्तमान के क्षणों को पूरी तरह से जिएँ। जो कुछ अभी वर्तमान में है, उस पर पूरी तरह से ध्यान केन्द्रित करें। भूतकाल की सुखद स्मृतियों व भविष्य की आशाओं को अपनी शक्ति बनाएँ, न कि उनमें डूबते-उतराते वर्तमान को नष्ट करें। न ही भूत के पश्चात्ताप और भविष्य कि चिन्ताओं को वर्तमान की कर्मनिष्ठा में बाधक बनने दें। यदि हम वर्तमान का सही उपयोग करते हैं, तो भूत के दाग स्वतः धुलते जाएँगे और भविष्य की चिंताओं का निराकरण स्वयं ही हो जायेगा, खुशियों की महक से वर्तमान जीवन सुवासित हो उठेगा। लेकिन यह सच है कि वर्तमान जीवी बनना एक बड़ी साधना है। वे ही वर्तमान में

जी सकते हैं, जिनका चित्त निर्मल हो और जिनकी मानसिक एकाग्रता पुष्ट हो। अधिकांश लोग वर्तमान में जीना जानते ही नहीं हैं। रात-दिन विचारों के इर्द-गिर्द चक्कर लगाने वाला व्यक्ति कभी प्रसन्न नहीं रह सकता।

- **अपने शरीर के प्रति स्वस्थ दृष्टिकोण-**

  ईश्वर ने हमें मनुष्य के रूप में जीवन दिया है, यह उसकी अमानत है, यह भाव लेते हुए जीवन की यात्रा पर आगे बढ़ने के लिए मिला यह शरीर एक दुर्लभ उपकरण है। जीवन की चरम संभावनाओं का बीज इसी के भीतर गुह्य केन्द्र में अभिव्यक्त होने के लिए छटपटा रहा है। अतः शरीर पर समुचित ध्यान दें, पौष्टिक आहार, संयमित विहार एवं उचित श्रम-विश्राम के साथ इसे स्वस्थ, बलिष्ठ एवं निरोग रखें। स्वस्थ शरीर ही प्रसन्नता का प्रथम सोपान है। इसे जहरीले आहार, नशीले पदार्थों एवं भ्रष्ट आचरण से बरबाद न होने दें।

- **अपनी मौलिक विशेषताओं को खोजें व तराशें-**

  प्रत्येक व्यक्ति में कुछ न कुछ विशेषताएँ अवश्य होती हैं, जो अन्य व्यक्ति से उसे अलग करती हैं व जिनकी अभिव्यक्ति में मनुष्य विशेष अपने जीवन की सार्थकता की झलक पाता है। अपनी इसी मौलिकता को पुष्पित-पल्लवित कर इसे सबल, सुदृढ़ बनाने में कोई कसर न छोड़ें। इसी के इर्द-गिर्द अपने जीवन लक्ष्य का निर्धारण करें। व्यावहारिक एवं छोटे-छोटे कदमों के साथ, इसको साकार करने की ओर बढ़ें। हर सफल कदम की उपलब्धि आपके जीवन में खुशी की एक बहार लायेगी।

- **दूसरों का सम्मान करें-**

  अपनी तरह हम दूसरों में निहित श्रेष्ठ संभावनाओं एवं विशेषताओं के भी द्रष्टा बनें। सच तो यह है कि जितना हम अपने आप से गहरा परिचय एवं आत्म सम्मान पाते जाते हैं, उसी अनुपात में बाहर दूसरों की समझ बढ़ती है व उनका सम्मान करना सीखते हैं। दूसरों की अच्छाइयों – गुणों का जहाँ सम्मान करना सीखें, वहीं उनके दोष-दुर्गुणों एवं मानवीय त्रुटियों के प्रति कटुता से बचें। इनके प्रति उदार एवं सहिष्णुता भरा दृष्टिकोण का विकास करें। किसी के प्रति निंदा, चुगली एवं दोषारोपण आदि के नकारात्मक व्यवहार से बचें। क्षमा एवं उदारता के साथ हुआ आत्मविस्तार, आपकी खुशियों में आश्चर्यजनक इजाफ़ा करेगा।

- **लोकमत का अनुसरण विवेक के आधार पर-**

  इसमें दो राय हो सकती है लेकिन यह सच है कि यदि आप अपने अन्तःसत्य की अभिव्यक्ति के मार्ग पर अग्रसर हैं, तो दूसरों के समर्थन, प्रशंसा आदि की ज्यादा आशा न

करें। बाह्य स्वीकृति या पुष्टि की आशा-अपेक्षा, हमें अपनी खुशियों के परावलंबी बनाती है। जब आप पूरी जिम्मेदारी के साथ अपनी मौलिक क्षमताओं के प्रकटीकरण के मार्ग पर प्रवृत्त होते हैं तो उसकी शक्ति-सामर्थ्य सब आपके अन्दर से ही प्रस्फुटित होती है। ऐसे में दूसरों के सोचने या मानने से क्या बनने-बिगड़ने वाला है। अतः ऐसे में अंदर ईमान और ऊपर भगवान को लेकर एकाकी साहस के बल पर जीवन-पथ के राही बनें।

- **प्रतिक्रियाओं के आईने में स्वयं को निहारें-**

  प्रतिक्रियाओं के क्षणों में भी आप प्रसन्नता के बीज बो सकते हैं। किसी व्यक्ति या परिस्थिति के प्रति तीव्र प्रतिक्रिया के क्षणों में वास्तव में हम स्वयं से जूझ रहे होते हैं। हमारे ही अन्दर राग-द्वेष एवं दमित भाव इन क्षणों में आवेग-आवेश बन फूट पड़ते हैं। बाह्य जगत, अन्दर की प्रतिछाया मात्र है। बाहर घृणा का तीव्र भाव, अंदर किसी अंधेरे कोने की ओर संकेत कर रहा होता है और बाहर का प्रगाढ़ राग, अंदर की तीव्र चाहत को इंगित कर रहा होता है। इस तरह संबंधों के आईने में प्रतिक्रिया के क्षणों को अपने विकास का साधन बना सकते हैं। याद रखें कि प्रतिक्रियाहीन जीवन आत्मविकास के चरम का द्योतक है और खुशियों की चरमावस्था भी।

- **अन्तर्ध्वनि का अनुसरण करें-**

  जीवन में क्या सही है, क्या गलत है, इसके समाज एवं प्रचलन में मान्य सूत्र एवं नियम अलग—अलग हो सकते हैं व इनके प्रति स्वीकृति एवं अनुसरण में भी हमें संशय-दुविधा की स्थिति हो सकती है, लेकिन अन्तर्ध्वनि के रूप में एक अचूक सूचक हमारे ही अन्दर मौजूद है। गलत राह पर कदम रखते ही हमारे पैर लड़खड़ाने लगते हैं, गलत काम में हाथ डालते ही हाथ काँपने लगते हैं। यह ध्वनि इतनी स्पष्ट होती है कि इसको नज़रअंदाज़ नहीं कर सकते, किन्तु यह इतनी सूक्ष्म होती है कि इसको आसानी से कुचलकर आगे बढ़ सकते हैं। प्रायः यही मनमानी खुशियों की तमाम संभावनाओं पर तुषारापात का एक प्रमुख कारण बनती है, जबकि अन्तर्ध्वनि के रूप में अवतरित होते इन ईश्वरीय संदेशों के अनुपालन में खुशियों का राज़ छिपा है।

- **सम बने रहने का भाव-**

  सांसारिक जीवन में सम भाव में बने रहना अत्यन्त कठिन कार्य है, लेकिन सतत अभ्यास, सत्संग, प्रेरणाप्रद पुस्तकें पढ़ने से जीवन के प्रति दृष्टिकोण को रचनात्मक, धनात्मक बनाया जा सकता है एवं उस स्थिति में लाभ-अलाभ, निन्दा-प्रशंसा प्रत्येक स्थित में सम रहने वाले लोग ही प्रसन्न रह सकते हैं व अनावश्यक चिंतन का भार नहीं ढोते। यह जीवन जीने के उपर्युक्त सूत्रों में ही राज़ छिपा है। इसे अभ्यास से आत्मसात कर बेहतर एवं सार्थक जीवन जिया जा सकता है।

हमारी भारत-भूमि से, यहाँ जन्मे महापुरुषों द्वारा, सदा ही विश्व-कल्याण एवं मानव-कल्याण के उपदेश उद्घोषित किये जाते रहे हैं। चाहे वे भगवान् बुद्ध के पंचशील के सिद्धान्त एवं अष्टांगिक मार्ग हों या भगवान महावीर द्वारा प्रतिपादित अनेकान्तवाद के सिद्धान्त, गुरु नानक के गुरुग्रन्थसाहब हों या कबीर की गुरुवाणी, तुलसीकृत रामचरितमानस हो या भवगान् श्रीकृष्ण के उपदेशों का संग्रह श्रीमद्भगवद् गीता, किसी के भी अध्ययन एवं अनुपालन से हम अपने जीवन को सरस, सार्थक एवं सोद्देश्य बना सकते हैं। आवश्यकता है तो बस इस बात की कि हम ऐसा जीवन जीने के प्रति कृतसंकल्प हों।

पहले का अधिकांश मूल्य-चिंतन व्यक्ति केन्द्रित रहा है। आज आवश्यक यह हो गया है कि सामाजिक व्यवस्था को कैसे मूल्यनिष्ठ बनाया जाय। कैसे उसके आर्थिक, राजनैतिक, प्रशासनिक तंत्र की गतिविधियों में, नीति निर्धारण प्रक्रियाओं में, नैतिक एवं मानवीय मूल्यों का समावेश किया जाय। इस प्रकार सामाजिक व्यवस्था केन्द्रित मूल्य चिंतन द्वारा नए विचारों को जन्म देना आज मानव हित एवं समाजहित के लिए आवश्यक हो गया है।

उपर्युक्त जीवन के सूत्रों को अभ्यास में लाने से जीवन जीने की यात्रा सुगम एवं सम्मानयुक्त हो जाएगी। प्रसन्नता भाव में रहने के लिए आवश्यक है मूल्यपरक जीवन जीना। व्यावसायिक भाग-दौड़ की वर्तमान जिन्दगी में कार्य के अतिशय दबाव के बीच जहाँ समय की कमी एक ज्वलंत समस्या है, वहीं इसके बीच तनाव एवं चिंता के आत्मघाती मार्ग से उबरने के लिए कुछ पल विशुद्ध रूप से अपने लिए निकालना बुद्धिमानी वाला कदम होगा। एकान्त के इन क्षणों में उपर्युक्त सूत्रों को ध्यान में रखते हुए अपना मूल्यांकन किया जा सकता है। तन-मन के आवेश-आवेगों को शान्त करते हुए, अपने स्रोत की ओर बढ़ते हुए अन्तर्संवाद की स्थिति में गहन विश्रांति के पल बिताए जा सकते हैं। स्वाध्याय, सत्संग, आत्म चिन्तन, मनन, ध्यान, प्रार्थना आदि इसी की तकनीके हैं।

पूर्व कुलसचिव
के.उ.ति.शि.सं., सारनाथ, वाराणसी
मो.नं.- 9453048624

तिब्बत की आजादी का प्रश्न

—डॉ. नीरजा माधव—

(डॉ. नीरजा माधव हिन्दी की प्रतिष्ठित एवं सुपरिचित कथा लेखिका हैं । यमदीप, तेभ्यः स्वधा, अनुपमेय शंकर, ईहामृग जैसे उपन्यासों के अतिरिक्त आपने तिब्बत की समस्या को लेकर गेशे जम्पा और देनपा : तिब्बत की डायरी जैसे महत्त्वपूर्ण उपन्यास भी लिखा है । आपने तिब्बत की आजादी को लेकर जिन कविताओं की रचना की, उन्हें 'फ्री टिबेट' नाम से प्रकाशित किया गया है । इस संग्रह की कविताएँ हिन्दी और अंग्रेजी दोनों भाषाओं में हैं । यहाँ डॉ. नीरजा जी के संक्षिप्त वक्तव्य के साथ संग्रह से केवल छः कविताओं को दिया जा रहा है- संपादक)

भारत और भारत से बाहर रहने वाले तिब्बती शरणार्थियों की पराधीनता और असहाय मानसिक यन्त्रणा को हिन्दी कविता की शैली में लिखते हुए मैं इसके सीमित दायरे के बारे में सोच रही थी। एकाएक मन में भाव आया कि मैं स्वयं अंग्रेजी साहित्य की विद्यार्थी रही हूँ, क्यों न इन कविताओं को दोनों ही भाषाओं में एक साथ लिखूँ ताकि अधिक पाठकों तक बात पहुँचे और उस भाव का परिणाम हैं इस संग्रह "फ्री टिबेट" की कविताएँ। दोनों ही भाषाओं में अभिव्यक्ति की सहजता में थोड़ा बहुत अन्तर हो सकता है क्योंकि एक मेरी दिन-रात की संगिनी भाषा है तो दूसरी रोजी-रोटी और विद्यार्जन के लिए सीखी भाषा। सारनाथ, वाराणसी में रहते हुए अपने आस-पास मैंने तिब्बती शरणार्थियों को बहुत नजदीक से देखा है। उनकी आँखों में छाए बादल को महसूस किया है जो अपने देश और स्वजनों से दूर होने की पीड़ा से घने-घने, भरे-भरे से हैं। उनको जानने की चाहत लिए मैं उनके उत्सवों आदि में शामिल होने का कोई न कोई बहाना ढूँढ़ ही लेती। इस क्रम में उनके रीति रिवाजों, संस्कृति और परम्परा से परिचित हुई तो बहुत से तिब्बती भाषा के अजनबी शब्द भी मेरी पकड़ में आते गये।

मन में एक विचार लगातार उमड़-घुमड़ रहा था कि धरती पर रहने वाले एक प्रजाति के मनुष्यों के मानवाधिकारों के हनन के प्रश्न पर पूरा विश्व चुप क्यों है? विश्व में छाई इस चुप्पी को तोड़ने के लिए मैंने तिब्बती शरणार्थियों पर केन्द्रित एक उपन्यास लिखा- "गेशे जम्पा", जो सन् 2006 में सामयिक प्रकाशन, नई दिल्ली से प्रकाशित हुआ। इस समय तक मेरे कई कहानी-संग्रह और उपन्यास प्रकाशित हो चुके थे इसलिए लेखक के रूप में पहचान का संकट न था और साहित्य-समाज ने इसे हाथों-हाथ लिया। परम पावन दलाई लामा जी ने दिल्ली के अशोका होटल में इसका लोकार्पण किया तो दो-तीन वर्षों के भीतर ही यह तिब्बती विश्वविद्यालय में बी.ए. स्तर पर पाठ्यक्रम में शामिल कर लिया गया। कादरी बन्धुओं ने इस पर केन्द्रित एक डॉक्युमेन्ट्री फिल्म "Learning in Exile" बनाई तो म.प्र. साहित्य अकादमी समेत कई संस्थाओं द्वारा यह उपन्यास सम्मानित भी किया गया।

"गेशे जम्पा" के हिन्दी में प्रकाशन के दो-तीन वर्षों के भीतर ही मैंने इसका अनुवाद अंग्रेजी भाषा में किया और केतन प्रकाशन, वाराणसी से प्रकाशित भी करवाया। "गेशे जम्पा" मुख्य रूप से भारत में रह रहे तिब्बती शरणार्थियों की मानसिक पीड़ा और उनकी अहिंसक मुक्ति साधना को केन्द्र में रखकर लिखा गया। बाद में परम पावन दलाई लामा जी के साथ एक व्यक्तिगत भेंट के दौरान बातचीत के बाद मैंने मन बनाया कि जो तिब्बती शरणार्थी तो न हुए पर तिब्बत में रहते हुए भी दासता और पराधीनता का जीवन जी रहे हैं और वहाँ बर्बर अत्याचारों को झेल रहे हैं, उनके जीवन के भी दर्द को मैं उपन्यास के रूप में उकेरूँ। इसके लिए मुझे निःसन्देह बहुत व्यापक अध्ययन करना पड़ा क्योंकि तिब्बत जाकर उनसे मिलना और उनके दुख जानना किसी भी बाहरी व्यक्ति के लिए सम्भव नहीं था। इसलिए धर्मशाला (हिमाचल प्रदेश) से लेकर तिब्बती विश्वविद्यालय की लाइब्रेरी में उनसे सम्बन्धित अनेक ग्रन्थों, पत्रिकाओं आदि का अध्ययन करके तब मैंने अपने दूसरे उपन्यास "देनपाः तिब्बत की डायरी" को लिखा जो सन् 2014 में प्रभात प्रकाशन, नई दिल्ली से प्रकाशित हुआ। इस उपन्यास का भी लोकार्पण परम पावन दलाई लामा जी ने तिब्बती विश्वविद्यालय के कुलपति प्रो. गेशे नवांग समतेन जी की उपस्थिति में दिल्ली के ताज होटल में किया।

"फ्री टिबेट" कविता-संग्रह लिखने के पीछे भी कई कारण रहे जिसमें एक प्रमुख कारण यह रहा कि कुछ सूक्ष्म भावनाएँ ऐसी होती हैं जिसे गद्य के माध्यम से पूरी तरह अभिव्यक्त नहीं किया जा सकता। हृदय की उन कोमल भावनाओं की अभिव्यक्ति के लिए कविता का माध्यम ही लिया जा सकता है। कम शब्दों में सूक्ष्म भावों को दूसरे के हृदय तक सम्प्रेषित कर देने की क्षमता कविता में होती है। "फ्री टिबेट" की कविताएँ हृदय से हृदय तक की उसी दूरी को तय करने का प्रयास करती हैं। एक साहित्यकार तलवार चलाकर कोई लड़ाई भले न लड़ सके पर अपनी लेखनी से पिन चुभोने जैसी टीस देकर समाज को जगाने का कार्य तो कर ही सकता है।

खम्पा दे रहा था आवाज

तिब्बत की हरी-भरी घाटियों में
झूमकर बरसे थे बादल
पत्तियों के कोरों से
झरीं थीं नन्हीं बूदें
पता नहीं
कोई भींगा या नहीं?

नदी के दोनों ओर
तने पहाड़ों के स्तम्भों पर
खिंच गया था इन्द्रधनुष
संकल्प की तरह
पता नहीं
कोई हारा या नहीं?

मंडराने लगीं तितलियाँ रंग-बिरंगी
फूलों के आस-पास
देते हुए विदा के चुम्बन
डबडबाई आँखों को
पता नहीं

किसी ने देखा या नहीं?

बह रहा था झरने का संगीत,
क्वा में बैठा अकेला
वह खम्पा दे रहा था
विश्व को आवाज,
पता नहीं
किसी ने सुना या नहीं?

शायद तिब्बत

मैं भूलना नहीं चाहता
झुर्रियों भरे चेहरे वाली
उस बूढ़ी दादी की भूरी आँखों को
जिनकी चमक
थोड़ी फीकी हो गई थी
झूल आई थी ऊपर की त्वचा
थोड़ी और अधिक,
सफेद बालों की गुँथी
दो पतली चोटियाँ,
कानों में पुरानी सी
चाँदी की बड़ी-बड़ी बालियाँ
मूँगे जड़ी,
बन्दनवार की तरह
सिर पर बँधी
नीले-हरे रत्न जटित
कपड़े की पतली पट्टी
और पाड्देन के पीछे
अनेक छिद्रों वाले
छुपा को शाल से छिपाती,
पोपले मुँह में बचे
दो-चार दाँतों के अवशेष
पुराने फटे जूते से
बाहर निकल आई
उँगली को
बलात् वापस बुलाती
वह बूढ़ी दादी ही अब
शायद तिब्बत है।

पर्यावरण की आजादी

जिस समय हम कर रहे होते हैं
तिब्बत की आजादी की बात
उस समय
हम कर रहे होते हैं
पाँच सौ प्रकार की चिड़ियों के
अस्तित्व की चिन्ता
पाँच हजार से अधिक
वृक्षों की प्रजातियों की रक्षा की बात
एक सौ छब्बीस खनिजों के
दोहन से उपजी
हमारे माथे पर उगी सिलवटों
और करोड़ों लोगों की प्यास की बात
जो बुझती है
यहाँ से निकलने वाली
प्रमुख नदियों के निर्मल प्रवाह से,
तिब्बत के पुराने जंगलों से लगातार
निःसृत होती गन्धवाही प्राणवायु
जो गुजरती है
दुनिया की इस छत से होकर।

हम केवल चिन्तित नहीं हैं
तिब्बत की आजादी के लिए
बल्कि हमें चिन्ता सताती है
तिब्बत के बहाने
इस पूरे यूरेशिया के पर्यावरण की आजादी
और धरती पर
मौसमों और जलवायु की।

अन्तहीन निर्वासन

हर वर्ष
तुम देते हो सनद
मेरे शरणार्थी होने का,

कौन देश के वासी
इसका भी प्रमाण पत्र,
जीने की सुविधाएँ,
स्कूल और घर
हम बेघर लोगों को,

रखते हो अपने देश में
तिब्बत की उदास कहानियों को
झुक जाता है हमारा सिर
तुम्हारी महानता के आगे
साथ ही भर जाता है
एक अन्तहीन
निर्वासन का दंश भी
मेरे भीतर
जब तुम धारण करते हो
बलात् मौन
विश्व के सामने
हमारे अलग देश के नाम पर।

फ्री टिबेट

जब भी कोई पूछता है
तुम्हारा परिचय,
तुम्हारी जन्मभूमि,
तुम्हारा देश,
जिसे छोड़ आए थे तुम्हारे पूर्वज
पचासों वर्ष पहले
और तुम पैदा हुए थे
एक दूसरे देश में,

हो जाते हो तुम उदास
कहते हुए शरणार्थी
और डबडबा जाती हैं तुम्हारी आँखें
एक सपना तैर जाता है उसमें
वापसी की उम्मीद में
अपने देश
जिसे तुमने कभी देखा नहीं।
जब भी आता है
कोई 'शी' 'हू' या अन्य
हिमालय को रौंदता
इस पार
बिछ जाते हैं पलक-पाँवड़े
रेड कॉरपेट की तरह,

तेनजिन, तुम कर लिए जाते हो गिरफ्तार
हर बार
आशंका में
कि चीख न पड़ो तुम पूरी ताकत से
"फ्री टिबेट" की तख्ती लिए

और इस प्रकार
कैद हो जाती है तुम्हारी
सम्पूर्ण मुक्ति-साधना
एक बार फिर।

आजाद मन

हिमालय के इस पार
और उस पार भी
हम हैं, हवाएँ हैं
आजाद हैं हवाएँ
जा सकती हैं
इस पार भी
उस पार भी
बेरोक-टोक,
जा सकते हैं हम भी
इस पार या उस पार
आजाद मन
लेकिन शरणार्थी या गुलाम तन।

मधुवन सा-14/96 एन-5,
सारंगनाथ कालोनी, सारनाथ, वाराणसी
मो.न.- 9292411451

कोरोना, अब तुम्हारे दिन पूरे हो चले हैं

—प्रो. बाबूराम त्रिपाठी—

''रामबरन, जरा केदार को तो बुला लाओ।''

''कोई काम है मलकिन अम्मा?''

''काम है, तभी तो बुलवा रही हूँ।''

''ठीक है, जा रहा हूँ।''

लक्खीपुर गाँव की लक्ष्मी देवी को गाँव के लोग मलकिन अम्मा कहते हैं। उनका यह नाम यों ही नहीं पड़ा है, वे माँ की तरह लोगों का खयाल भी रखती हैं, उनके सुख-दुःख को अपना सुख-दुःख समझती हैं। ऐसी भली महिला के साथ विधाता ने बड़ा अन्याय किया। जब वे पैतालीस साल की थीं, तभी दुर्दैव ने उनके पति रमापति को उनसे छीन लिया। उस समय उनका इकलौता बेटा आशुतोष बारह साल का था। खैर, अब तो वह पढ़-लिखकर किसी बड़े ओहदे पर पहुँच गया है। रमापति जी पेशे से अध्यापक थे। उनके दिवंगत होने के बाद लक्ष्मी देवी को जो पेंशन मिलती है, उससे वे अपना गुजर-बसर तो करती ही हैं, साथ-साथ गाँव के जरूरतमंद लोगों की भी यथासंभव मदद करती हैं।

वे कोरोना महामारी के क्रूर ताण्डव को लेकर काफी चिन्तित रहती हैं। आये दिन लोगों को कालकवलित होते देखकर उनका मन उदास रहता है और रह-रहकर उनकी आँखें भर आती हैं। उन्होंने नौकरानी से अपनी चिन्ता व्यक्त करती हुई कहा—''मोहिनी, मैं साठ साल की हो गयी, पर कोरोना जैसी महामारी मैंने कभी नहीं देखी। इसने पूरे विश्व में कोहराम मचा रखा है। न जाने कितनी माताओं से उनके लाल छीन लिये, न जाने कितनी औरतों की माँग के सिन्दूर मिटा दिये और न जाने कितने बच्चों को अनाथ कर दिया। माँ-बाप अपनी औलादों की मौत के गम में कभी विधाता को कोस रहे हैं, तो कभी अपने दुर्भाग्य पर आँसू बहा रहे हैं। इस महामारी के चलते शहरों में सन्नाटा पसरा हुआ है। मिल-कारखानों पर ताले लटक रहे हैं। एक तरफ उसका खौफ, तो दूसरी तरफ भुखमरी की मार। काम-धन्धा बन्द हो जाने के कारण लोग गाँवों की शरण ले रहे हैं। जो गाँव अब तक वीरान थे, जहाँ बुजुर्गों के अलावा और कोई रहता ही न था, वे अब परदेशियों से भर गये हैं। इनमें कुछ तो ऐसे भी हैं, जो गाँव के होते हुए भी गाँव के नहीं थे। इन्होंने कभी सोचा भी नहीं रहा होगा कि कोरोना जैसी महामारी आयेगी और उससे बचने के लिए इन्हें अपने गाँव की शरण लेनी पड़ेगी।''

''लेकिन अम्मा, जिन घरों में परदेशी आये हैं, उनके चेहरे की रौनक गायब हो गयी है। अभी तक जो लोग एक छत्र राज करते थे, मौज-मस्ती की जिन्दगी जीते थे, अब वे अपने यहाँ आये हुए लोगों के खर्च के बोझ से दब गये हैं। उनके घर की महिलाएँ रात-दिन भगवान से मना रही हैं कि किसी तरह लॉक डाउन खुले और उनके घर पर आयी यह बला टले। उन्हें कौन

समझाये कि ये बेचारे कोरोना महामारी की मार से आहत पैसे-पैसे के मोहताज हैं, इनके पास फूटी-कौड़ी भी नहीं है, कहाँ से साग-सब्जी लायें और कहाँ से नमक, तेल, मसाला का जुगाड़ करें।''

*

''पाँव लागी मलकिन अम्मा।'' केदार ने आकर अभिवादन किया।''

''सुना है, दो दिन से तुम्हारे यहाँ चूल्हा नहीं जला?''

''कहाँ से जले, घर में अन्न का एक दाना भी तो नहीं है, बच्चे भूख से तड़प रहे हैं।'' इतना कहते-कहते वह रो पड़ा।

''अच्छा, एक काम करो, वह जो बरामदे में बोरी रखी हुई है, उसमें तुम्हारे पूरे परिवार के लिए तीन दिन का राशन है, नमक, तेल और मसाला भी है, ले जाकर अपनी घरवाली को दे दो, भोजन पकाये। और हाँ, ये दो पैकेट बिस्किट भी लेते जाओ, बच्चों को देना, तब तक वे खा लें। ये सब देकर आओ, तो तुम्हारे लिए आगे की व्यवस्था करूँ।''

केदार ने मन ही मन लक्ष्मी देवी के प्रति आभार व्यक्त किया और गदगद होकर सामान की बोरी के साथ घर आया। खाने-पीने का सामान देखकर उसकी पत्नी की आँखों में खुशी के आँसू उमड़ आये। उसने अपने पति से कहा—''इस संसार में आज भी अच्छे लोगों की कमी नहीं है। ऐसे लोगों से दूसरों के आँसू नहीं देखे जाते। मलकिन अम्मा देवी हैं, देवी। उन्होंने हमें भूख से मरने से बचा लिया, भगवान उनका भला करे और वे दीर्घायु हों।''

लक्ष्मी देवी अपने नौकर रामबरन को कुछ हिदायत दे रही थीं कि इसी बीच महेश का छोटा भाई सुरेश आता हुआ दिखाई दिया। वह अभी पिछले सप्ताह कोरोना महामारी के डर से मुम्बई भागकर से आया है।

''मलकिन अम्मा, ये जो सज्जन आ रहे हैं, इन्हें गाँव से बड़ी नफरत है। ठीक पाँच साल बाद आये हैं, वह भी तब, जब कोरोना महामारी की मार पड़ी और काम-धन्धा छूट गया। संयोग से एक बार मुम्बई में नन्हकू इनसे मिल गया। जानती हैं, इन्होंने उससे क्या कहा था? कहा था—'गाँव की जिन्दगी भी कोई जिन्दगी है? वहाँ न तो सन्तुलित भोजन नसीब होता है और न ही तन ढकने के लिए ठीक से कपड़े। कतर-ब्योत करते लोगों की जिन्दगी बीत जाती है। मुझे देखो, कितनी शान से यहाँ रह रहा हूँ।'

नन्हकू तो एक कहने वाला, उसने नहले पर दहला रखते हुए कहा—'सुरेश भइया, अपना पेट तो सुअर भी पाल लेती है। आपको यहाँ आये पाँच साल हो गये, कभी आपको अपनी विधवा माँ की भी याद आयी? इसके अलावा आप जिस कोठरी में परिवार सहित रह रहे हैं, इसमें तो गाँव की भेड़-बकरियों के भी दम घुट जायेंगे। और तो और, दिशा-मैदान के लिए घंटों लाइन में खड़े रहते होंगे, तब जाकर नम्बर आता होगा। बाहर के नल से पानी लाते-लाते आपकी पत्नी की कमर झुक गयी होगी, बड़े आये हैं शान से रहने वाले। अभी कोई सौ-पचास रुपये उधार माँगे, तो बगले झाँकने लगेंगे।' इस तरह खरी-खोटी सुनाकर वह वहाँ से उठ गया।''

अभी रामबरन की बात पूरी भी नहीं हुई थी कि सुरेश आ गया। उसने बड़ी श्रद्धा से लक्ष्मी देवी के पाँव छुये।

''सुखी रहो, कहो कैसे आना हुआ, ठीक-ठाक तो हो न?''

''भौजी जब ठीक-ठीक से रहने दें, तब तो रहूँ। जब से आया हूँ, तब से उन्होंने नाक में दम कर रखा है। मलकिन अम्मा, यह कोरोना महामारी जो न करा दे, नहीं तो मैं यहाँ क्यों आता। जब देखिए, तब वे ताने-मेहने से मुझे आहत कर देती हैं। यह जानते हुए भी कि मेरा हाथ खाली है, फिर भी रोज साग-सब्जी और अन्य चीजों को ले आने के लिए झोला थमा देती हैं। आज सुबह तो वे इस स्तर पर उतर आयीं—'यहाँ रहना है, तो सौ-पचास का सामान रोज लाना होगा, नहीं तो बोरिया-बिस्तर बाँधो और मुम्बई की राह पकड़ो।' अब आप ही बताइए, इस महामारी के मुँह में कैसे मैं अपने और अपने परिवार को झोंक दूँ? मुम्बई की हालत तो आप देख ही रही हैं।''

''क्या करोगे बेटा, महामारी के चलते आदमी, आदमी नहीं रह गया है। उसकी सोच संकीर्ण होती जा रही है, कोई किसी को फूटी आँख नहीं देखना चाहता। बेटे, किसी तरह गर्दिश के ये दिन काट लो क्योंकि कोरोना महामारी के दिन अब पूरे हो चले हैं। जल्दी ही देश की अर्थ-व्यवस्था पुन: पटरी पर आयेगी। हाँ, इस समय मेरे लायक जो सेवा हो, कहो।''

''मलकिन अम्मा, यह है मेरी पत्नी की अँगूठी, इसे आपके पास गिरवी रखने आया हूँ।'' इतना कहकर सुरेश ने अँगूठी लक्ष्मी देवी के सामने रख दी।

''देखो बेटा, न तो मैं किसी का कोई सामान गिरवी रखती हूँ और न ही सूद-ब्याज पर पैसे देती हूँ। तुम्हें जितने रुपये की जरूरत हो, बोलो, मैं दे दे रही हूँ। इस अँगूठी को ले जाकर अपनी पत्नी को लौटा दो।''

''मलकिन अम्मा, आदमी आधा पेट खाकर शहर में रह ले, पर गाँव भूलकर न आये।''

''इतना सुनते ही सुरेश के प्रति लक्ष्मी देवी की सहानुभूति आक्रोश में बदल गयी—''गाँव ने तो तुम्हें बुलाया नहीं था, जो भागे-भागे चले आये? भला बताइए, जिस गाँव में तुम पैदा हुए, जिसके अन्न-जल से पल-पुसकर बड़े हुए, उसके प्रति तुम्हारी इतनी घटिया सोच? बेटे, गाँव कितने ही गये-गुजरे क्यों न हों, पर ये आज भी शहरों से अच्छे हैं। कोरोना महामारी से त्रस्त होने पर यदि कहीं तुम्हें शरण मिली, तो अपने गाँव में मिली। अच्छा अब जाओ, देर करोगे, तो तुम्हारी भौजी इस बात को भी लेकर खफा हो जायेंगी कि कहाँ देर कर दी।'

''आज तो गजब हो गया मलकिन अम्मा। कोरोना के चलते लोग इतने संवेदन-शून्य हो जायेंगे, इसकी मुझे कल्पना तक नहीं थी।'' कुबेर ने चिन्ता व्यक्त की।

''बात क्या है, तुम्हें संवेदन-शून्यता कहाँ दिखायी दे गयी?''

''कल रात में जोखू को करोना निगल गया, उसकी मौत की सूचना रात में ही गाँव वालों को हो गयी थी, पर उस समय जाने को कौन कहे, सुबह भी उसके दरवाजे पर कोई नहीं गया, क्योंकि सभी को यह मालूम हो गया था कि वह कोरोना से मरा है।''

''यह कहाँ की घटना है?''

''पड़ोसी गाँव जनकपट्टी की। जोखू की अर्थी को कन्धा देने के लिए गाँव का एक भी आदमी नहीं तैयार हुआ। उसके दो-चार रिश्तेदार आये, तो उसकी अर्थी उठी। लेकिन जोखू के दोनों लड़के गाँव वालों से भी आगे निकले। उन्होंने श्मशान घाट पर जब लाशों का ढेर देखा और उन्हें यह पता चला कि सात-आठ घण्टे बाद ही उनके पिता की लाश का नम्बर आयेगा, तो उन दोनों ने डोम को हजार रुपये दिये और लाश को उसके हवाले करके वहाँ से फूट लिये।''

''क्या करोगे बेटा, कोरोना महामारी ने लोगों को इस कदर संवेदन-शून्य बना दिया है कि लोग पत्थर दिल हो गये हैं, उनकी आँखों का पानी मर गया है। एक ओर हमारे डॉक्टर, नर्सें एवं अस्पताल के अन्य कर्मचारी अपनी जान की बाजी लगाकर कोरोना के रोगियों को मौत के मुँह में से निकाल रहे हैं और अपने इस जोखिमभरे प्रयास में कुछ लोग खुद कोरोना की चपेट में आ जा रहे हैं और दूसरी ओर लोगों के पास इतना भी समय नहीं है कि अपने माँ-बाप का दाह-संस्कार कर सकें।''

कुबेर के जाने के बाद लक्ष्मी देवी ने मन ही मन कोरोना को चेतावनी देते हुए कहा—''कोरोना, तुम्हारे दिन अब पूरे हो चले हैं क्योंकि हमारे मेडिकल साइंस का अब तीसरा नेत्र खुल चुका है, वह तुम्हें जलाकर राख कर देगा। तुम्हारा पेट इतना बड़ा हो गया है कि अनगिनत लोगों को निगलने के बाद भी नहीं भरा, जो अभी भी लोगों को निगलते चले जा रहे हो? क्रूर, तुमने विश्व की न जाने कितनी महान विभूतियों को निगला है, न जाने कितने ऐसे डॉक्टरों को तुमने मौत की नींद सुलाया है, जो अपनी जान जोखिम में डालकर लोगों को तुम्हारे खूनी पंजों से मुक्त करा रहे थे। इतना ही नहीं, जो श्मशान घाट कभी लाशों को देखकर प्रसन्न होते थे और जिनके लिए लाश केवल लाश हुआ करती थी, चाहे वह युवा और वृद्ध की रही हो या बच्चे की, तुम्हारी क्रूरता को देखकर आज वे भी आँसू बहा रहे हैं। मायावी, तुम्हारी आँखें उसी समय खुल जानी चाहिए थीं, जब हमारे डॉक्टर तुम्हें रक्त के आँसू रुला रहे थे। तुम चाहे जितने रूप धारण करो, पर अब डॉक्टरों की पैनी दृष्टि से तुम नहीं बच सकते। तुमने इंसान से उसकी इंसानियत छीन ली, आदमी को आदमी नहीं रहने दिया। तुमने यही सोच रखा था न कि इस मानव-सृष्टि को उदरस्थ कर लोगे, पर तुम यह भूल गये कि विधाता की इस सृष्टि का न तो कभी विनाश हुआ है और न ही होगा, यह अक्षुण्ण है अक्षुण्ण। सुना है, तुम्हें अपनी तीसरी लहर पर बड़ा गुमान है? इस बार वह बच्चों को अपना निवाला बनायेगी? अरे बहुरूपिये, जब तुम बचोगे, तब न तुम्हारी तीसरी लहर बच्चों को निगलेगी? यह जान लो, तुम्हारे जीवन की अब कुछ ही साँसे और बची हैं, बहुत जल्द तुम्हारा रामनाम सत्य होगा।'

विजिटिंग प्रोफेसर
के.उ.ति.शि.सं., सारनाथ, वाराणसी
मो.नं.- 9598070524

संस्थान का हरित परिसर

—राजेश कुमार मिश्र—

प्रकृति और परमात्मा के सम्बन्ध में किसी ने बहुत सुन्दर कहा है कि प्रकृति ही लुप्त होते-होते परमात्मा हो जाती है और परमात्मा ही प्रकट होते-होते प्रकृति हो जाता है। मनुष्य इसी प्रकृति का एक घटक है किन्तु बुद्धिवादी भौतिकता के कारण वह स्वयं को प्रकृति का स्वामी मानकर अपने ही क्रमिक विनाश का कारण बन बैठा है। प्रकृति के सामन्जस्य में हजारों सालों से रह रहे मनुष्यों में भी यह मानसिक परिवर्तन हुआ है, जिसके कारण एकाधिकार की प्रवृत्ति का उदय हुआ है और प्रकृति तथा मनुष्य के सम्बन्ध जटिल हुए हैं। कौन ऐसा हृदयहीन व्यक्ति होगा जो खिले पुष्प, नाचते मोर, चहकते पक्षियों, कुलांचे भरते हिरन, झर-झर झरते झरनों, घाटी में गूँजती ध्वनियों को देख सुन और महसूस कर रोमांचित न हो जाए। हम भी इन्हीं में से एक हैं और जब तक यह सब हैं तभी तक हम हैं। किन्तु समय का सच यह है कि यदि पर्यावरण और प्रकृति की चिन्ता की जाए तो तथाकथित भौतिक विकास उदास हो जाता है और यदि केवल विकास की चिन्ता की जाए तो पर्यावरण और प्रकृति क्षत-विक्षत होते हैं। खैर, यह सब तो अभी चलेगा और सम्भवतः प्रकृति के प्रयासों द्वारा ही सन्तुलन का रूप प्राप्त करेगा। शहर में रहने वाला कोई व्यक्ति जब एक दो दिनों के लिए भी शहर की भीड़ से दूर प्रकृति के करीब पहुँचता है तो उसका तन और मन दोनों ही नवीन ऊर्जा से भर जाता है, ऐसा क्यों होता है, हमें इस पर अवश्य विचार करना चाहिए? क्रियाएं तो वस्तुतः सामान्य रूप से वही होती हैं वैसे ही चलना उठना बैठना खाना पीना सोना बल्कि नई जगह जाने पर सामान्य जीवन क्रम की अपेक्षा शारीरिक श्रम अधिक होता है, लगभग हमारे जैसे ही लोग वैसी ही जिन्दगी और समस्याएं जलवायु में थोड़ा बहुत परिवर्तन हो सकता है बाकी सब लगभग एक जैसा ही होता है, किन्तु फिर भी एक दो दिन के लिए ही सही, कार्यस्थल से बाहर बेवजह भ्रमण हमें तरोताजा क्यों कर देता है, इस पर विचार करना आवश्यक है। अपने अनुभव से मुझे यह लगता है कि नई जगह पर हम कर्त्ता नहीं द्रष्टा या दर्शक के भाव में होते हैं। वहाँ हम देखने गये होते हैं उस जगह के जीवन की समस्याओं में हम भागीदार नहीं होते, सामान्य दैनिक जीवन की अपेक्षा अधिक श्रम करते हुए भी हम कुछ नहीं कर रहे होते हम वहां की प्रकृति के विभिन्न स्वरुपों का आनन्द लेने के भाव से भरे होते हैं और यही भाव हमें रोमांचित और ऊर्जावान रखता है। यदि अपने दैनिक जीवन में कुछ समय के लिए भी हम इस भाव को जी पाएं अपने आस पास खिले फूलों, खेलते बच्चों, हवा में लहराते वृक्षों, चहकते पक्षियों के साथ मानसिक सम्बन्ध बना पाएं, तो वह ऊर्जा थोड़ी मात्रा में ही सही, हमें अपने कार्यस्थल पर भी प्राप्त हो सकती है और विशेषतः हमारा संस्थान तो इसके लिए एक आदर्श

स्थान है । बौद्ध धर्म दर्शन और परम्परागत तिब्बती संस्कृति के संरक्षण संवर्धन के उद्देश्य से स्थापित यह संस्थान मनुष्य और प्रकृति के साहचर्य का एक जीवित प्रमाण है । जहाँ तहाँ उगे विशालकाय बरगद, पीपल, नीम, आम, जामुन, कदम्ब, सागौन, बेल आदि के सैकड़ों वृक्ष इस बात के गवाह हैं। इस सम्बन्ध में संस्थान के पूर्व निदेशक पूज्य समदोंग रिनपोछे जी से सम्बन्धित एक लगभग 23-24 वर्ष पुराना संस्मरण है- एक बाउंड्री वाल का निर्माण हो रहा था, जिसकी सीध में एक पीपल का वृक्ष आ रहा था । ठेकेदार और अन्य लोगों ने सलाह दी कि उसे काट दिया जाय, जिससे कि बाउंड्री वाल सीधी हो जाएगी, रिनपोछे जी ने कहा मुझे वह जगह दिखाइए और उनके साथ सभी लोगों के वहां पर पहुँचने पर रिनपोछे जी ने पूछा कि बाउंड्री वाल बनने में कितने दिन लगेगें? ठेकेदार ने जवाब दिया कि तीन चार दिन। उसके इस जवाब पर रिनपोछे जी ने अपने चिरपरिचित अंदाज में कहा कि और पीपल के पेड़ को बड़ा होने में 25-30 वर्ष लगते हैं आप इस बाउंड्री वाल को इस पेड़ को बचाते हुए टेढ़ा करके बना लीजिए संस्थान और ए. पी. गेस्टहाउस के बीच की बाउंड्री वाल और पीपल का वृक्ष आज भी वैसे ही है। कालचक्र मण्डप और कुलपति आवास की बाउंड्री वाल पर फैली पीपल के विशाल वृक्ष की जड़ें भौतिक विकास और प्रकृति के बीच की कसमसक का सुन्दर बिम्ब प्रस्तुत करती हैं। शोध छात्रावास के निर्माण के समय उसकी नींव की मिट्टी सामने खड़े पीपल के किनारे लगा दिए जाने से उसका तना जड़ में परिवर्तित हो गया था निर्माण कार्य पूरा हो जाने पर जब मिट्टी हटाई गई तो जड़ें जमीन के ऊपर दिखाई देने लगीं हैं जड़ों में लगी मिट्टी को छोड़कर उसे संरक्षित कर दिया गया है । दोनों छात्रावास के बीच यह वृक्ष आज भी अपनी विशिष्ट पहचान के साथ खड़ा है। ग्रंथालय के सामने की लान के दक्षिणी किनारे पर स्थित विशाल पीपल, जिसके नीचे प्रतिवर्ष बुद्धपूर्णिमा का आयोजन किया जाता है, एक वर्ष आँधी तूफान में यह पेड़ गिर गया तब इसके संरक्षण हेतु इसकी मोटी डालियों को काट कर इसे पुनः खड़ा कर दिया गया । आज यह वृक्ष पुनः अपने प्राचीन स्वरूप को प्राप्त कर चुका है । ठीक इसी तरह के प्रयास से छात्रावास के सामने के पीपल के वृक्ष को भी संरक्षित किया गया है। ऐसे कितने ही अलिखित उदाहरणों के फलस्वरूप ही आज संस्थान में प्रकृति का यह वैभव दिखाई दे रहा है। पर्यावरण दिवस गाँधी जयंती आदि पर्वों पर होने वाले नियमित वृक्षारोपण, संस्थान के सोवा-रिग्पा विभाग द्वारा कालचक्र परिसर में स्थापित औषधीय पौधों का उद्यान तथा संस्थान के प्रत्येक कोने में स्थित फुलवारी और सजावटी पौधों के बगीचों के प्रति कुलपति महोदय तथा अनुरक्षण अनुभाग की सक्रियता और उत्साह परिसर की हरियाली का प्रमुख कारक तत्त्व है। साथ ही यह इस बात का भी द्योतक है कि यदि थोड़ी-सी भी संवेदनशीलता के साथ प्रकृति के साथ व्यवहार किया जाए तो भौतिक विकास को प्रकृति और अधिक सुन्दरता ही प्रदान करेगी उसे सरस और जीवन्त बनाएगी। वर्षा जल संरक्षण, ठोस अपशिष्ट निस्तारण हेतु संस्थान में स्थापित की गई प्रणाली और संयंत्र, नवीकृत ऊर्जा हेतु

सौर ऊर्जा संयंत्र की स्थापना हेतु संस्थान द्वारा किये जा रहे प्रयास यह सिद्ध करने के लिए पर्याप्त हैं कि पर्यावरण का संरक्षण इस संस्थान की शीर्ष वरीयताओं में से एक है।

संस्थान के साथ लम्बे समय से जुड़े लोग बताते हैं कि संस्थान के भवनों के निर्माण से पहले इस जगह पर आम का बगीचा था, जिसमें आम के अतिरिक्त और भी अनेक पेड़ थे, किन्तु विशेष तथ्य यह है कि संस्थान के सभी प्राचीन भवनों के निर्माण के लिए केवल छः पेड़ों को ही काटा गया था, यथासम्भव जो पेड़ जहाँ थे आज भी वहीं पर हैं। जिसके कारण प्रतिवर्ष आम के मौसम में फल से लदे पेड़ों के दर्शन और पकने पर शुद्धतम आम के फलों का अस्वाद हम सभी को प्राप्त होता है। संस्थान में आम के अतिरिक्त बेल, जामुन, कमरख, लीची व संतरे के भी वृक्ष हैं जिनमें से आम व कटहल के पेड़ों की फसल की तो नीलामी हो जाती है और ठेकेदार के रक्षक उन्हें बन्दरों आदि से बचाते भी हैं किन्तु शेष, फलदार वृक्ष प्राकृतिक रूप से फलते बढ़ते हैं, संस्थान के भवन निर्णाण में कार्यरत बाहरी मजदूरों के बच्चों के अतिरिक्त कभी भी किसी छात्र-छात्रा या कर्मचारी को पेड़ पर पत्थर मार कर फल तोड़ते हुए नहीं देखा गया। ये सभी फल संस्थान के इस पर्यावरण में निवासरत जीव जन्तुओं का सहज आहार होते हैं। और इसके कारण संस्थान परिसर सैकड़ों की संख्या में चहकती गिलहरियों, रंग बिरंगी अनेक प्रजाति की चिड़ियों और असंख्य छोटे जीव जन्तुओं के कलरव से सदैव पुलकित रहता है। गर्मी के मौसम में कभी शहर की तरफ से वापस आने पर परिसर के अन्दर और बाहर के तापमान का अन्तर स्पष्टतः महसूस किया जा सकता है। प्रातः काल पूरा परिसर विभिन्न प्रजाति की छोटी-बड़ी चिड़ियों के कलरव से सतत् गुंजित होता रहता है। संस्थान में सुबह की सैर करने से एक विशेष आनन्द की अनुभूति होती है, प्रातःकाल विशेष रूप से मोर, बुलबुल, तोता, मैना, मुनिया, गौरैया, कोयल, नीलकंठ, कबूतर, कौआ, महर के साथ-साथ कभी-कभी तीतर, हारिल आदि दुर्लभ पक्षियों के भी दर्शन परिसर में होते हैं।

संस्थान के संस्थापक व पूर्व निदेशक भिक्षु सम्दोंग रिनपोछे जी के बारे में एक विशेष बात यह बतायी जाती है कि वह संस्थान के सभी छोटे-बड़े पेड़ों की स्थिति की जानकारी रखते थे तथा उसमें तनिक भी परिवर्तन उनकी नजरों से बच नहीं पाता था। रिनपोछे जी के जीव व प्रकृति प्रेम की अनेक घटनाओं के प्रत्यक्षदर्शी आज भी संस्थान में सेवारत हैं, उनमें से एक विजय माली है। उसने एक विशेष घटना का जिक्र करते हुए बताया कि उस समय रिनपोछे साहब बुद्धकुटी आवास में रहते थे और विजय माली उनकी सेवा में रहता था। साहब बाथरूम में लगे बाथटब में कभी स्नान नहीं करते थे । वे कहते थे कि उसमें कोई रहता है। एक दिन साहब की अनुपस्थिति में विजय माली ने कौतूहलवश यह जानने की कोशिश की साहब यहाँ किसके रहने की बात करते हैं। वह एक छड़ी लेकर टब के आस पास खटखटाने लगा, तो पाइप के पास इन्हें एक काला सर्प दिखाई दिया उसे निकालने के प्रयास में सर्प ने उस पर हमला कर दिया लेकिन विजय माली

बाल-बाल बच गया और डर कर भाग गया। रिनपोछे जी जब आवास में वापस आये तो बिना बताए ही जान गये और विजय माली को डांटा कि तुमसे कहा था कि वहाँ कोई रहता है लेकिन फिर भी तुमने बात नहीं मानी।

इसी तरह की एक घटना नए निदेशक निवास में भी घटित हुई । शाम हो गयी थी । अपनी ड्यूटी समाप्त कर गंगा ड्राइवर को घर जाना था। उसकी साइकल गैरेज में रखी थी जब वह साइकल लेने गैरेज की ओर गया तो उन्हें गैरेज के गेट पर एक विशाल काला सर्प बैठा हुआ दिखाई दिया उन्होंने उपस्थित लोगों को बताया और सभी लोग भयवश उसे हटाने के बारे में बात करने लगे, इसी बीच कई लोगों की बातचीत की आवाज सुनकर रिनपोछे जी आवास से बाहर आ गये, कारण जानने पर वह स्वयं जाकर उस सर्प के पास जाकर खड़े हो गए और गंगा से कहा कि जाओ अपनी साइकल निकाल लो । वह सर्प उसी तरह निर्भय बैठा रहा और गंगा साइकल निकाल लाया। इसके बाद अन्य सेवकों ने पूछा कि साहब गैरेज का गेट कैसे बन्द होगा ? साहब ने कहा कि गेट खुला रहने दो और आप लोग अपना-अपना काम करो।

रिनपोछे जी के कुछ इसी तरह के करुणामय सम्बन्ध परिसर में रह रहे श्वानों के साथ भी थे, श्री सीडोन जी ने बताया कि साहब अपने कन्धे पर लटकाने वाले थैले में एक-दो पैकेट मेरीगोल्ड बिस्किट जरूर रखते थे जो परिसर के श्वानों के लिए ही होते थे। एक दिन साहब अपने कार्यालय से बाहर निकले तो उनके थैले में बिस्किट नहीं थे, कार्यालय के बाहर ही कुछ श्वान उनके पास आ गए, रिनपोछे जी ने कार्यालय खुलवाया और बिस्किट निकाल कर कार्यालय के बाहर रखे सोफे पर बैठ गए और सभी को इत्मीनान से बिस्किट खिला कर ही आवास में गए। विजय जी बताते हैं कि अक्सर इनके साथ रहने वाला कुत्ता रिनपोछे जी के साथ-साथ उनके चैम्बर में अन्दर आ जाता था वह उसे प्यार से बाहर जाने को कहते और वह चला जाता।

इस जीव प्रेम का उदाहरण आज भी संस्थान के अतिश सभागार में आयोजित किसी भी कार्यक्रम में कभी भी कैम्पस में रह रहे श्वानों का निर्भय आवागमन व विद्वानों के सम्भाषण के बीच उन्हें विश्राम करते अंगड़ाई लेते देखे जा सकता है।

जीव प्रेम और पर्यावरण साहचर्य के इस भाव को संस्थान के छात्र-छात्राओं ने भी बखूबी निभाया है। संस्थान के एक छात्र, जो अपने छात्र जीवन से ही शाकाहार और जीव-रक्षा के आन्दोलन से जुड़ गये थे, वे आज भी तिबतन वालन्टियर फॉर एनीमल नामक एक संस्था का गठन कर पूर्ण रुपेण स्ट्रीट डाग्स के लिए काम कर रहे हैं। संस्थान में भी डाग्स डॉक नामक छात्रों का एक समूह परिसर के श्वानों के टीकाकरण और उपचार का कार्य नियमित रुप से करता है। भारत सरकार के स्वच्छता अभियान के लागू होने के बहुत पहले से ही संस्थान के छात्र-छात्राओं का एक समूह पर्यावरण संरक्षण और पालिथीन विहीन, धूम्रपान रहित परिसर के लिए निरन्तर

क्रियाशील है। एक अन्य छात्र समूह आसपास के गाँवों के गरीब बच्चों की शिक्षा व संस्कार के क्षेत्र में निरन्तर कार्यरत है।

बाढ़-विभीषिका, महामारी जैसी आपदाओं में पीड़ित मानवता की सहायता हेतु संस्थान परिवार के सभी सदस्य बढ़-चढ़ कर भागीदारी करते हैं तथा हर सम्भव मदद हेतु प्रयासरत रहते हैं, और संस्थान परिवार द्वारा व्यापक व्यवस्था कर जरूरतमंद लोगों तक सहायता पहुँचाने का प्रयास किया जाता है। अभी हाल ही में केरल के बाढ़ पीड़ित इलाकों में संस्थान द्वारा पहुँचायी गयी सहायता तथा कोरोना काल में सारनाथ के आस पास के गाँवों में आजीविका विहीन जरूरतमंद परिवारों की मदद तथा कोरोना के कारण लागू बंदी में विस्थापित हो रहे लोगों की राजमार्गों पर जाकर संस्थान के सदस्यों द्वारा प्रदान की गयी संस्थागत मदद के प्रयास स्तुत्य व अनुकरणीय हैं।

संस्थान परिवार के मुखिया तथा सम्बन्धित विभागों व छात्र-छात्राओं सहित संस्थान परिवार के सभी सदस्यों के पर्यावरण के प्रति आदर भाव के कारण ही संस्थान का हरा भरा शांत परिसर प्रत्येक आगंतुक को आकर्षित करता और लुभाता है । परिसर के फूल-पौधों से सौन्दर्यीकरण व स्वच्छता हेतु संस्थान को जनपद स्तरीय व मंडल स्तरीय अनेक पुरस्कार व सम्मान प्राप्त हुए हैं तथा परिसर की प्रकृति व पर्यावरण को देखने के बाद यह भाव स्वतः ही मन में आता है कि सभी अध्ययन केन्द्रों के परिसर इसी तरह हरे भरे शान्त और प्रकृति से सामन्जस्य के साथ स्थापित किये जाने चाहिए । यह केवल हमें देखने में ही सुन्दर नहीं लगता बल्कि प्रकृति का साहचर्य हमारी एकाग्रता और ग्राह्यता को बढ़ता है, जो किसी भी शैक्षणिक संस्था के सभी सदस्यों के लिए अपरिहार्य रुप से आवश्यक है।

प्रलेखन अधिकारी
के.उ.ति.शि.सं., सारनाथ, वाराणसी
मो.नं-. 9452073073

परोपकार – सबसे बड़ा धर्म

एक संस्मरण

—प्रमोद सिंह—

परोपकार शब्द 'पर और उपकार' शब्दों से मिलकर बना है, जिसका अर्थ है दूसरों के हित के लिए किया जाने वाला कार्य जिसमें कोई अपना स्वार्थ न हो।

कहते हैं कि मनुष्य जीवन तभी सार्थक होता है, जब हमारे अंदर परोपकार की भावना हो। हमें बच्चों के अन्दर शुरू से इसकी भावना सिखानी चाहिए। अच्छा तो यही होगा कि हम स्वयं परोपकारी बनें, जिसे देखकर बच्चे अपने आप सीखेंगे और उसका पालन कर परोपकारी बनेंगे।

यह घटना उस समय की है जब मैं सन् 1996 में हाईस्कूल की परीक्षा की तैयारी कर रहा था। हमारे देश में बेरोजगारी एक चुनौती के रूप में सदा ही रही है और वह दौर भी इससे परे नहीं था। अतः हाईस्कूल में होने के बावजूद हम रोजगार पाने की चिंता किया करते थे। यद्यपि, पिताजी बैंक में अधिकारी थे, तथापि वे अपनी ओर से इन चुनौतियों की जानकारी हमें दिया करते थे।

उन दिनों भारतीय रेलवे एक परीक्षा का आयोजन कराती थी। हाईस्कूल में पढ़ रहे छात्र उस परीक्षा को पास कर रेलवे के व्यावसायिक पाठ्यक्रम में प्रवेश प्राप्त कर अठारह वर्ष की आयु में टिकट संग्रह/काउंटर संग्रह आदि कार्यों पर नियुक्त हो सकते थे। अतः बेरोजगारी को एक चुनौती समझ मैंने भी उस परीक्षा के लिए 16 वर्ष की आयु में आवेदन कर दिया। एक-दो माह पश्चात् मुझे डाक द्वारा परीक्षा प्रवेश-पत्र प्राप्त हुआ। मेरा परीक्षा केन्द्र लखनऊ में था। मेरे छोटे भाई ने भी फार्म भरा था, उसे भी परीक्षा प्रवेश-पत्र मिला तथा उसका परीक्षा-केन्द्र भी लखनऊ में ही था। हालाँकि परीक्षा-केन्द्र दोनों के अलग-अलग थे।

हम दोनों भाइयों ने पिताजी से परीक्षा देने के लिए लखनऊ जाने की आज्ञा चाही। यह एक अलग बात है कि हमारे अन्दर परीक्षा के साथ-साथ लखनऊ शहर घूम कर आने की एक लालसा ने भी जन्म ले लिया था। पिताजी का हमारे साथ लखनऊ जाना सम्भव नहीं हो पा रहा था, अतः उन्होंने इस काम पर हमारे आदरणीय चाचाजी को लगा दिया। फिर हम दोनों भाई अपने चाचाजी के साथ रात्रि में लखनऊ के लिए निकल पड़े। सुबह लखनऊ पहुँचने पर यह जानकारी प्राप्त हुई कि हम दोनों भाइयों के परीक्षा केन्द्र एक दूसरे से बहुत ज्यादा दूरी पर हैं और चाचाजी के लिए यह सम्भव नहीं था कि वे हम दोनों भाइयों को अलग-अलग परीक्षा केन्द्रों पर यथासमय स्वयं पहुँचा सकें। उस समय न तो मोबाइल हुआ करते थे, न ही गूगल मैप। ले-देकर सहारा लैंड-लाइन फ़ोन ही थे या फिर आपसी सम्पर्क। लिहाजा, चारबाग स्टेशन पर यह तय

हुआ कि चाचाजी छोटे भाई को लेकर उसके केन्द्र पर जाएँगे और मैं अपने केन्द्र पर अकेले। परीक्षा के पश्चात् चारबाग स्टेशन पर ही सभी मिलेंगे।

निर्धारित योजना के अनुसार मैंने वहाँ के लोगों से स्थान की जानकारी प्राप्त कर एक सवारी गाड़ी (विक्रम आटो) चौक जाने के लिए पकड़ी। वहाँ से आगे का रास्ता पैर-रिक्शा से तय करना था। विक्रम गाड़ी में उत्सुकतावश मैंने एक बुजुर्ग व्यक्ति से अपने परीक्षा केन्द्र पर पहुँचने के सम्बन्ध में जानकारी माँगी तो वह बुजुर्ग व्यक्ति घबरा गया तथा मेरे ऊपर यह कहते हुए चिल्लाने लगा कि 'तुम अकेले कैसे बनारस से यहाँ परीक्षा देने आ गए, कैसे जाओगे, तुम्हें कोई लूट लेगा, तुम पहले चौक उतरते ही पुलिस स्टेशन जाओ।' साथ ही वह ड्राइवर से कहने लगा कि तुरंत इस बच्चे को पुलिस स्टेशन ले चलो, यह खो जाएगा लखनऊ में इत्यादि इत्यादि ... । मैं उनकी बात सुनकर घबराने लगा कि यह क्या हो गया। परंतु, तभी उसी सवारी गाड़ी मैं बैठे लखनऊ विश्वविद्यालय के दो छात्रों ने बुजुर्ग व्यक्ति से शांत रहने का आग्रह किया और मुझसे मेरा प्रवेश पत्र माँगकर परीक्षा-केन्द्र के बारे में जानकारी प्राप्त की। इसके पश्चात् उन्होंने बुजुर्ग व्यक्ति एवं मुझे आश्वासन दिया कि वे मुझे मेरे गंतव्य स्थल तक पहुँचा देंगे। फिर भी वे बुजुर्ग व्यक्ति चौक पहुँच जाने तक कुछ न कुछ बड़बड़ाते ही रहे।

चौक पहुँचने पर उन छात्रों ने मुझे उस सवारी गाड़ी का भाड़ा भी नहीं देने दिया, अपितु स्वयं ही उसका भुगतान कर दिया। उन्होंने मेरा हौसला बढ़ाया तथा मेरे मना करने के बावजूद चौक स्थित एक भोजनालय में मुझे नाश्ता कराया। उसी दौरान उन्होंने मुझसे मेरे विषय में कुछ जानकारियाँ लीं यथा मेरा घर कहाँ है, पिताजी क्या करते हैं, फोन नम्बर क्या है इत्यादि। नाश्ते के पश्चात् उन्होंने मुझसे बताया कि चूँकि उनकी कक्षा का समय हो गया है, लिहाजा वे मुझे मेरे परीक्षा केन्द्र तक तो नहीं पहुँचा पायेंगे, किन्तु वहाँ तक जाने के लिए रिक्शे का प्रबन्ध कर देंगे। इसके पश्चात् उन्होंने एक रिक्शेवाले को इशारा कर बुलाया एवं मेरे परीक्षा केन्द्र की स्थिति समझाकर उसे पैसे देते हुए सहेजा कि मुझे मेरे केन्द्र तक पहुँचा दे। फिर उन्होंने मुझसे कहा- "यह रिक्शेवाला तुम्हें तुम्हारे परीक्षा-केन्द्र तक पहुँचा देगा और इसे पैसे देने की जरूरत नहीं है।" मैंने उन्हें पैसा वापस करने का बहुत प्रयास किया, परन्तु वे मुझे मेरी परीक्षा हेतु शुभकामनाएँ देते हुए चले गये।

मैंने सकुशल परीक्षा-केन्द्र पहुँचकर परीक्षा दी तथा परीक्षा के पश्चात् चारबाग स्टेशन वापस आ गया और वहाँ से चाचाजी के साथ बनारस। अगले दिन बनारस पहुँचकर मैं अपनी सामान्य दिनचर्या में व्यस्त हो गया। रात्रि लगभग नौ बजे पिताजी मुझे आवाज़ देने लगे और बोले लखनऊ से तुम्हारे लिए कोई फोन आया है। जैसे ही मैंने फोन उठाया, उधर से आवाज़ आई- "और... कैसी रही परीक्षा?"जब तक मैं कुछ समझ पाता तब तक उन्होंने अपना परिचय उन्हीं छात्रों के रूप में दिया, जिन्होंने लखनऊ में मेरी मदद की थी। आज मुझे यह वाकया बड़ा

अविश्वसनीय सा लगता है, किन्तु निश्चित रूप से इस घटना ने मेरे अन्दर परोपकार की एक भावना जगाई। मैं परीक्षा में तो सफल हो गया, किन्तु यह प्रेरणा मेरे जीवन के लिए उस सफलता से भी ज्यादा महत्त्वपूर्ण रही। उस घटना का साक्षी होने के कारण मेरा हमेशा यह प्रयास होता है कि जितना हो सके दूसरों के हित में कार्य कर सकूँ।

अतः मैं यही कहना चाहूँगा कि चाहे कितना भी धन, पद, प्रतिष्ठा व्यक्ति अर्जित कर ले, किन्तु यदि उसके अन्दर परोपकार की भावना ने जन्म नहीं लिया तो सब कुछ व्यर्थ है। परोपकार की भावना ही सबसे बड़ा धर्म है। जैसा कहा भी गया है- "परहित सरस धरम नहिं भाई" या "परोपकाराय सतां विभूतयः"। यह भी अति महत्त्वपूर्ण है कि आने वाली पीढ़ी को इस दिशा में प्रेरित किया जाय। इसके लिए आवश्यक है कि इस तरह के कार्य करके नई पीढ़ी के समक्ष हमें उदाहरण प्रस्तुत करना चाहिए।

सहायक कुलसचिव
के.उ.ति.शि.सं., सारनाथ, वाराणसी
मो.नं.-9958391967

नेपाल में वज्राचार्य अभिषेक की परम्परा एवं पूजा पद्धति

—डॉ. विजयराज वज्राचार्य—

प्रस्तुत निबन्ध में नेपाल में शताब्दियों से चली आ रही मन्त्रनय चर्या के एक अभिन्न एवं महत्त्वपूर्ण अंग 'वज्राचार्य अभिषेक की परम्परा' का वर्णन किया गया है। यह परम्परा वज्रयान अथवा मन्त्रयान का अनुपालन करने वाले सभी महायानी बौद्ध विहारों में विद्यमान है। इस निबन्ध में नेपाल में स्थित 'यशोधर महाविहार' नामक सुप्रसिद्ध विहार में प्रचलित वज्राचार्य अभिषेक परम्परा का वर्णन किया जा रहा है।

विद्याधर द्वारा संस्कारित 'यशोधर महाविहार' संघ के सदस्यगण विहार परिसर में रहकर विभिन्न प्रकार के धार्मिक कर्मकाण्डों को सम्पन्न करते हैं। धार्मिक कर्मकाण्डों में आचार्य दीक्षा एक प्रमुख कर्मकाण्ड है। यह कर्मकाण्ड केवल वज्राचार्यों के पुत्रों के लिये ही अनिवार्य है। शाक्य लोग भी इस विहार के सदस्य होते हैं, लेकिन उनके लिये यह कर्मकाण्ड अनिवार्य नहीं होता है। वे लोग वज्रयान परम्परा एवं संस्कृति के पुरोहित नहीं बन सकते हैं। जो लोग परम्परागत वज्राचार्य हैं और जिन्होंने वज्राचार्याभिषेक[1] प्राप्त कर लिया हैं, वही लोग पुरोहित का कार्य करने में सक्षम और उत्तराधिकारी होते हैं। वज्राचार्यों के कुलपुत्रों को इस अभिषेक को लेना अनिवार्य होता है। वे शिक्षा, दीक्षा में निपुण होकर वज्राचार्याभिषेक ग्रहण कर 'वज्राचार्य' पद प्राप्त करते हैं। वज्राचार्य बनने की इस परम्परा ने आज भी नेपाल में वज्रयान को जीवित बनाये रखा है। 14वीं शताब्दी में मल्ल राजाओं के द्वारा मनुष्य को कार्य के अनुसार जात-पाँत में विभाजित किया गया[2], जिसके कारण वज्राचार्य भी मजबूरन एक जाति के रूप में कहलाने लगे। इस तरह भारत में प्रचलित वर्ण एवं जाति-व्यवस्था के नमूने पर अन्य व्यावसायिक समूहों की भाँति वज्राचार्यों को जाति का नाम देकर वज्राचार्य पद के महत्व को शनैः-शनैः कम कर दिया गया।

स्वयम्भूपुराण के अनुसार वज्राचार्यों की परम्परा शान्तिकराचार्य के समय से चली आ रही है। वज्राचार्य परम्परा के अनुसार वज्रसत्त्व को निर्माणकाय स्वरूप भी कहते हैं। उक्त वज्राचार्य लोग सूत्र-शास्त्रों में पारंगत होते हैं। वज्राचार्य तन्त्र-मन्त्रों की साधना कर तन्त्र में मर्मज्ञ तथा चौसठ विद्याओं में पारंगत होकर सभी प्रकार से ''बहुजन हिताय बहुजन सुखाय'' सिद्धान्त का अनुसरण करते आ रहे हैं। परम्परागत रूप से बौद्ध कर्मकाण्ड, पूजा-

---

1. इसे नेवारीभाषा में आचार्याभिषेक या आचा लुयगु नाम से भी पुकारा जाता है।
2. सर्वप्रथम नेपाल देश में जात-पाँत का विभाजन करनेवाले राजा जयस्थिति मल्ल थे। उन्होंने परम्परागत पेशेवर समूहों को जाति में बदल दिया था।

पाठ, कुण्डली देखना, मन्त्रों द्वारा झाड़-फूँक आदि का कार्य करते हुए आज भी वज्राचार्य लोग बोधिसत्त्वचर्या पथ पर निरन्तर चले आ रहे हैं।

वज्रयानी बौद्धधर्म में नियमानुसार विहार, गोन्पा, बहाल, बहिल इत्यादि में जाकर विद्वान् स्थविर के समीप विनयपूर्वक बैठकर, अध्ययन, शिक्षा-दीक्षा प्राप्त कर बौद्धचर्या में संलग्न व्यक्ति ही वज्राचार्य बन सकते हैं। यह वज्राचार्य पद अतिदुर्लभ रहा है। भिक्षु या वज्राचार्य बनने वालों को बौद्ध विधि के अनुसार पहले श्रामणेर बनना जरूरी है। बालक को 12 वर्ष के अन्दर स्थविर के पास ले जाया जाता है। वहाँ उसका मुण्डन किया जाता है और चूड़ाकर्म करते समय बची चोटी को भी काट दिया जाता है। शिक्षा ग्रहण कराकर उसे चीवर पहनाया जाता है। कुंधार, सिसलाकू (धर्मदण्ड), पिण्डपात्र और प्रव्रज्यासंवर देकर भिक्षु बनाते हैं। भिक्षु बनाकर विहार में ही भिक्षुचर्या पालन कराते हैं। आरम्भ से बौद्धशास्त्रों का अध्ययन कराते हैं। चार वर्ष, दस वर्ष, सोलह वर्ष, बीस वर्ष, पच्चीस वर्ष तक या जब तक अध्ययन की जरूरत है, तब तक उसे अध्ययन कराते हैं। जब अध्ययन पूरा हो जाता है, या अध्ययन से उसकी तृप्ति हो जाती है, तब उसको चीवर छुड़वाते हैं। इसके बाद ही वह व्यक्ति पाणिग्रहण (विवाह) कर सकता है। शिक्षा-दीक्षा से पूर्ण ऐसे व्यक्ति को ही वज्राचार्य अभिषेक देते हैं। ऐसा अभिषिक्त व्यक्ति ही वज्राचार्य कहलाता है।

इस महाविहार में वज्राचार्याभिषेक 10-12 वर्ष से अधिक उम्र के बालकों को विवाह से पूर्व देने की परम्परा है। यदि किसी कारणवश वे समय पर वज्राचार्याभिषेक नहीं ले पाते तो विवाह के समय शक्तिस्वरूप अपनी पत्नी के साथ अभिषेक ग्रहण किया जाता है। वज्राचार्याभिषेक सामूहिक रूप से भी लिया जाता है। एक समूह में 8 से 10 सदस्य हो सकते हैं। वज्राचार्याभिषेक का अधिकार वज्राचार्यों को उत्तराधिकारी के रूप में मिलता है। इस प्रकार वज्राचार्याभिषेक केवल वज्राचार्य ही ग्रहण कर सकते हैं, शाक्य नहीं। प्राचीनकाल में वज्राचार्याभिषेक कर्मप्रधान था। उस समय विहार के गुरु के सान्निध्य में रहकर पूर्णरूप से विनय का पालन करते हुए बौद्धधर्म की शिक्षा-दीक्षा पूर्णकर बौद्धधर्म के अनुसार विशुद्ध चर्या करने वाले, स्वाध्याय में रत शास्त्रज्ञ को ही वज्राचार्याभिषेक प्रदान किया जाता था। किन्तु बाद में धीरे-धीरे विहारों की कार्यपद्धति तथा लोगों की जीवनशैली में भी परिवर्तन होता चला गया। वज्राचार्याभिषेक ग्रहण करने वालों की संख्या में कमी आ गयी। जैसे-जैसे समाज में मनुष्य के जीवन की व्यस्तता बढ़ती चली गयी, वज्राचार्याभिषेक के नियमों में भी शिथिलता आती गयी। धीरे-धीरे इसमें यहाँ तक परिवर्तन हो गया कि यदि कोई 10-12 वर्ष तक या विवाह होने तक वज्राचार्याभिषेक नहीं ले पाया हो, तो विवाह के पश्चात् बच्चे होने से पहले अभिषेक ग्रहण कर सकता है। लेकिन फिर भी बहुत से लोग विवाह के पश्चात् सन्तान प्राप्ति से वज्राचार्याभिषेक भी प्राप्त नहीं कर पाये। सन्तान प्राप्ति के

बाद उन लोगों को वज्राचार्याभिषेक से वंचित कर दिया गया। इस प्रकार वज्राचार्याभिषेक से वंचित लोगों को 'बन्देजु' तथा जिन लोगों ने वज्राचार्याभिषेक प्राप्त किया, उन्हें 'वज्राचार्य' कहा जाने लगा। बाद में वज्राचार्य एक जाति के रूप में भी कहलाने लगे तथा वज्राचार्य जाति के आधार पर ही वज्राचार्याभिषेक प्राप्त करने का प्रचलन हुआ। शाक्य (बन्देजु) लोग हमेशा के लिए इससे वंचित कर दिये गये।

शाक्य भिक्षु लोग भी स्वयम्भूपुराण की परम्परानुसार विहारों, मठों में निवास कर भिक्षुचर्या ग्रहण करते आ रहे हैं। कौशल नरेश प्रसेनजित का पुत्र विरुधक के आक्रमण के पश्चात् कपिलवस्तु ध्वस्त होने पर वहाँ के शाक्य लोगों ने शरणार्थी के रूप में काठमाण्डू में प्रवेश किया। ''मूलसर्वास्तिवाद विनय'' के अनुसार उपस्थापक भिक्षु आनन्द का नेपाल में प्रवेश करना इस कथन की पुष्टि करता है[1]। ऐसी जनश्रुति भी है कि वाराणसी से नेपाल आकर क्षत्रीयगण भी शाक्य बने। कालान्तर में शाक्य लोग विभिन्न व्यवसायों में संलग्न होकर गृहस्थ जीवन व्यतीत करने लगे और बाद में अधिकतर शाक्यों ने सोना, चाँदी, जवाहरात इत्यादि के आभूषण बनाने का कार्य अपना लिया।

वज्राचार्य संघ

प्रत्येक पुरुष वज्राचार्य को सर्वसंघ (विहार) का सदस्य होना अनिवार्य होता है। पृथक्-पृथक् विहारों के सर्वसंघ में सदस्यों की संख्या अलग-अलग होती है। अनुमानत: विहार के संघ सदस्यों की कुल सदस्य संख्या के आधे लोग वज्राचार्याभिषिक्त हैं। यह संख्या परिवार के पुरुष सदस्यों की संख्या पर निर्भर करती है। जो आचार्याभिषिक्त हैं उनकी नामावली गुठी (संस्थान) पुस्तिका में दर्ज होती है[2]। इसी सूची के वरिष्ठताक्रम के अनुसार सदस्यों को द्य पाला (= पुजारी) का दायित्व सौंपा जाता है।

विहार में आचार्याभिषेक प्राप्त करने के दो स्थान हैं। पहला विहार में शाक्यमुनि बुद्ध के सामने (= मुख्य मन्दिर में), दूसरा दीगी (= आगमघर) में पहले स्थान पर कुलपुरोहित आचार्याभिषेक प्रदान करते हैं, दूसरे स्थान पर ऐसे पुरोहित जो कि कुलपुरोहित वंश से सम्बद्ध नहीं हैं, आचार्याभिषेक प्रदान करते हैं।

वज्राचार्याभिषेक के लिए पूर्व तैयारियाँ

वज्राचार्याभिषेक के लिए सबसे पहले अभिषेक लेने वाले व्यक्ति को कुछ कर्मकाण्ड अनिवार्य रूप से सीखने होते हैं, जैसे– 1. गुरुमण्डलपूजा, 2. समाधि लगाना, 3. पूजा

---

1. द्र०- मिडिएवल नेपाल, कोलोफोन्स एण्ड इन्स्क्रीप्सन्स- हेमराज शाक्य, टि० आर० वैद्य, पृ० 20, काठमाण्डौ, नेपाल, 1970
2. सर्वसंघ के सदस्यों की संख्या घटती-बढ़ती रहती है, इसलिये संख्या नहीं लिखी गयी है। ठीक-ठीक संख्या की जानकारी विहार से मिलेगी।

करना, 4. नृत्य करना, 5. हस्तमुद्रा बनाना, 6. चचा (=चर्या) गीत गाना इत्यादि। यह सब क्रियाएं क्रमश: गुरु से सीखी जाती हैं। इन क्रियाओं को सीखने के लिये न्यूनतम तीन महीने का समय लगता है। इस प्रकार गुरु-शिष्य को इस कर्मकाण्ड द्वारा शास्त्रों में अभिषेक लेने से पहले पारंगत बना देते हैं। लेकिन दुर्भाग्यवश तीन माह तक होने वाले प्रशिक्षण कार्य आजकल कुछ ही दिन या हफ्तेभर में समाप्त करने का प्रचलन हो गया है। इसलिये इस अभिषेक से सम्बन्धित जो क्रियाएं जैसे मुद्रा, चर्यागीति आदि लुप्त होती जा रही हैं। वज्राचार्याभिषेक के अन्तर्गत मन्त्राभिषेक लेने का प्रावधान है। इसमें गुरु के द्वारा शिष्य को कान में गुह्य 'बीजमन्त्र' दिया जाता है। अतिगुह्य होने के कारण बगल में बैठे व्यक्ति को भी यह मन्त्र ज्ञात नहीं हो पाता है। मन्त्राभिषेक शुभ मुहूर्त में लिया जाता है। इस गुह्यमन्त्र को आगमघर में ही गुप्तरूप से दिया जाता है।

वज्राचार्याभिषेक के मूलाचार्य

वज्राचार्याभिषेक के लिये अपने घर का बुजुर्ग ही मूलाचार्य होता है। इसी प्रकार अपने गुरु उपाध्याय बनते हैं। यदि घर का बुजुर्ग आजु (= स्थविर) से नीचे का है अथवा स्थविर नहीं बना है तो मूलाचार्य नहीं बन सकता। किसी कारणवश घर का अन्य सदस्य मूलाचार्य (= पूजा के समय यजमान का साथ देने वाला) नहीं है तो ऐसी अवस्था में स्वयं गुरु ही मूलाचार्य और उपाध्याय बन जाता है। वज्राचार्याभिषेक प्राप्त होने के बाद ही आचार्याभिषिक्त व्यक्ति स्वयं ही मूलाचार्य होता है और उसके गुरु उपाध्याय होते हैं। उसकी पत्नी यजमान बनती है।

वज्राचार्याभिषेक का विधि-विधान

वज्राचार्याभिषेक करते समय सबसे पहले ज्येष्ठ थकाली (= यजमान) या गुरु कलश, आदर्शज्ञान, सिन्दूर की डिब्बियाँ (= मन्दिर के सदृश पाँच तह वाली नक्कासी की गयी, जिसके गर्भगृह में सिन्दूर रखा जाता है) पात्र, सिन्दूर, मोहनी (= दीपभाण्ड) की स्थापना करके शून्य की पूजा करते हैं। वज्राचार्याभिषेक लेने वाले व्यक्ति को घर के बुजुर्ग, वृद्ध महिला बलिंपिया (= नजर उतारना) द्वारा मिट्टी के छोटे पात्र, जिसमें कोयले की अग्नि रखी रहती है, उसमें पीली सरसों को तीन बार मस्तक पर लगाकर उस अग्नि पात्र में डाला जाता है और इससे नजर उतारी जाती है। उसके पश्चात् स्थान ग्रहण के बाद पूजा का शुभारम्भ करते हैं। तदनन्तर गुरुमण्डल की पूजा की जाती है। गुरुमण्डल की पूजा समाप्त होते ही अर्थात् मण्डल विसर्जन होते ही निरंजन दीप, फँ (= पाथि), चाभी से मुखमण्डल की तीन बार परिक्रमा कराते हैं। इतना होने के पश्चात् मूलाचार्य द्वारा क्रमश: पंचाभिषेक (= मुकुट, वज्र, घण्टा, नाम, मन्त्र) देने का कार्य होता है।

पंचाभिषेक लेते समय एक-एक अभिषेक के पीछे कलशाभिषेक देना होता है । अभिषेक प्राप्त करने वाला व्यक्ति उपर्युक्त उल्लिखित पाँचों अभिषेक की क्रमश: पूजा करने के पश्चात् त्रि-शुद्धि (=काय-वाक्-चित्त) पद लेकर इस यशोधर महाविहार की परिक्रमा करता है । इसे 'गणचक्र' पूजा जाना कहते हैं । इस गणचक्र पूजा के समाप्त होते ही आचार्याभिषेक लेने वाले को अपनी भार्या (स्त्री) के द्वारा सुस्वागत के साथ दिगी (= आगमघर) में प्रवेश कराते हैं । तदनन्तर यज्ञादि कार्य के लिये यज्ञशाला के सामने बैठकर वज्राचार्य-अभिषेक पद प्राप्त करने वाला व्यक्ति-स्वयं ही मूलाचार्य बनकर पूजा संकल्प लेता है । उसमें शक्तिस्वरूप उसकी भार्या (स्त्री) यजमान बनकर समाधि में लीन होकर गुरुमण्डल की पूजा करती है । तदनन्तर विविध पूजा के साथ यज्ञ प्रारम्भ होता है । यज्ञ विसर्जन होते ही अपने घर की बुजुर्ग महिला सुस्वागत करते हुए गृह प्रवेश कराती है, तथा दही का सगुन[1] देते हैं । सगुन लेना समाप्त होते ही पुन: आगमघर में वापिस जाकर कुमारी साधना करते हुए पूजा प्रारम्भ करते हैं । कुमारी पूजा समाप्त करने के पश्चात् कुमारी भोज कराया जाता है । जब तक कुमारी भोजन नहीं कर लेती तब तक अभिषेक लेने वाले व्यक्ति को भूखा रहना पड़ता है । कुमारी भोज के पश्चात् अभिषिक्त व्यक्ति को पंचप्रसाद (= नैवेद्य) का हलका नाश्ता एवं भोजन कराते हैं । अन्त में दही वाला पकवान खाने के पश्चात् चर्यागीत गाने का प्रचलन है । इसे भू-चचा कहते हैं । इसमें कोलय, गजाजिन, हरिसिर, त्रिभुवन इत्यादि चर्यागीत गाते हैं । भोजन के पश्चात् पत्तल तथा पत्तल में बचे जूठन को फेंकने के लिये एक सदस्य को भेजते हैं जिसे नेवारी भाषा में कलं (= कल:) वाके छवयगु(=जूटा पत्तल इत्यादि को फेकवाना) कहते हैं । पत्तल फेंकने के पश्चात् पूजा प्रारम्भ करने के लिये प्रतिस्थापना कार्य प्रारम्भ होता है । इस पूजा को गणचक्र पूजा कहते हैं । इसे ही 'उवा' थनेगु(= भोजनादि पश्चात् जूठा पत्तल को विधि-विधान से उठाकर फेकवाना) कहते हैं । इस कार्य के लिये थापिं[2], धौ पतिं[3], सुकुन्दा (=दीपभाण्ड[4]), खासिबलि की

---

1. सगुन निम्न वस्तुओं को लिया या दिया जाता है– 1. दही, 2. हंस का अण्डा, 3. मछली (सूखी भुनी हुई) तथा मद्य ।
2. A clay or metal container used for keeping fermented beer during secret Buddhist Tantric ceremonies.
3. Two metalled containers usrd for keeping curd each having two boels, It is used during auspicious ceremonies like wedding ceremonics, and others.
4. A ritual lamp used as the representative of sun god an object of witness during the performance of any ritual ceremonies. It also contains the image of Ganesh. As a destroyer of obstaclers and bestower of success or accomplishments. It is artistically decorated by serpents or Nagas.

आवश्यकता पड़ती है। गुरुमण्डल बनाकर स्थापना करते हैं। इस उवा (=गणचक्र) पूजा में *जयं जयं नमामि श्रीधर्मधातु, वाणीश्वर, वज्रीधोरी, प्रमोदित, द्विभुज* आदि चर्यागीत गाते हैं। चर्यागीत गाने के क्रम में प्र*मादित चर्या* गाते समय नृत्य भी करना आवश्यक है। वैसे तो उवा (=गणचक्र) पूजा में मूल चर्यागीत गाने के अतिरिक्त लसतां (=मनसुखी) गीत (=दोहा) भी गाया जाता है। लसतां चर्यागीत गाने के पश्चात् 'अस्तदर' (=अष्टदल) चर्यागीत गाते हैं। तदन्तर दीप पूजा करके *दोम्वीर* चर्यागीत गाते हैं।

इस प्रकार विविध पूजा करते हुए अपने घर में धौ सगं (=दही के विशेष भोज्यपदार्थ का सगुन) तथा खें सगं (= हंस के अण्डे से बना विशेष भोज्यपदार्थ) द्वारा विशेष प्रकार के धार्मिक परम्परा से सगुन लेने के बाद आचार्याभिषेक के छठवें दिन का पूजाकार्य समाप्त होता है।

योगाचार पूजा

वज्राचार्याभिषेक प्राप्त व्यक्ति दूसरे दिन योगाचार पूजा करता है। इस पूजा को पीठपूजा भी कहते हैं। इस पूजा के लिए बहुत सी पूजा-सामग्री के साथ पंचधाला[1] और पंचथापिं[2] इत्यादि रखकर स्थापना करते हैं।

पंचयोगिनी का आह्वान करते हुए योगाचार पूजा में बैठकर मन्त्रसिद्धि प्राप्ति के लिए इसकी पूजा करते हैं। पहले इसकी पूजा वैष्णवी देवीपीठ[3] (= यपा) में जाकर की जाती है। वैष्णवी देवी के मन्दिर में जाकर पूजा करने में समस्या होने के कारण उस देवी के अंश को तान्त्रिक विधि-विधान के द्वारा शाखा विहार के नजदीक एक विहार (=पद्मावती विहार, न: बहाल) में लाकर स्थापित किया गया है और अब उसे भी पुनः लाकर महाविहार के प्रांगण में ही स्थापित कर दिया गया है।

इस पीठ पूजा में आचार्याभिषेक प्राप्त वज्राचार्य यज्ञशाला के सामने बैठकर पूजा आरम्भ करते हैं। प्रारम्भ से चर्यागीत का गाना आवश्यक होने के कारण इस पूजा में त्रिसमाधि की पूजा कर कलशपूजा करते हुए कलशार्चन चर्यागीत गाते हैं। इसके पश्चात् पंचधाला पूजा कर भानुमण्डल चर्यागीत गाते हैं। उसी प्रकार पंचथापि पूजा कर कुम्भनील चर्यागीत गाते हैं। फिर बलि देकर क्रमबद्ध रूप से तृणिं रोहिनी, त्रिचक्र, कोलय, जय-जय इत्यादि चर्यागीत के अतिरिक्त प्रसन्नतापूर्वक (लसता) भावविभोर होकर अन्य गीत भी गाते हैं। इतना सब करने के पश्चात् पंचयोगिनी विसर्जन करते हुए कलश में स्थित पुष्प को

---

1. A container for keeping Fermental beer in Tantric ceremonies.
2. उपर्युक्त चारों यन्त्र नेवारी बौद्ध परम्परी में बौद्ध तन्त्र के पूजा अभिषेक इत्यादि में यन्त्र के रूप में प्रयोग किया जाता है। यन्त्रों का नाम नेवारी भाषा में है।]
3. इस पीठ के बगल में श्मशान घाट होता है।

विधि के अनुसार उतार कर कलश का जल (प्रसाद) सभी को देते हुए टीका लगाने का कार्य होता है। इस दिन हंस के अण्डे को बलि देकर पूजा करते हैं, जिसे ''सिकाभू'' कहते हैं। उस समय भी भू-चर्यागीत गाते हैं।

वज्राचार्याभिषेक के अन्तिम कार्य के रूप में न:बहाल (=पद्मावती विहार स्थित वैष्णवी देवी 'देगुद्यो') के मन्दिर जाकर क्षेत्रपाल पूजा के रूप में वहाँ स्थापित गणेश के मन्दिर में पूजाकार्य समाप्त करते हैं।

उपर्युक्त सम्पूर्ण कार्य की समाप्ति के पश्चात् ''वज्राचार्याभिषिक्त व्यक्ति अपने घर के पूजा (=आगम घर) के कमरे में गुरुमण्डल समाधि की पूजा करते हुए आगमघर में स्थित देव-देवियों एवं बुद्ध धर्म तथा संघ का स्मरण इत्यादि दिनचर्या के रूप में नित्य पूजा-वन्दना करते हैं।

तत्पश्चात् इस व्यक्ति (=वज्राचार्य) को अपने यजमान के यहाँ जाकर पूजापाठ करने का अधिकार इसी दिन से ही मिल जाता है। उसको पूर्णरूप से वज्राचार्य की मान्यता मिल जाती है। इस प्रकार वज्राचार्याभिषेक प्राप्त कर व्यक्ति समाज में परम्परा के अनुसार जन्म से लेकर मृत्यु तक विभिन्न प्रकार के कर्मकाण्डों का निर्वाह करते हुए अपना जीवन यापन करते हैं। समय एवं स्थिति के परिवर्तन के साथ-साथ वज्राचार्याभिषिक्त व्यक्ति कम होते जा रहे हैं। समाज में यह परम्परा धीरे-धीरे टूटती जा रही है। इस परम्परा को जीवित एवं सुचारु रूप से चलाने के लिये युवा वज्राचार्यों को विशेष प्रकार की शिक्षा तथा प्रशिक्षण देना जरूरी है, इसके महत्त्व को बतलाते हुए शोधकार्य भी कराना आवश्यक है, जिससे इस परम्परा को नया जीवन मिलेगा और लोगों के सामने भी प्रकाशित होगा। इस परम्परा को जीवित रखा गया तो चर्यातन्त्र का भी विकास होने में सहयोग मिलेगा। चर्यातन्त्र की जीवित परम्परा सिर्फ नेपाल में ही विद्यमान है। यह वज्राचार्य परम्परा से घनिष्ठ सम्बन्ध रखती है।

सन्दर्भ ग्रन्थ-सूची :

1. यशोधर महाविहार – हेराकाजी वज्राचार्य, 2537वीं बुद्धजयन्ती समारोह समिति, यशोधर महाविहार, बुबहाल, (छगू अध्ययन), नेपाल, 1993
2. स्वयम्भू पुराण – अनु० मीन बहादुर शाक्य, शान्तहर्ष वज्राचार्य, नागार्जुन बौद्ध अध्ययन संस्थान, पो० ब० 100, ललितपुर, चाकुपाट, नेपाल, 2001
3. बौद्ध विहारया ता: चा: – ले० रत्नकाजी, विजयरत्न वज्राचार्य, सबल बहाल, काठमाण्डौ, नेपाल, 1983
4. बलि पूजाया यथार्थता – ले० रत्नकाजी वज्राचार्य, मन्त्रसिद्धि महाविहार, स्वयम्भू, धिम्हे ल्वहं, वज्राचार्य प्रकाशन, काठमाण्डौ, नेपाल, 1993

5. नेवा: बौद्ध संस्कार संस्कृतिया ता: चा: – ले० रत्नकाजी वज्राचार्य, वज्राचार्य प्रकाशन, मन्त्रसिद्धि महाविहार, काठमाण्डौ, नेपाल, 1989
6. न्हापायापिं प्रसिद्ध वज्राचार्यपिं – ले० बद्रीरत्न वज्राचार्य, आनन्दकुटी विहार, स्वयम्भू, काठमाण्डौ, नेपाल, 1989
7. नेपाल के सिद्ध वज्राचार्यों की जीवनी एवं कृतियाँ – धी: अंक 14वाँ, केन्द्रीय उच्च तिब्बती शिक्षा संस्थान, सारनाथ, वाराणसी, 1992
8. प्राचीन नेपालया जुयावं खँ – रेवतिरमणानन्द श्रेष्ठ वैद्य, थौकन्हे प्रकाशन, असन त्यौड, यें (काठमाण्डौ), नेपाल, ने० सं० 1111
9. नेपाल की ऐतिहासिक रूपरेखा – बालचन्द्र शर्मा, काठमाण्डू, नेपाल।
10. An exhibition of Carya Dance & the materials Use in the worship rituals – Tr. Min Bahadur Shakya, Vishwa Shanti library, Balipha, Patan, Nepal, B.S. 2051.

शोध सहायक
के.उ.ति.शि.सं., सारनाथ, वाराणसी
मो.नं-. 9455695530

सोवा-रिग्पा का संक्षिप्त परिचय

—डॉ. अरुण कुमार राय—

'नमो बुद्धाय'

केन्द्रीय उच्च तिब्बती शिक्षा संस्थान, सारनाथ, वाराणसी

भारतीय वाङ्मय के अन्तर्गत बौद्ध दर्शन, तिब्बती संस्कृति एवं परम्पराओं का संरक्षण एवं संवर्धन करने वाला यह एक विशिष्ट संस्थान है, जिसकी स्थापना सन् 1967 में हुई। यह भारत के प्रथम प्रधानमंत्री पं. जवाहर लाल नेहरू एवं परमपावन दलाई लामा के संयुक्त वैचारिक समरसता का प्रतीक है। इस संस्थान में स्नातक, परास्नातक एवं शोधपरक शैक्षणिक कार्य यथा- बौद्ध दर्शन, इतिहास, भाषा, पालि, संस्कृत, हिन्दी, अंग्रेजी, राजनीतिशास्त्र, अर्थशास्त्र, शिल्पविद्या, चिकित्साविज्ञान (सोवा-रिग्पा), ज्योतिष (भोट एवं भारतीय), शिक्षक शिक्षण केन्द्र आदि विषयों में अध्ययन-अध्यापन कार्य होता है।

तिब्बत

मध्य एशिया की उच्च पर्वत श्रेणियों एवं हिमालय पर स्थित 16 हजार फुट की ऊँचाई पर बसा तिब्बत विश्व की प्राचीनतम सभ्यताओं का क्षेत्र रहा है। तिब्बत विश्व की छत के रूप में विख्यात प्राकृतिक सम्पदाओं एवं खनिज-सम्पदाओं से भरपूर तथा शान्ति का पोषक राष्ट्र रहा है। तिब्बत में 8वीं शताब्दी से ही बौद्ध धर्म का प्रचार-प्रसार प्रारम्भ हुआ, जिसके फलस्वरूप शासन-व्यवस्था में धर्म की नैतिक, राजनीतिक और कूटनीतिक विशिष्टताओं का अपूर्व समन्वय रहा। कालान्तर में दुरूह-दुर्गम पहाड़ी क्षेत्र तथा बौद्ध धर्म के शान्ति पथ के पथिक होने के कारण सीमावर्ती क्षेत्रों में सुरक्षा चूक का फायदा विस्तारवादी नीति का संवाहक राष्ट्र चीन 1949 से तिब्बत पर अपना शिकंजा कसने लगा और 1959 तक उसने तिब्बत को क्रूर कुचक्र में फंसा लिया। परिणामस्वरूप वहाँ के शासक तथा धार्मिक गुरु परमपावन दलाईलामा भारत में आ गये, तब से यहाँ निवास कर रहे हैं।

परमपावन जी तिब्बत के भौगोलिक क्षेत्र की स्वतन्त्रता हेतु संघर्षशील हैं और बाहर रहते हुए भी अपने अद्भुत नेतृत्व कौशल से अपनी संस्कृति, परम्परा, भाषा एवं ज्ञान को पूरी तरह सुरक्षित एवं संरक्षित करने में पूर्णतः सफल हैं।

1959 में भारत आने के पश्चात् परमपावन जी के नेतृत्व में हिमाचल के नजदीक धर्मशाला में तिब्बत ने अपना मुख्यालय स्थापित किया। उन्होंने धर्मशाला से अपने समस्त सांस्कृतिक एवं पारम्परिक ज्ञान के संवर्धन का काम प्रारम्भ किया।

सोवा-रिग्पा

'स्वास्थ्य' एक अमूल्य निधि है, जिसे प्राप्त करने हेतु हम सभी मनुष्य सदैव प्रयास करते रहते हैं। इस निधि के निर्माण का इतिहास मनुष्य के बौद्धिक विकास के साथ प्रारम्भ हुआ है। सम्पूर्ण विश्व में भौगोलिक रूप से विभक्त राष्ट्रों की अपनी स्वयं की परम्परागत चिकित्सा पद्धति है। परन्तु अपने सीमित ज्ञान, सभ्यता के नवीन विकास तथा शोध के अभाव में आज अपनी पहचान विश्व-पटल पर स्थापित करने में सफल नहीं हो रहे हैं। बहुत से देशों की देशी चिकित्सा पद्धति आधुनिक चिकित्सा के आभा मंडल में अपनी चमक को खो चुकी है।

इस परिप्रेक्ष्य में भारतीय महाद्वीप (मध्य एशिया) भू-भाग में आविष्कृत चिकित्सा पद्धतियाँ (आयुर्वेद, योग, सोवा-रिग्पा, सिद्धा) अपने सारगर्भित दर्शन, वैज्ञानिक दृष्टिकोण एवं दूर-दृष्टि के कारण मानव स्वास्थ्य सेवा में आज भी अपना पूर्ण योगदान दे रही हैं।

तिब्बत गणराज्य की अपनी एक विशिष्ट परम्परागत चिकित्सा पद्धति है, जो तिब्बत भू-भाग एवं हिमालयी क्षेत्र पूर्वोत्तर भारत आदि क्षेत्रों में प्रचलित है। सोवा-रिग्पा हजारों वर्ष (लगभग 5 हजार वर्ष) पुरानी परम्परागत चिकित्सा-पद्धति है।

इस विज्ञान के इतिहास के सन्दर्भ में मतैक्य नहीं है। परन्तु इसके दर्शन एवं व्यवहार (चिकित्सा करने के तरीके) की सूक्ष्म विवेचना से स्पष्ट है कि सोवा-रिग्पा पर यूनानी चिकित्सा पद्धति, चीनी चिकित्सा पद्धति, भारतीय आयुर्वेद, बौद्ध दर्शन-कला एवं भारतीय दर्शन-कला तथा तिब्बत के मूल दर्शन (बोन) का स्पष्ट प्रभाव देखने को मिलता है। संक्षेप में कह सकते हैं कि तत्कालीन समय में मध्य एशिया (भारत, चीन, नेपाल आदि क्षेत्रों) की परम्परागत चिकित्सा-पद्धतियों का सारतत्त्व सोवा-रिग्पा के मुख्य ग्रन्थ ग्युद्-शी (चार तन्त्र) में संगृहीत है।

सोवा का अर्थ व्यतिक्रम को व्यवस्थित करना (अस्वस्थ शरीर को ठीक करना) तथा रिग्पा का अर्थ है 'विज्ञान' अर्थात् स्वास्थ्य का विशेष ज्ञान। इस प्रकार सोवा-रिग्पा का अर्थ है स्वास्थ्य विज्ञान।

सोवा-रिग्पा बौद्ध दर्शन के मूल से जुड़ा है, जो मुख्यतः 'मन' और शरीर को आधार मानकर स्वास्थ्य को परिभाषित करता है। सोवा-रिग्पा स्वास्थ्य को परिभाषित करते हुए कहता है- 'व्यक्ति का स्वास्थ्य' शारीरिक, मानसिक, सामाजिक एवं आध्यात्मिक पृष्ठभूमि पर आधारित है। एक व्यक्ति तभी स्वस्थ है जब वह सभी आयामों पर स्वस्थ हो और समाज राष्ट्र को अपना पूर्ण योगदान दे सके।

तिब्बत की निर्वासित सरकार ने 23 मार्च 1961 को परमपावन चौदहवें दलाईलामा के निर्देश पर धर्मशाला में तिब्बती औषधि मेनत्सिखाङ् (तिब्बती आयुर्वेद चिकित्सा) की स्थापना की। तब से यह निरन्तर अपने विशिष्ट गुणों के कारण उत्तरोत्तर विकास पथ पर अग्रसर है। सोवा-रिग्पा पूर्वोत्तर भारत, हिमाचल, अरुणाचल, जम्मू-कश्मीर, दिल्ली, बंगलोर, वाराणसी के साथ-साथ विभिन्न अमेरिकन और योरोपियन देशों में स्वास्थ्य सेवायें प्रदान कर रहा है।

भारत सरकार ने 2010 में इसे वैधानिक मान्यता प्रदान कर आयुष के अन्तर्गत एक स्वतन्त्र चिकित्सा-पद्धति के रूप में मान्यता दी है।

वर्तमान समय में धर्मशाला, लेह (केन्द्रीय बौद्ध अध्ययन केन्द्र), वाराणसी (केन्द्रीय तिब्बती अध्ययन संस्थान) में 5½ वर्ष का विधिवत अध्ययन (BSRMS) पाठ्यक्रम चलाया जा रहा है।

'सोवा-रिग्पा' के क्षेत्र-

(1) सामान्य चिकित्सा (आन्तरिक व्याधि) उपचार
(2) बाल-रोग चिकित्सा
(3) महिला रोग चिकित्सा
(4) मनोविज्ञान (मनोविकार चिकित्सा)
(5) शल्य-शालक्य
(6) विष चिकित्सा
(7) वाजीकरण चिकित्सा
(8) वृद्धरोग चिकित्सा (जीर्णावस्था चिकित्सा)

सोवा-रिग्पा अपने आप में विज्ञान, कला, दर्शन के सम्पूर्णता को समाहित कर जन-सामान्य को सम्पूर्ण स्वास्थ्य प्रदान करता है।

विज्ञान-

सोवा-रिग्पा विशेष ज्ञान श्रेणी में इसलिए आता है क्योंकि यह रोगी के शारीरिक विकृति को समझने हेतु एक तर्कसंगत आधार पर एक रूपरेखा तैयार करता है ताकि उसका वातावरण के साथ कैसे सम्बन्ध या समन्वय बना रहे।

कला-

सोवा-रिग्पा की निदान-प्रक्रिया या तरीका एक ऐसी कला है, जो निदान तकनीकी के साथ चिकित्सक का सूक्ष्म अनुभव और उसके परिज्ञान (अन्तःज्ञान) को समन्वित करता है।

दर्शन-

बौद्धदर्शन अनित्यता सिद्धान्त के मूल पर आधारित है। अर्थात् कुछ भी नित्य नहीं है। चिकित्सक रोग एवं स्वास्थ्य के सन्दर्भ में इस दर्शन को समावेशित करता है।

चार महाभूत सिद्धान्त-

सोवा-रिग्पा चार महाभूत सिद्धान्त अर्थात् पृथ्वी, अप (जल), तेज (अग्नि) एवं वायु पर आधारित है। व्यक्ति की प्रत्येक कोशिकाओं के निर्माण में भी चार महाभूत का योगदान है।

"चार तत्त्व ही कारण हैं- शरीर, रोग, उपचार के
चार तत्त्वसमभाव से होता स्वस्थ शरीर
चार तत्त्व विषमभाव से होता व्याधि शरीर
उपचार वही हितकारी जो करे चार तत्त्व समभाव।"

यह चिकित्सा पद्धति चार महाभूत सिद्धान्त पर आधारित है (पृथ्वी, अग्नि, जल एवं वायु) क्योंकि रोगी, रोग और चिकित्सा ये तीनों इन्हीं तत्वों में समाहित हैं। हमारे ब्रह्माण्ड में जो भी वृक्ष, पशु, मनुष्य (मनुष्य के समस्त अंग) टिशु (ऊतक) आन्तरिक अंग, चर्म, शारीरिक ढाँचा आदि हैं, उनमें चार महाभूतों के तत्त्व पृथक् एवं संयुक्त रूप से हर क्षण विद्यमान रहते हैं अथवा उनके द्वारा प्रभावित होते हैं। यदि ये साम्यावस्था (संतुलन) में हैं तो हम मानसिक, शारीरिक, सामाजिक एवं आध्यात्मिक रूप से स्वस्थ हैं, यदि विषमावस्था में हों तो हम अस्वस्थ रहते हैं।

निदान प्रक्रिया-

(1) दृष्टि के माध्यम से (शरीर, मूत्र, कफ)
(2) स्पर्श (नाड़ी परीक्षण आदि)
(3) प्रश्न पद्धति

चिकित्सा-

सोवा-रिग्पा चिकित्सा पद्धति में मुख्यतः हम चार आयामों पर केन्द्रित होते हैं- खान-पान, दिनचर्या (प्रतिदिन का व्यवहार), औषधि-विधान एवं बाह्य चिकित्सा।

(1) मनुष्य को कुछ रोग मुख्यतः खान-पान में व्यतिक्रम के कारण होते हैं। इस प्रकार की व्याधियों में चिकित्सक उन्हें उपयुक्त खान-पान का निर्देश देता है, जिससे उन्हें रोग से मुक्ति मिलती है तथा भविष्य में होने वाले रोग की सम्भावना भी नगण्य हो जाती है।
(2) मनुष्य का व्यवहार, दिनचर्या, मौसम के प्रतिकूल रहन-सहन आदि भी विभिन्न रोगों के कारण हैं। ऐसी व्याधियों के निराकरण एवं उनसे सुरक्षित रहने के लिए चिकित्सक विभिन्न उपायों यथा- रहन-सहन, वस्त्र, विपश्यना, योग आदि की सलाह देता है।
(3) खान-पान व्यवहार इत्यादि सलाह से यदि रोगी को आराम की सम्भावना कम होती है तो चिकित्सक उन्हें शामक औषधियाँ एवं गम्भीर रोगियों, जीर्ण व्याधियों में पंचकर्म आदि उपायों का प्रयोग करता है।
(4) उपरोक्त उपायों से यदि रोग से मुक्ति की सम्भावना कम होती है तो चिकित्सक शल्य आदि उपायों का प्रयोग करता है।

सोवा-रिग्पा मानसिक एवं शारीरिक रोग के कारणों की खोज कर समूल नष्ट कर व्यक्ति को स्वास्थ्य प्रदान करने वाली एक निरापद औषध-विज्ञान है।

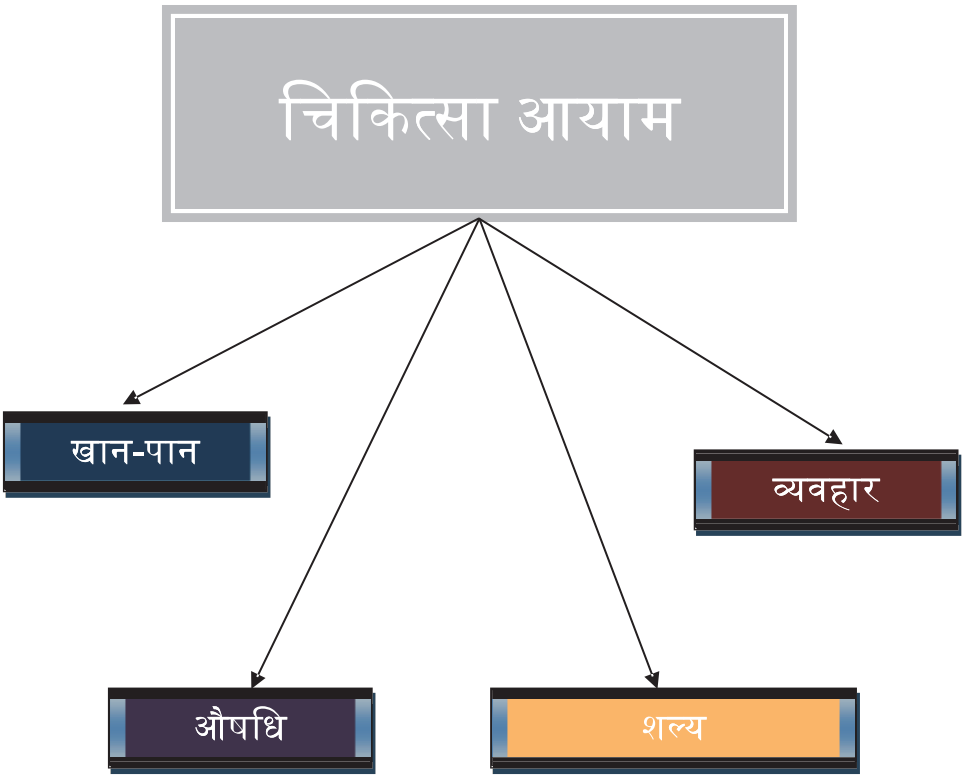

अतिथि प्राध्यापक
के.उ.ति.शि.सं., सारनाथ, वाराणसी
मो.नं-. 9452922660

हिमाचल की मंदिर स्थापत्य परम्परा

—डॉ. शुचिता शर्मा—

विश्व की महान कलात्मक परम्पराओं में से एक भारतीय परम्परा स्वयं को संरक्षित एवं संवर्धित किए हुए है, जिसमें वास्तुकला, मूर्तिकला और चित्रकला जैसी धरोहर सम्मिलित है, जो लगभग पाँच हजार साल या उससे भी अधिक प्राचीन है । यह चीन, मैक्सिको व ग्रीक जैसे प्राचीन सभ्यताओं के विपरीत वर्तमान समय तक निर्बाध रूप से चली आ रही है । इस अवधि में निर्मित हिन्दू, जैन और बौद्ध धर्म से सम्बन्धित वास्तुकला केवल पुरातात्त्विक स्मारक ही नहीं है, वरन् सामुदायिक पूजा के सजीव व सक्रिय स्थान हैं साथ ही साथ उनकी अपनी विशिष्ट सौन्दर्यगत एवं कलात्मक विशिष्टतायें भी हैं ।

प्रस्तुत प्रपत्र (अध्ययन) समग्र विरासत से सम्बन्धित न होकर केवल हिमाचल के मंदिर स्थापत्य पर केन्द्रित है । नैसर्गिक वादियों से घिरा हिमाचल भारत का एक छोटा पर अनुपम राज्य है, जो अपनी कलात्मक परम्पराओं के लिए जगत विख्यात है । यहाँ की स्थापत्य कला अपनी विशिष्टताओं के कारण विशेष उल्लेखनीय है । भारत के अन्य भागों में प्रस्तर व ईटों का प्रयोग प्रचुरता के साथ हुआ है, लेकिन हिमाचल के मंदिरों के निर्माण की मुख्य सामग्री काष्ठ है जो यहाँ की अपनी निजी विशेषता है । प्रस्तर का भी प्रयोग यहाँ के स्थापत्य में हुआ है, लेकिन काष्ठ के मंदिरों की अपनी अलग विशिष्टतायें व पहचान है ।

मंदिरों के निर्माण के लिए स्थानीय लकड़ियों के प्रयोग के अनेक कारण उत्तरदायी हैं-

- हिमाचल में प्राकृतिक रूप से लकड़ी प्रचुर मात्रा में उपलब्ध है । इसलिए निर्माण मूल्य न्यूनतम होता है ।
- काष्ठ निर्मिती हिमाचल के वातावरण एवं जलवायु के लिए उपयुक्त होती है । काष्ठ निर्माण तकनीकी रूप से आसान, कम श्रमसाध्य होता है । अपेक्षाकृत मुलायम होने के कारण इसे काटना, छाँटना व अलंकृत करना भी सरल होता है ।
- मंदिरों के निर्माण में मुख्य रूप से देवदार व कैल (ब्लू पाइन) का प्रयोग अधिक हुआ है । ये लकड़ियाँ प्राकृतिक रूप से लम्बी, मजबूत व टिकाऊ होती हैं । कीट-रोधी होने के कारण ये जल्दी सड़ती-गलती नहीं हैं ।
- देवदार (देव+दार) का अर्थ होता है "देवताओं का वृक्ष" । इसलिए देव निवास (मंदिर) के निर्माण में इनका उपयोग शुभ व मंगलकारी होता है । इसके बारे में हिमाचल में एक प्रचलित कहावत है- लकड़ी पानी में 1000 साल तक रहती है और वायु में उसका पाँच

या दस गुना अधिक, जिसका प्रमाण वहाँ का 7वीं शती में निर्मित भरमौर का लक्षणा देवी मंदिर है।

- पर्वतीय क्षेत्रों में भारी बर्फबारी और बारिश के कारण जलवायु सम्बन्धी कारकों से सुरक्षा के लिए लकड़ी के निर्माण व्यावहारिक रूप से अधिक सुरक्षित होते हैं।

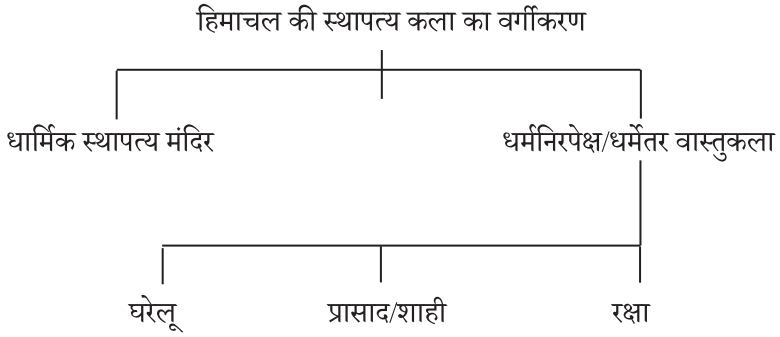

मंदिर स्थापत्य कला-

भारत में मंदिरों के निर्माण व विकास की एक क्रमिक परम्परा है, जिसे मुख्यतया तीन भागों में बाँटा गया- नागर (उत्तर भारत), द्रविण (दक्षिण भारत) व वेसर (दक्कन क्षेत्र)। हिमाचल क्षेत्र उत्तर भारत में स्थित है, इसलिए यहाँ के मंदिर नागर शैली का प्रतिनिधित्व करते हैं, साथ ही साथ उनके अपने क्षेत्रीय व निजी विशेषतायें भी हैं। यहाँ के मंदिरों की उत्पत्ति एवं विकास का एक लम्बा इतिहास है। मंदिर एक पवित्र स्थान होता है। यह केवल देव-विग्रह की स्थापना व पूजा-पाठ का स्थान मात्र ही नहीं होता, बल्कि धार्मिक व सांस्कृतिक प्रतीकों का साकार रूप होता है।

भारत में मंदिरों के निर्माण से सम्बन्धित अनेक ग्रंथों की रचना की गई है, जिनके आधार पर मंदिरों का निर्माण होता आ रहा है।

मंदिरों की संरचना को दृष्टिगत रखते हुए लकड़ी से निर्मित मंदिरों को 'पैगोड़ा' व पेंटरूफ कहते हैं, वहीं प्रस्तर निर्मित मंदिरों को नागर शैली कहा जाता है, जो उत्तर भारत की स्थापत्य शैली है।

जब मैदानी भागों के शासक, मुख्यतः उत्तर भारत के शासकों ने शासन किया तो उन्होंने इस क्षेत्र में नागर शैली में मंदिरों का निर्माण करवाया। बाद में स्थानीय शासकों ने इस शैली को निरन्तरता प्रदान की। इस शैली का प्रारम्भिक उदाहरण कांगड़ा में स्थित 'मसरुर' मंदिर है।

सातवीं शताब्दी के पूर्व के लकड़ी से बने मंदिरों के उदाहरण अप्राप्य हैं, क्योंकि उनका निर्माण नष्टप्राय सामग्री से किया गया था। रावी घाटी के चम्बा क्षेत्र में स्थित शक्ति देवी मंदिर, छतरारी और लक्षणा देवी मंदिर, भरमौर काष्ठ मंदिरों के प्राचीनतम् उदाहरण हैं।

कप्तान ए.एफ.पी. हरकोर्ट, जो अप्रैल 1869 से मार्च 1871 तक कुल्लू में सहायक आयुक्त थे, ने कुल्लू घाटी के मंदिरों की स्थापत्य की भव्यता पर ध्यान आकर्षित करते हुए यहाँ के वास्तुशिल्प को चार श्रेणियों में बाँटा, जो इस प्रकार है-

1. पिरामिडनुमा (शिखर) नक्काशीदार प्रस्तर मंदिर।
2. पत्थर एवं काष्ठ के आयताकार मंदिर जिनकी पक्की छत है एवं बरामदे से सुसज्जित हैं।
3. पत्थर एवं काष्ठ के आयताकार मन्दिर जिनकी एक के ऊपर एक काष्ठ की क्रमिक छत है।
4. छोटा आयताकार मंदिर (काष्ठ छत के साथ) हरकोर्ट के बाद श्रीमती पेनलप चेटवुड ने भी इस क्षेत्र की हिमालयी वास्तुकला का अध्ययन एवं शोध किया और हिमालयी क्षेत्र की वास्तुकला को मुख्यतः पाँच समूहों में विभाजित किया, जिसमें नागर शैली, पैगोड़ा एवं पेंटरूफ शैली का उल्लेख किया है। इस प्रकार से प्रोफेसर कृष्णदेव ने अपने अध्ययन में तीन प्रकार के नागर शैली जैसे फासणा, लतीना एवं वल्लभी का पहचान एवं वर्णन किया है।

मेरे विचार से, मंदिर स्थापत्य को दो समूहों या प्रकारों में और उपसमूहों या उपप्रकारों के साथ वर्गीकृत करना अधिक तार्किक एवं वैज्ञानिक है। मेरे अवलोकन के अनुसार हिमाचली मंदिर स्थापत्य को निम्न दो श्रेणियों में वर्गीकृत किया जा सकता है-

1. पाषाण मंदिर (शिखर, नागर)
2. देराज मंदिर या काष्ठ मंदिर

1. नागर मंदिर तीन प्रकार के हैं-

(अ) अर्धमंडप के साथ लम्बा शिखर जैसे बजौरा में बशेशर महादेव मंदिर।

(ब) खाखरा शैली (उड़ीसा में पाये जाने वाले मंदिर) उदाहरण के रूप में बैजनाथ में बैजनाथ मंदिर, मंडी में अर्धनारीश्वर मंदिर।

(स) रॉककट मोनोलिथिक मंदिर। शैलोत्कीर्ण, एकाश्मक (एक ही चट्टान में तराशा हुआ) मंदिर कांगड़ा जिले में मसरूर गाँव का मसरूर मंदिर, इसका एकमात्र उदाहरण है। काष्ठ मंदिर प्रायः दो प्रकार के होते हैं-

क. **पेन्टरूफ -** पत्थर और लकड़ी से निर्मित वर्गाकार या आयताकार योजना के साथ-साथ ढलवा छत। उदाहरण के रूप में छतरारी में शक्ति मंदिर, भरमौर में लक्षणा देवी एवं उदयपुर (लाहुल-स्पीति) में मिरकुला देवी मंदिर।

ख. **पैगोड़ा शैली -** यह बहुमंजिला है, जिसमें ढलान वाली झत है। जैसे पंडोह में पाराशर ऋषि मंदिर, कुल्लू में दयार, मनाली में हिडिम्बा एवं नग्गर में त्रिपुरसुन्दरी मंदिर आदि।

मंदिरों, प्रासादों एवं निवास गृहों की संरचना पर वहाँ की जलवायु व भौगोलिक परिस्थितियों का विशेष प्रभाव है। पैगौड़ा का शंक्वाकार (conical) रूप की परिकल्पना का आधार देवदार वृक्ष ही हैं। देवदार के वृक्षों का रूप शंक्वाकार होता है, जिससे उनपर पड़ने वाली बर्फ फिसलकर तुरन्त नीचे आ जाती है। यहीं से वहाँ के वास्तुकारों ने पैगोड़ा का यह रूप लिया होगा, जिस प्रकार देवदार की शाखायें बाहर की ओर निकली हुयी और नीचे की ओर झुकी हुई होती है, ठीक उसी तरह पैगोड़ा मंदिर की छतें भी ढलवा होती हैं और ऊपर की मंजिलें क्रमशः छोटी होती हैं। पेंटरूफ मंदिरों की छतों में क्रमशः छोटी होती हुई मंजिलें न होकर सपाट ढलवा छत होती है। इस प्रकार देखा जाय तो यहाँ की वास्तुशैली की शंक्वाकार छतें पर्यावरण एवं जलवायु की देन हैं।

संरचना की दृष्टि से देखा जाय तो सर्वप्रथम वर्गाकार या आयताकार भूमि के चारों कोनों पर लकड़ी के एक-एक स्तम्भ लगाये जाते हैं। इन्हीं स्तम्भों पर सभी मंजिलों या ढलवा छतों का निर्माण किया जाता है। तल पर बनाया गया कक्ष बड़ा होता है। इन्हीं निचली दीवारों पर ही ऊपरी कक्ष की दीवारें बनाई जाती हैं। ऊपरी कक्ष सामान्यतया खुले होते हैं। तकनीकी कारणों से सभी छतें समान आकार-प्रकार की नहीं होती, वे ऊपर की ओर क्रमशः छोटी होती जाती हैं। हिमाचल में मंदिरों के दीवारों के निर्माण की एक विशेष तकनीक है, जिसमें लकड़ी के स्तम्भों व धरनों के बीच पत्थर के छोटे-छोटे तराशे हुए टुकड़ों का प्रयोग किया गया है, जिनका अपना कलात्मक एवं तकनीकी महत्व है। लकड़ी के साथ प्रस्तर का प्रयोग उसे सौन्दर्य तो प्रदान करता ही है साथ ही साथ उसे एक मजबूत व वजनी आधार प्रदान करता है। ऐसा करने से मंदिरों की ऊँचाई बढ़ाने पर भी वे तेज हवा के झोके व आँधी से सुरक्षित रहते हैं अन्यथा हवा के दबाव से उनके टूटने व गिरने की सम्भावना रहेगी। दीवारों में प्रस्तर का प्रयोग वास्तुकारों ने मंदिरों को बार-बार गिरने के कारण अपनाया होगा।

मंदिर निर्माण के लिए प्रयुक्त लकड़ियों व प्रस्तरों को काटने-छांटने व तराशने के लिए विशेष प्रकार के स्थानीय औजारों का प्रयोग किया जाता था।

हिमाचल के अधिकांश पैगोड़ा और पेंटरूफ मंदिर हिन्दू व लोक देवी-देवताओं को समर्पित हैं। इनके साथ ही साथ वहाँ अनेक बौद्ध मठ भी बनाये गये हैं।

कुछ अन्य प्रमुख मंदिर-

पश्चिमी हिमाचल में विशेष रूप से 13वीं शताब्दी के बाद से मंदिर निर्माण की परम्परा के बाद के विकास को निम्नलिखत मंदिरों में देखा जा सकता है- बैजनाथ के शिव मंदिर, चंबा में

लक्ष्मीनारायण मंदिर, बंशी गोपाल, चंपावती, बज्रेश्वरी, मेहला में हिडिम्बा माता, चंबा के साहो में शिव मंदिर, मंडी में त्रिलोकनाथ, पंचवक्त्र, भूतनाथ, अर्धनारीश्वर, पाराशर में पाराशर ऋषि, रिवाल्सर में शिव मंदिर, कुल्लू में भीमाकाली माता, बिजली महादेव, खोकण में आदिब्रह्मा, दियार में बद्रीनारायण, बेहना में शिव मंदिर, जगतसुख में गौरीशंकर, नग्गर में त्रिपुर सुन्दरी, शिव मंदिर और कृष्ण मंदिर, मनाली में हिडिम्बा, उदयपुर में मिरकुला देवी मंदिर, निचार का शिव मंदिर, सराहन का देवी मंदिर, खजियार का खाजी नाग मंदिर आदि।

सन्दर्भ-

1. महाजन मालती, ए गेट टू एन्सियेन्ट इण्डियन आर्किटेक्चर, नई दिल्ली।
2. मंडी राज्य का राज्यपत्र, गेजेटियर ऑफ द मंडी, नई दिल्ली।
3. कृष्णदेव, टेम्पल्स ऑफ वंडिया, नई दिल्ली।
4. बर्नियर एम. रोनाल्ड, हिमालयन आर्किटेक्चर, कनाडा।
5. चेटवुड पेनलप, कुल्लू, द एण्ड ऑफ द हेविटेवल वर्ल्ड, नई दिल्ली।
6. हरकोर्ट, ए. एफ. पी., द हिमालयन डिस्ट्रिक्ट ऑफ कुल्लू, लाहौल, एण्ड स्पीति, लन्दन।

सहायक आचार्य
के.उ.ति.शि.सं., सारनाथ, वाराणसी
मो.नं-. 8808419048

रंगभूमि का सूरदास

—डॉ. ज्योति सिंह—

रंगभूमि, प्रेमचन्द का उल्लेखनीय उपन्यास है। सन् 1924 में प्रकाशित इस उपन्यास में राष्ट्रीय स्वतन्त्रता आन्दोलन की झलक मिलती है। रंगभूमि प्रेमचन्द का सबसे बड़े आकार वाला उपन्यास है। उपन्यास के शीर्षक रंगभूमि के द्वारा उपन्यासकार इसकी प्रमुख कथा को रेखांकित करना चाहता है। प्रमुख कथा है, पाण्डेयपुर ग्राम के निवासी अंधे भिखारी सूरदास द्वारा खाली पड़ी, चरागाह के काम आने वाली पैतृक जमीन को पूँजीपति जॉनसेवक के चंगुल से बचाने के लिए अनवरत संघर्ष और असफलता की। इस जमीन पर सिगरेट बनाने का कारखाना बन जाने पर गाँव के मकानों की जमीन की बारी आती है। सूरदास पुनः संघर्ष छेड़ता है और अन्ततः मारा जाता है। सूरदास संघर्षकार्य को पुनीत कर्तव्य के रूप में ग्रहण करता है। अपनी वृत्ति को सन्तों की भाँति व्यक्तिगत मनोमालिन्य से ऊपर रखकर तटस्थ बनाए रखता है। इसीलिए पूरी लड़ाई को प्रतीकात्मक रूप में खेल का नाम देता है। इस परिप्रेक्ष्य में उपन्यास की कथा को 'रंगभूमि' शीर्षक दिया जाना समीचीन बन पड़ा है। अपने अधिकार की रक्षा के लिए सूरदास ने गाँव के साधारण जीवन को युद्धक्षेत्र बनाया। युद्ध के पीछे कटुता की भावना नहीं थी, केवल कर्तव्यबोध था। सच्चे मन से कर्तव्य का पालन करते हुए मनुष्य मलिन चित्त नहीं होता। यह जीवन रूपी नाट्यशाला में अभिनेता की असंलग्नता से अपनी भूमिका भर निभाता है। निर्मल मन के लिए सांसारिक लीला का स्थल, यह संसार क्रीड़ास्थान ही है।

'रंगभूमि' में सूरदास द्वारा छेड़े गए आन्दोलन का चित्रण व्याप्त है। 'रंगभूमि' में दिखाया गया है कि बनारस के समीप पाण्डेयपुर गाँव है। बनारस से लगभग सात मील दूर जिस दिशा में प्रेमचन्द का पैतृक गाँव लमही है, उसके बीच पाण्डेयपुर की बस्ती है। उपन्यास में दिखाया गया है कि पाण्डेयपुर छोटा-सा गाँव है। यहाँ कुछ घर हैं, जिनके निवासी छोटे-छोटे धन्धे करते हुए अपने आपमें लिप्त और सन्तुष्ट हैं। सूरदास सड़क के किनारे बैठकर भिक्षावृत्ति से पेट भरता है और गाँव वालों के हितैषी साधु जैसा उसका सर्व स्वीकृत व्यक्तित्व है।

उपन्यास का आरम्भ पूँजीपति जॉनसेवक के सपरिवार, वहाँ स्थित अपने चमड़े के गोदाम तक बग्घी पर सवार होकर आने से होता है। गोदाम के पीछे पड़ी चरागाह की विस्तृत, भूमि जॉनसेवक की निगाह में चढ़ जाती है। वह निश्चय करता है कि भूमि लेकर इस पर सिगरेट बनाने का कारखाना स्थापित करना है। फटेहाल सूरदास को यह प्रस्ताव किसी भाव स्वीकार नहीं है। वह अपनी पैतृक भूमि ग्रामीण समाज के हितार्थ इसी रूप में रख छोड़ना उचित समझता है। उसका सुनिश्चित मत है कि वहाँ कारखाना बनने पर ग्रामीण जीवन की सरलता नष्ट होकर

अवांछित औद्योगिक ह्रासशील तथाकथित सभ्यता का विकास होगा। औद्योगीकरण के विरुद्ध उसकी धारणा बहुतों को विचित्र लग सकती है।

रंगभूमि में उद्योग के लिए जमीन लेने की समस्या औपन्यासिक केन्द्र में है। अंधा सूरदास अपनी जमीन कारखाने के लिए देना नहीं चाहता है। उसमें आम जन की नैतिक ताकत समाई हुई है। उसका संघर्ष जैसे-जैसे तेज होता है, प्रभुत्व और विस्थापन निर्मम हो उठता है। निश्चय ही प्रेमचन्द आधुनिक विकास के विरोधी नहीं थे, पर वह ऐसा औद्योगिक विकास भी नहीं चाहते थे, जो गरीबों का जीवन का अधिकार छीने।

सूरदास में गांधी की छवि देखी गई है। नामवर सिंह कहते हैं, "रंगभूमि उस दौर का, आजादी की लड़ाई के उस दौर का इतिहास है, जब आजादी की लड़ाई प्रत्यक्ष रूप से नहीं चल रही थी, आंदोलन जिस समय पस्ती में था। सूरदास प्रेमचन्द का सबसे लड़ाकू नायक है और कदाचित साहित्य में उसके जोड़ का कोई दूसरा 'हीरो' नहीं है। यह 'हीरो' तब सामने आया, जब राष्ट्रीय आन्दोलन उतार पर था।" (प्रेमचन्द और भारतीय समाज)

रंगभूमि का सिर्फ आजादी की लड़ाई से नहीं, बल्कि औद्योगिक विकास की समस्याओं से भी रिश्ता है। यह उपन्यास शहर के आस-पास रहने वाले गरीबों का प्रश्न उठाता है, जो अपने पर्यावरण के साथ अपनी संस्कृति में जीते हैं।

प्रेमचन्द ने सूरदास के घर का चित्र दिखाकर औपनिवेशिक समय की दरिद्रता का चित्र खींचा है, न खाट, न बिस्तर, न बरतन न भांडे। एक कोने में एक मिट्टी का घड़ा था, जिसकी आयु का कुछ अनुमान उस पर जमी हुई काई से हो सकता था। चूल्हे के पास हांडी थी। एक पुराना चलनी की भाँति छिद्रों से भरा तवा, एक छोटी-सी कठौती और एक लोटा। बस, यही उस घर की सारी सम्पत्ति थी। मानव लालसाओं का कितना संक्षिप्त स्वरूप।

रंगभूमि के सूरदास को देखकर भारतीय मन की बुनावट का बोध होता है। वह इतना अनोखा चरित्र नहीं है कि उसके गुण औपनिवेशिक सभ्यता से बचे भारतीय लोगों में न मिले, खासकर जिनका गाँव की संस्कृति से नाता है। ऐसे सरल परोपकारी और जुझारू लोग आज की दुनिया में हैं। प्रेमचन्द ने सूरदास को हवा से नहीं हकीकतों से गढ़ा है। यह उनका एक शानदार चरित्र है, जिसमें सद्गुणों से भरा भारत का किसान दिखता है।

रंगभूमि उपन्यास का सबसे गरिमापूर्ण चरित्र सूरदास स्पष्ट रूप से चमार घोषित नहीं है, पर वह दलित ही है। प्रेमचन्द लिखते हैं- "ठुमरी-गजल में उसकी रुचि न थी। कबीर, मीरा, दादू, कमाल, पलटू आदि संतों को गाता था।" वह निर्गुण संतों और भक्तों की परंपरा का जातिमुक्त आदमी है। जी डब्लू-ब्रिग्स ने 1920 में चमारों के सामाजिक जीवन का सर्वेक्षण करते हुए एक किताब लिखी थी 'द चमार्स'। इसमें चमारों की कई उपजातियों में एक को भंगता या मंगतिया कहा गया है। यह भी स्पष्ट लिखा है- "अब चमार लोग केवल चमड़ा परिशोधन और चमड़े का काम करने वाले ही नहीं हैं।" यह भी कहा गया है, "कुछ चमार भूस्वामी हैं।" प्रेमचन्द ने एक

बड़ी औपन्यासिक संरचना के भीतर यदि कहीं कहीं चमार का जिक्र किया है, तो उनका उद्देश्य कभी उन्हें अपमानित करना नहीं रहा है, बल्कि दूसरी जातियों और वर्गों से उनके बदलते सामाजिक रिश्तों को उद्घाटित करना, उनके भीतर छिपी मानवीय अंतःशक्ति को पहचानना और उनमें एक 'राष्ट्रीय नायक' खोजना रहा है।

प्रेमचन्द के उपन्यास रंगभूमि को जलाने (2004) का अर्थ है, बीसवीं सदी के तीसरे दशक में हिन्दी क्षेत्र के उत्पीड़ित ग्रामीण वर्गों के अंग के रूप में दलितों में जो जागरण आ रहा था और दलित सूरदास का जो उदात्त चित्र खींचा गया था, उस पर और अपने ही मुँह पर कालिख पोतना। यह ज्ञान से भागना है। क्या पी. डब्लू-ब्रिग्स की लगभग उसी समय प्रकाशित किताब 'द चमार्स' सिर्फ इसलिए जला दी जाएगी कि उसमें इस जाति के जीवन की समाजशास्त्रीय पड़ताल है ? साहित्यिक कृतियों या कलाकृतियों को जलाना फाँसीवाद का चिन्ह है। प्रेमचन्द ने सारा जीवन स्त्रियों के साथ-साथ दलितों का पक्ष लिया। निःसन्देह इनके संघर्षों को अलगाव में न देखकर, उपनिवेशवाद-सामंतवाद विरोधी संघर्ष के अंक के रूप में देखा और महाजनी सभ्यता के उस विराट जाल को पहचाना, जो नए रूप रंग में अब भी मौजूद है।

साम्राज्यवादी अन्याय के खिलाफ एक अंधे भिखारी का एक मामूली इन्सान का नायक हो जाना हिन्दी साहित्य की एक बड़ी घटना है। आमतौर पर उपन्यास मध्यवर्गीय जिन्दगी की आशा, आकांक्षाओं और संघर्षों की अभिव्यक्ति रहा है। उसके आधार में एक साधारण आदमी को प्रतिष्ठित करके प्रेमचन्द ने भारतीय कथा संसार में एक मौन क्रांति ला दी। वह बताना चाहते थे कि समाज में जिस आदमी को सबसे कमजोर समझा जाता है, उसमें कितना अधिक नैतिक साहस हो सकता है।

सूरदास की साधारण-सी झोपड़ी स्वाधीनता का चिन्ह बन गई। इस पर अनगिनत आदमी अपने को उत्सर्ग करने के लिए तैयार थे। प्रेमचन्द ने एक दलित सर्ववंचित और आम इन्सान के राष्ट्रीय संघर्ष की प्रेरणा के रूप में प्रतिष्ठित करके यही कहना चाहा कि एक साधारण आदमी में भी साम्राज्यवाद से मुठभेड़ की कितनी गहरी शक्ति होती है।

सन्दर्भ ग्रन्थ-

(1) प्रेमचन्द - विश्वनाथ प्रसाद तिवारी
(2) रंगभूमि - प्रेमचन्द
(3) प्रेमचन्द का हिन्दुस्तान - शंभुनाथ
(4) प्रेमचन्द - विश्वंभर मानव
(5) आलोचना पत्रिका - (सम्पा.) नामवर सिंह

सहायक आचार्य
के.उ.ति.शि.सं., सारनाथ, वाराणसी
मो.नं.- 8765734283

लॉकडाउन में सीता

—डॉ. महेश शर्मा—

वह अपनी बेटी का हाथ थामें न जाने कितने दिनों से यूँ ही बिना रुके चली जा रही थी। एक पुरानी सी साड़ी, जिसका प्रिंट भी उसके पसीने की सफ़ेद लकीरों के बीच छुप सा गया था। सिर पर एक पोटली बँधी थी, जिसे देखकर कोई भी यह कह सकता था कि उसे बड़े ही हड़बड़ाहट में बाँधा गया था।

अणची नाम था उसका। अपने पति की मौत के बाद, न जाने कितने सालों से वह किसी और शहर में मज़दूरी कर अपना और अपनी बेटी का पेट भरती थी। अनपढ़ तो ऐसी की जिस शहर में काम करती थी, उसका नाम भी उसे नहीं पता था। पता था तो बस इतना कि उसे अपने और अपनी बेटी का पेट भरना है। जिस बस्ती में वह रहती थी, उसके सामने ही एक अथाह समुद्र था। कभी कभी जब काम से थक जाती तो सपने संजोती थी कि वह अपनी बिटिया के साथ उस पार चली जाएगी, जहाँ शायद एक नया जीवन होगा, संभावनाओं से भरा। सुरक्षात्मक।

एक दिन अचानक ही अणची जैसे कई मज़दूरों का जीवन एकदम से बदल गया। एक ख़बर फैली की कोई रोग पूरे देश में फैल गया है। सारे मज़दूरों की ज़िंदगी एकदम से बदल गई। काम मिलना बंद हो गया था, क्योंकि अब लोग एक दूसरे से डरने लगे थे। बाहर निकलने, और एक दूसरे को छूने में एक अजीब से डर का एहसास हो रहा था। अणची को भी ये बताया गया कि उसे सब कुछ छोड़कर वापस अपने गाँव चले जाना होगा।

"पर कैसे ?"

"न कोई ट्रेन और न ही कोई घोड़ा गाड़ी। हम अपनी फूल सी बिटिया को मीलों पैदल कैसे लेकर चलेंगे ? उसके तो पैरों में छाले ही पड़ जाएंगे। उसका रंग साँवला है ही, कहीं कोई कालिख मुँह पर ना लग जाए।"

"हे भगवान ! लगता है कि ये नासपिटा कलियुग आ ही गया। अम्मा कहती थी कि जब मक्खन छाछ में पूरा डूब जाएगा तो कलियुग अपने पूरे तेज में होगा।"

इसी गहरी सोच में डूबी अणची अपना सामान जल्दबाज़ी में बाँध रही थी। उसे तो यह भी नहीं पता था कि कितने मीलों के बाद उसका अपना गाँव आ जाएगा ? और कौन था उसके गाँव मैं अब अपना ? इतने सालों से वह यहाँ काम कर रही थी की अपने गाँव के बारे में अधिकतर बातें तो वह भूल चुकी थी। बस इतना याद था कि उसका भी एक गाँव है। नदिया के उस पार पहाड़ों की तलहटी में बसा, जहां सुबह और सांझ को गुजरती हुई ट्रेन की आवाज से लोग अपनी घड़ी मिला लेते हैं।

"अम्मा, प्यास लगी है, अम्मा!" जब उसकी बेटी शगुनी ने खांसते हुए पानी माँगा तो अणची का ध्यान सूनी लंबी नागिन सी सड़क से हटकर अपनी बिटिया के चेहरे की ओर गया।

अभी-अभी यौवन की दहलीज़ पर क़दम रखा था उसकी बिटिया ने। साँवले से चेहरे पर भी आंखों के नीचे की काली झुर्रियां आसानी से दिखाई दे जाती थीं। हालांकि, अणची अक्सर हल्दी के उबटन से शगुनी के चेहरे की झाइयों को छुपाने की कोशिश करती, पर वह सच्चाई की तरह सामने आ ही जाती थी।

माँ ने जब बिटिया का चेहरा देखा तो उसका दिल पसीज गया। एक तो बिटिया का साँवला रंग, और दूसरा ये निर्मोही ग़रीबी।

कई दिनों की भूख के कारण शगुनी कुपोषित सी दिखाई दे रही थी। उसके गालों की हड्डियां चेहरे से बाहर की तरफ झांक रही थी। पसीने से लथपथ वह अपनी मां की उंगली कसकर नहीं पकड़ पा रही थी। बार-बार उसका हाथ पसीने के कारण नीचे की ओर झटक जा रहा था, या शायद कमजोरी के कारण। अभी अणची यह सोच ही रही थी कि बिटिया के लिए खाने का इंतजाम कैसे करें कि तभी पास के कुछ घरों से उसके कान में एक जानी पहचानी-सी आवाज पड़ी।

"मंगल भवन, अमंगल हारी
द्रवहु सुदसरथ अजिर बिहारी"

"अरे ! लगता है कहीं टीवी पर रामायण चल रही है", सड़क पर तो न कोई आदमी और ना ही कोई जानवर दिखाई दे रहा था।

"लगता है इस तालाबंदी में टीवी पर फिर से रामायण दिखाया जा रहा है।", अणची को अपने बचपन के दिन अनायास ही याद आ गए और वह चहकते हुए एक बच्चे की तरह एक घर में झांकने लगी।

अणची का अनुमान बिल्कुल सही था। दूरदर्शन पर फिर से रामायण का प्रसारण किया जा रहा था। उस वक्त टीवी पर लक्ष्मण रेखा और सीता हरण का प्रसंग दिखाया जा रहा था। अणची कुछ देर तक यूं ही टकटकी लगाए लक्ष्मण रेखा का प्रसंग सुनती रही।

"अम्मा.... अम्मा.... भूख लगी है अम्मा ! कही से मेरे लिए कुछ खाना ला दो" शगुनी ने अपने पेट को पकड़ते हुए मां से गुहार लगाई।

अणची तुरंत ही अपने सपनों की दुनिया से निकलकर वास्तविक ज़मीन पर आ खड़ी हुई। अब उसकी आंखें सड़क के दोनों तरफ खाने की तलाश में जुट गई। एक जगह उसे कई लोगों की भीड़ दिखाई दी और उस जगह पर हर तरफ सफेद रंग के बड़े बड़े गोले बने हुए थे। अणची कुछ समझ नहीं पा रही थी। इसके पहले तो उसने ऐसे गोले कभी नहीं देखे थे।

अणची ने एक नजर से उस लंबी लाइन को देखा, जहां कुछ भले लोग मुफ्त में खाना बांट रहे थे। उसने अपने सिर से पोटली उतारी और शगुनी को एक सफेद गोले के बीचो-बीच बैठाकर समझाने लगी।

"देख बिटिया, ये जो सड़क पर सफ़ेद रंग का गोला बना हुआ है ना, ये तेरी लक्ष्मण रेखा है ! मुझे चाहे कितनी भी देर हो जाए, तू इससे बाहर मत निकलना ! चाहें कोई भी बुलाए। कोई भी आए। तू इस गोले से बाहर मत निकलना।

"ये.... ये.... लक्ष्मण जी की बनायी हुई रेखा है। इस कलियुग में, इस तालाबंदी में तेरी रक्षा करेगी। कोई भी राक्षस इसके अंदर नहीं आ सकता। चाहे कितना भी बड़ा रावण या कोई भी करोना-भरोना हो, मेरी बिटिया के समीप भी नहीं आ पाएगा। बस तू इस लक्ष्मण रेखा से बाहर मत निकलना।"

"मैं अभी जाकर तेरे लिए खाना लेकर आती हूँ।" अणची ने अपनी बिटिया के माथे से पसीना पोछते हुए कहा।

"हाँ माँ! मैं समझ गई। मैं इस गोले से बाहर बिलकुल नहीं जाऊँगी।" शगुनी ने मां का हाथ छोड़ते हुए कहा।

"अम्मा ! बस कहीं से पूड़ी सब्जी मिल जाए तो ले आना, और हां ! थोड़ा सा हलवा हो तो मैं उसे रास्ते में खाती रहूंगी।" शगुनी ने अपने सूखे हुए होठों पर जीभ फिराते हुए कहा।

"हाँ! हाँ! चिंता न कर, मैं तेरे लिए अभी ये सारी चीज़ें लेकर आती हूँ" एक बार फिर से शगुनी को उस गोले के बीचो-बीच बैठा देख अणची सरपट दौड़ती हुई उस लाइन में जाकर खड़ी हो गयी।

कभी एक नज़र अपनी बिटिया को देखती जो बहुत ख़ुश होकर उस गोले के अंदर एक ऋषि की तरह तपस्या कर रही थी और दूसरी तरफ़ खाने को देखती और अपनी बारी का इंतज़ार करने लगी। थोड़ी ही देर में अणची के पीछे भी एक लंबी लाइन लग गयी, और उस भीड़ के कारण वह अपनी बिटिया को अब देख नहीं पा रही थी।

बस मन ही मन बुदबुदाने लगी, "मेरी बिटिया तो लक्ष्मण रेखा में बैठी है। लक्ष्मण जी ने खींची है वह रेखा उसके लिए। सीता है वो मेरी, मेरी सिया। कोई भी राक्षस उसका कुछ नहीं बिगाड़ पाएगा।"

"अभी बिटिया के लिए गरमा-गरम खाना ले जाऊँगी तो ख़ुशी से दौड़ कर मेरी गोदी में चढ़ जाएगी।"

बड़ी मुश्किल से किसी तरह अणची ने दो पैकेट खाना अपनी साड़ी के पल्लू मैं छुपाया और दौड़ कर वहाँ पहुँची जहाँ उसने अपनी बिटिया को बैठा रखा था।

"अरे! यही तो छोड़ के गई थी मैं उसे। कहाँ चली गयी मेरी शगुनी?" अणची के हाथ से खाने के दोनो पैकेट सड़क पर ही गिर गए।

"हे भगवान ! कहीं.... कहीं....कोई राक्षस तो नहीं उठा के ले गया उसे", इस संभावना ने अणची की रूह को कँपा दिया था। "नहीं, नहीं.... ये नहीं हो सकता, क्योंकि वह तो लक्ष्मण जी की बनायी हुई रेखा के अंदर बैठी थी। उसे भला क्या हो सकता है ?" अणची पागलों की तरह इधर-उधर दौड़ कर अपनी बिटिया को ढूंढने लगी।

पर उसे हर तरफ ऐसे ही सफेद गोले दिखाई दे रहे थे।

"हे भगवान! यह कैसी राक्षसी माया है? हर तरफ़ धरती पर ये सफ़ेद सफ़ेद से गोले बने हुए हैं। पता नहीं इसमें से कौन से गोले में मेरी बिटिया बैठी थी?"

तभी दौड़ते दौड़ते अणची को थोड़ी ही दूर एक गोले के पास अपनी पोटली दिखाई दे गई।

"अरे यही गोला होना चाहिए! क्योंकि इसी के पास तो मैं अपनी ये पोटली छोड कर गई थी। पोटली तो यहाँ है, तो फिर मेरी बिटिया कहाँ चली गई?" हाँफते हुए अणची पागलों की तरह चिल्ला-चिल्लाकर अपनी बिटिया का नाम पुकारने लगी। घंटा दो घंटा ऐसे दौड़ने के बाद जब अणची को ये एहसास हुआ कि वो अपनी बिटिया को कहीं ढूँढ नहीं पाएगी, तो दौड़ते-भागते वह पास ही में खड़े कुछ पुलिसवालों के पास पहुँची।

"साहब!...साहब! देखिए ना मेरी सीता को कोई रावण उठा कर ले गया है। फिर से किसी रावण ने लक्ष्मण रेखा को छल से तोड़ दिया। साहब अब आप ही हनुमान बनकर मेरी सीता-सी बिटिया, मेरी शगुनी को ढूंढ के लाइए," अणची रोते-रोते नीचे गिर पड़ी।

"अरे थोड़ा दूर खड़े रहो! चलो! वहाँ उस गोले में खड़ी रह कर मुझे बताओ, क्या हुआ तुम्हारी बिटिया के साथ?" एक दरोगा ने अपनी कमर पर हाथ रखते हुए सख्त लहजे में कहा।

अणची वहीं पास में बने एक सफ़ेद गोले में खड़ी हो गई और उसने पुलिसवाले को अपनी सारी आप बीती सुनाई।

"ठीक है हम उसे ढूंढने की कोशिश करेंगे। थोड़ा समय लगेगा, अभी तुम जाओ यहां से, हमें और भी बहुत काम है" दरोगा उसे बिना देखे बोला।

अब अणची का भी शरीर जवाब दे रहा था। थकी हारी अणची वहीं पास में सड़क के किनारे एक छप्पर के नीचे जाकर लेट गई। न जाने कितने पहर वह ऐसे ही सोती रही।

"अरे सुनो! उठो ज़रा ! हमें लगता है हमने तुम्हारी बिटिया को ढूँढ लिया है," एक हवलदार ने उसे झंझोड़ते हुए कहा।

"अच्छा साहब! कहाँ हैं?.....कहाँ है मेरी बिटिया?" अणची की मुरझाई आंखों में एक अजीब सी चमक आ गई थी।

पुलिस वालों ने अणची को अपनी गाड़ी में बैठाया और उसे एक जगह ले गए, जहाँ सफ़ेद प्लास्टिक के बैग में कुछ लपेटा सा पड़ा था। बहुत सारे बैग पास-पास पड़े हुए थे। हर बैग पर एक नंबर लिखा हुआ था। कई पुलिसवाले जल्दबाजी में कुछ कागजी कार्रवाई में व्यस्त थे।

उसमें से एक पुलिसवाला अणची के पास आकर बोला, "वह तीन नंबर वाला बैग तुम्हारा है। तुम्हारी बिटिया उसी बैग में बंद है, वह मर चुकी है।"

अणची को कुछ भी समझ नहीं आ रहा था। या शायद वह कुछ समझना नहीं चाह रही थी।

"पर साहब मेरी बिटिया इस प्लास्टिक के बैग में कैसे बंद हो गई? क्या वो सो रही है इसके अंदर? साहब उसका....उसका कहीं दम ना घुट जाए। आप ज़रा इस प्लास्टिक बैग खोल तो दीजिए। हमारी बिटिया बहुत भूखी है, कई दिनों से उसने कुछ नहीं खाया। अभी मुझे देखेगी तो इस सफेद चमड़ी से उछल कर बाहर आ जाएगी और बोलेगी अम्मा कहां है मेरी खीर-पूड़ी?" अणची उस सफेद प्लास्टिक के बैग के पास जाने लगी।

"अरे रुको, यहां किसी भी चीज को छूना मना है। बड़े साहब का सख्त आदेश है। किसी भी प्लास्टिक के बैग को हम खोल नहीं सकते। मैंने बताया न तुम्हें- तुम्हारी बिटिया मर चुकी है। करोना हो गया था उसे।" एक हवलदार ने अणची को रोकते हुए कहा।

"मर चुकी है? नहीं, नहीं साहब! वह तो अभी भी किसी गोले में बैठी मेरे खाना लाने का इंतजार कर रही है" अणची ने उस हवलदार की बात को अनसुनी करते हुए कहा।

"चलो यहाँ जल्दी से अंगूठा लगाओ। हमें इन सारी लाशों को शाम होने से पहले जला देना है।" हवलदार कुछ जल्दबाजी में लगा।

"जला देना है? नहीं साहब यह मेरी बिटिया नहीं है, और अब कोई और सीता इस कलयुग में अग्नि परीक्षा नहीं देगी। नहीं साहब यह मेरी बिटिया नहीं है।" अणची दूसरी तरफ मुंह करते हुए बोली।

"वह तो किसी गोले में कहीं बैठी होगी। अगर आप मेरी बिटिया को नहीं ढूंढ पा रहे हैं, तो मैं खुद अपनी सिया को ढूंढ लूंगी" इतना कहकर अणची उन सफेद गोलो में पागलों की तरह अपनी शगुनी को ढूंढने लगी।

तब से न तो वह सफेद गोले खत्म हुए और न ही यह तालाबंदी।

सहायक आचार्य
के.उ.ति.शि.सं., सारनाथ, वाराणसी
मो.नं-. 8107174341

ज्योतिष : मानव जीवन का प्रमुख विज्ञान

—डॉ. उमाशंकर शर्मा—

मानव जीवन का अध्ययन करने वाले शास्त्रों में ज्योतिष की प्रमुखता स्पष्ट है। ज्योतिष शास्त्रियों ने मनुष्य का अध्ययन न केवल अत्यधिक विस्तार से किया है बल्कि वे मनुष्य से सम्बंधित तथ्यों का उद्घाटन अज्ञात काल से करते चले आ रहे हैं। ज्योतिष मानवजीवन का अध्ययन करने वाला प्राचीनतम शास्त्र है। ज्योतिष का आधार विध्यात्मक है। उसके मूल में कुछ वास्तविक प्राकृतिक तथ्य होते हैं जिनके सामानांतर घटनाओं को संभावनाओं को मानव जीवन में आरोपित किया जाता है। दूसरे शब्दों में प्रकृति जगत में घटित आकाशीय या सौरमण्डलीय प्रक्रियाओं की गवेषणा, व्याख्या तथा मानव जीवन में उनके अनुयोग से ही ज्योतिषशास्त्र निर्मित है। इस प्रकार ज्योतिष बौद्धिक एवं व्यवस्थित ढंग से मानव और क्रियाओं का विश्लेषण करता है। यदि हम विज्ञान की इस परिभाषा को स्वीकार करें "किसी तथ्य के व्यवस्थित ज्ञान का नाम विज्ञान है", तो हमें यह मानने में कठिनाई नहीं होनी चाहिए कि ज्योतिष एक वैज्ञानिक शास्त्र है। इस प्रकार हम कह सकते हैं कि ज्योतिष मानव जीवन का अध्ययन करने वाला प्राचीनतम विज्ञान है।

मानवजीवन अत्यंत जटिल एवं सूक्ष्म है। इसके प्रभावी तत्त्व एवं कारणों का व्यवस्थित ज्ञान प्राप्त करने के पूर्व यह अपेक्षित है कि मानवीय एषणाओं अकांक्षाओं एवं संभाव्य उपलब्धियों का पूर्ण ज्ञान ही ज्योतिष शास्त्र द्वारा अधीत विषयों अथवा प्रसंगों से हम यह पाते हैं कि मनुष्य की इच्छा कल्पनाओं अथवा उपलब्धियों जैसी विस्तृत परिकल्पना ज्योतिष में हुई है अन्य शास्त्र में नहीं। आधुनिक ज्ञान-विज्ञान जो नाना रूपों में मानव के समग्र अध्ययन का दावा करता है, मानव जीवन के कई ऐसे क्षेत्रों से अनभिज्ञ है जिन्हें हम ज्योतिष के आधार पर विस्तार से समझ सकते हैं। उदाहरण के रूप में हम यह कह सकते हैं कि किसी व्यक्ति की आजीविका क्या होगी, कोई व्यक्ति अपने द्वारा उपार्जित धन का कैसे उपयोग करेगा, उसे अपने जीवन में कैसा साथी प्राप्त होगा। इत्यादि का वैज्ञानिक उत्तर देने की पद्धति ज्योतिष शास्त्र के ही अंतर्गत पायी जाती है। यही कारण है कि ज्योतिषशास्त्र प्राचीनतम होते हुए भी चिर नवीन बना हुआ है।

ज्योतिष के चिर नवीनता का आधार हम इसके द्वारा अध्ययन किये जाने वाले अथवा तथ्य रूप में संग्रहित कुछ प्राकृतिक हलचलों के सूक्ष्म अध्ययनों को ही पाते हैं। नक्षत्रों की गति उनकी स्थिति एवं शक्ति का जैसा प्रमाणिक एवं विस्तृत अध्ययन ज्योतिष शास्त्रियों ने संकलित किया है वैसे अन्य किसी शास्त्र में नहीं प्राप्त होता। नक्षत्र ज्ञान की उपलब्धि मात्र करना ही ज्योतिष का उद्देश्य नहीं है। सच पूछिए तो नक्षत्र ज्ञान का मानव जीवन में उपयोग करना ही ज्योतिष का मूल उद्देश्य है। इस उद्देश्य की पूर्ति ज्योतिष और ज्योतिर्विदों ने अत्यंत सफलता एवं

विस्तार के साथ किया है। गणित एवं फलित इन दो रूपों में ज्योतिष से मानव जीवन से सम्बंधित सभी प्रकार की सभी जिज्ञासाओं को शांत करने का प्रयास किया गया है। एक ओर जहाँ भी हम ज्योतिष द्वारा मनुष्य की आयु, शारीरिक एवं मानसिक क्षमता इत्यादि का पता लगाते हैं वहीं दूसरी ओर मनुष्य की प्रवृत्तियाँ, उसके गुप्त प्रयासों का ज्ञान भी ज्योतिष के आधार पर हमारे लिए असंभव नहीं रह जाता।

आचार्य वराहमिहिर कहते हैं– 'पूर्वजन्म में जो शुभाशुभ कर्म किया जाता है, उसको यह शास्त्र उसी प्रकार स्पष्ट कर देता है, जिस प्रकार घनान्धाकर में अदृश्य पदार्थों को दीपक प्रकाशित कर देता है।'

मनुष्य की अपना भविष्य जानने की इच्छा उतनी ही पुरातन है, जितना कि स्वयं मनुष्य। 'To know the future has been the greatest ambition of man'.

वनं समाश्रिता येऽपि निर्ममा निष्परिग्रहाः।
अपि ते परिपृच्छन्ति जयोतिषां गतिकोविदम् ।।

अर्थात् जो सर्व-संग परित्याग कर वन का आश्रय ले चुकें हैं, ऐसे राग-द्वेषशून्य, निष्परिग्रह मुनिजन, संत एवं महात्मा भी ज्योतिषशास्त्र वेत्ताओं से भविष्य ज्ञात करने के लिए उत्सुक रहते हैं, तब साधारण संसारी प्राणी की तो चर्चा ही क्या ?

विश्व में प्राणिमात्र के जीवन का स्तर अनन्त ब्रह्माण्ड के प्राकृतिक प्रभाव पर ही अवलंबित है। इसमें संदेह नहीं है; क्योंकि '**यद् ब्रह्माण्डे तत्पिण्डे**' इस सिद्धांत से यह स्पष्ट विविद होता है कि जिन तत्वों से ब्रह्माण्ड का सृजन हुआ है, उन्हीं तत्वों से ब्रह्माण्डगत समग्र पिण्डों का भी सृजन हुआ है। ग्रहों का प्रभाव जीवन पर पड़ता है, यह कल्पना नहीं प्रत्यक्ष सत्य है। समुद्र में ज्वार-भाटे का कारण चन्द्रमा ही माना जाता है। चन्द्रमा के ही प्रभाव से समुद्र में ज्वार-भाटा आता है, इस तथ्य को सभी वैज्ञानिक स्वीकार कर चुकें हैं।

मनुष्य के शरीर में 80 प्रतिशत जल है, अतः चन्द्रमा का प्रभाव मनुष्य के कार्यकलापों पर होना निश्चित है। अमावस्या और पूर्णिमा को फाइलेरिया की वृद्धि से ज्ञात होती है कि इस रोग में भी प्रधान कारण चन्द्रमा है। अमेरिका में हुए एक सर्वेक्षण के अनुसार अधिकांश हत्याकांड एवं अपराध अमावस्या और पूर्णिमा को ही होते हैं। डॉ. बुड़ाई के अनुसार मनुष्य में कामुकता, पागलपन एवं मिरगी का दौर उन्हीं दिनों के आसपास चलता रहता है। सूर्य का प्रभाव भी स्पष्ट है। सूर्य की गति के अनुसार सूर्यमुखी नमक पुष्प में परिवर्तन आता है। वह सूर्य की ओर घूम जाता है। रूस के वैज्ञानिकों ने खोज की है कि जब आकाश में सूर्यग्रहण होता है तो पक्षी जंगल में 24 घंटे पूर्व कलरव करना बंद कर देते हैं। जंगल के सभी जानवर किसी अज्ञात भय से ग्रसित होकर भयभीत हो जाते हैं। कुमुदिनी नामक पुष्प केवल चन्द्रकिरणों से ही खिलता है। इस पुष्प का रात्रि में खिलना एक विशेष अर्थ रखता है। इसी प्रकार कमल दिन में खिलता है और रात में

संपुटित हो जाता है। सूर्य एवं चंद्रग्रहण के विषय में गणना कई वर्ष पूर्व कर ली जाती है। अतः सिद्ध हो जाता है कि ग्रहों का प्रभाव मनुष्य, पशु-पक्षी, स्थावर और जंगम सभी पर पड़ता है। यह शास्त्र प्रत्यक्ष है, जिसके गवाह सूर्य और चन्द्र सर्वदा घूम-घूम कर लोगों को साक्षी देते हैं– **'प्रत्यक्ष ज्योतिष शास्त्र चन्द्राकौ यस्य साक्षिणौ।'**

ज्योतिषशास्त्र एवं चिकित्साशास्त्र का सम्बन्ध भी प्राचीनकाल से चला आ रहा है। एक चिकित्सक के लिये यह आवश्यक है कि वह ज्योतिषी भी हो। इससे उसे रोग-निदान में सरलता का अनुभव होता है। आज अमेरिका में अधिकतर डाक्टर मेडिकल एस्ट्रोलॉजी का अध्ययन कर रहें हैं। सम्प्रति चिकित्साविज्ञान ने वैज्ञानिक यंत्रों द्वारा जैसे एक्स-रे, रक्त-परीक्षण और रक्तचाप-परीक्षण आदि से निःसंदेह ही रोग-निदान की दिशा में बहुत सुधार किया है, परन्तु किसी की बीमारी का उदय व्यक्ति के मनोवैज्ञानिक व्यक्तित्व, स्वाभाव और अंग-रचनाओं के विश्लेषण पर आधारित होता है। उसके लिए जन्मकुण्डली ही व्यक्ति के स्वरूप का उद्घाटन कर सकती है। इस प्रकार रोग-निदान में भी ज्योतिष-शास्त्र का महत्वपूर्ण योगदान है।

प्रायः भविष्यवाणियाँ गलत होने पर ज्योतिषशास्त्र को दोष दिया जाता है, परन्तु गलत भविष्यवाणियों के कारण इस प्रकार हैं– जन्म-समय का सही नहीं होना, गणित कि अशुद्धि, ज्योतिर्विद का अल्पज्ञान।

राष्ट्र कवि मैथिलीशरण गुप्त ने अपनी पुस्तक 'भारत-भारती' में ठीक ही कहा है –

विज्ञान से भी 'फलित ज्योतिष' हो रहा अब सिद्ध।
यद्यपि अविज्ञों से हुआ वह निंद्य और निषिद्ध है॥

सन्दर्भ ग्रन्थ-

1. भारतीय ज्योतिष का इतिहास।
2. भारतीय ज्योतिष (शिवनाथ झारखण्डी)।
3. बृहसंहिता।
4. वेदाङ्ग ज्योतिष।
5. भारत-भारती।

अतिथि प्राध्यापक
के.उ.ति.शि.सं., सारनाथ, वाराणसी
मो.नं.- 9696569863

प्राचीन भारतीय संस्कृति और सभ्यता का आधुनिक युग में अभाव एवं अमानवीय कृत्यों का प्रभाव

—एस. पी. सिंह—

सम्पूर्ण वैश्विक धरातल पर समस्त प्राणियों में श्रेष्ठ कहे जाने वाले प्राणी 'मानव' का इतिहास जहाँ एक ओर समूचे जगत् में सुखद और सर्वोपरि स्थान रखता है, वहीं दूसरी ओर उसकी स्थिति अत्यन्त दुःखद एवं दयनीय भी है।

आज मनुष्य 21वीं सदी में प्रवेश कर चुका है। मानव-विकास के क्षेत्र में एक के बाद एक अनगिनत पीढ़ियों का प्रादुर्भाव भी हुआ है। जिस प्रकार प्रत्येक प्राणी का विकास हुआ है, उसी प्रकार हमारे देश-समाज और सांस्कृतिक-परम्परा का भी विकास होना चाहिए, किन्तु पूर्वकाल की अपेक्षा वर्तमान काल में इसमें अभाव होता नजर आ रहा है।

सर्वत्र अनेक प्रकार की नवीन तकनीकी शिक्षा-पद्धति एवं विज्ञान का आधुनिक विस्तार बहुत आगे बढ़ चुका है, जिससे मनुष्य ने अपने जीवन में काफी तरक्की कर ली है। इसी से सभी लोगों को इच्छित अनेक भौतिक सुख-सुविधाओं का पर्याप्त लाभ भी हो रहा है। किन्तु सबसे बड़ी विडम्बना तो इस बात की है कि इतना सब होने के बावजूद इंसान जितनी सुख-सुविधाओं को भोग रहा है, उतनी ही अनगिनत बीमारियों, व्याधियों और विवादित समस्याओं में भी उलझता भी जा रहा है।

यह सब देखकर ऐसा प्रतीत होता है कि जहाँ प्राणी तकनीकी स्तर पर स्वयं के लिए अनेक तरह की सुविधाएं बढ़ाता जा रहा है, वहीं इन सबके साथ-साथ उसके सामने अनेक समस्यायें भी उत्पन्न हो रही हैं। इसी से प्रत्येक प्राणी इनका शिकार होता जा रहा है। कुछ आपदायें एवं समस्यायें प्राकृतिक रूप से स्वतः उत्पन्न होती हैं, पर कुछ मानव द्वारा प्रकृति में हस्तक्षेप करने से पैदा हो रही हैं। सारे संसार में किसी न किसी रूप में नाना प्रकार की मुसीबतें इन्हीं सब कारणों के चलते जन्म ले रही हैं।

दूसरी ओर इस सम्पूर्ण सृष्टि का संचालन करने वाला परमात्मा, जिसके बिना एक पत्ता भी नहीं हिलता, उसके प्रति आस्था कभी बहुत अधिक हुआ करती थी, धीरे-धीरे वह विलुप्त होती जा रही है। जिस परमात्मा ने इस सम्पूर्ण सृष्टि की रचना की है, यह सारा संसार उन्हीं की कृपा से चल रहा है। इसके बावजूद लोगों में उस ईश्वर के प्रति लगाव और विश्वास पहले की अपेक्षा बहुत कम हो गया है।

भगवान् के प्रति आस्था, सच्ची श्रद्धा-भक्ति, उनका कीर्तन-भजन, ध्यान-उपासना आदि करने की कमी भी दिन-पर-दिन अब होती दिखाई दे रही है। ऐसा विशेषकर आधुनिक पीढ़ी में

अधिक देखने को मिल रहा है । इसके साथ-साथ अपनी भारतीय संस्कृति और सभ्यता के प्रति भी लोगों की रुझान कम होती नजर आ रही है। साथ ही, लोगों की विशेष रुचि न होने के कारण अच्छे-अच्छे ज्ञानवर्द्धक ग्रन्थों का अध्ययन, श्रेष्ठ सुधीजनों, विद्वानों एवं ज्ञानीजनों के मार्गदर्शन और ज्ञानपरक उपदेशों तथा पूर्वजों द्वारा प्राप्त होने वाले अच्छे संस्कारों से वे निरन्तर वंचित होते जा रहे हैं । इन्हीं कारणों से आज समाज में लोगों के अन्दर इन सभी गुणों का अभाव देखने को मिल रहा है ।

हमारा भारतवर्ष कभी सम्पूर्ण विश्व में प्राचीनकाल में 'सोने की चिड़िया' कहा जाता था । इसकी प्रसिद्धि चराचर जगत् में सर्वत्र व्याप्त थी । अनेक देश इसे 'विश्व-गुरु' के नाम से भी सम्बोधित करते थे । इसका प्रमुख कारण यही है कि यहाँ की सम्पूर्ण भारतीय संस्कृति को एक मूलभूत धरोहर के रूप में प्राचीनकाल से ही महान् विभूतियों द्वारा सदैव संरक्षित करके रखा गया है । इसमें श्रेष्ठ मनीषी योगी-तपस्वी, ऋषि-मुनियों (साधु-सन्तों), गुरुजनों, विद्वज्जनों और हमारे पूर्वजों तथा धार्मिक ग्रन्थों का विशेष योगदान रहा है । इस अमूल्य सम्पदा के माध्यम से सम्पूर्ण मानव-समाज को निरन्तर लाभ होता रहा है ।

इसके अतिरिक्त भगवान् के अवतरण होने की अनगिनत घटनाओं के बारे में अक्सर लोग जानते हैं । आदिकाल से ही समय के अनुकूल आवश्यकता पड़ने पर सभी युगों (सतयुग, त्रेता, द्वापर और कलियुग) में भगवान् स्वयं नाना रूपों में अवतरित होकर उन सभी राक्षसी प्रवृत्ति वाले दुष्ट, अधर्मी, दुष्कर्मी, दुराचारी, हिंसक, पापी आदि का अन्त करके सारी सृष्टि की रक्षा तथा कल्याण करते रहे हैं । समय-समय पर जगत् के समस्त प्राणियों को सत्य, धर्म, न्याय और कर्म के उत्तम मार्ग पर चलने का उपदेश भी देते रहे हैं ।

ईश्वर की ऐसी असीम अनुकम्पा इस भारत देश में निरन्तर देखने को मिलती रही है, जबकि ऐसा अन्यत्र किसी भी देश में नहीं दिखाई देता । यहाँ की संस्कृति का स्थान सारे जगत् में अत्यन्त लोकप्रिय एवं प्रशंसनीय रहा है । इसीलिये इस देश को समूचे विश्व से अपरिमित सम्मान एवं गौरवपूर्ण प्रतिष्ठा भी प्राप्त होती रही है ।

आज के सन्दर्भ में देखें तो प्राचीन और आधुनिक समय की मानवीय गतिविधियों एवं विभिन्न प्रकार के क्रियाकलापों में कितना अन्तर आ गया है । हमारे देश में बहुत से ऐसे लोग हैं, जिनके अनीतिपूर्ण व्यवहारों एवं दुष्कृत्यों के कारण अनगिनत प्रतिकूल स्थितियाँ उत्पन्न हो रही हैं, जिससे सामाजिक ह्रास हो रहा है । अनेक धर्म एवं सम्प्रदाय के लोगों में जातिवाद, आपसी मतभेद, एक-दूसरे के खिलाफ हीन-भावना तथा सामाजिक एवं राष्ट्रीय स्तर पर विभिन्न मुद्दों को लेकर लड़ाई-झगड़े हो रहे हैं । व्यक्ति-व्यक्ति में विपरीत स्थितियाँ एवं प्रतिक्रियाएं उत्पन्न हो रही हैं, जिसके कारण एक-दूसरे के प्रति ईर्ष्या-द्वेष, वैमनस्य, प्रतिशोध की भावना, अनुचित कार्यों के द्वारा दूसरों का हित करने के बजाय अहित करना, लोगों को

प्रताड़ित करना, यातनाएं देना, दुर्व्यवहार करना, दुराचार, अनीति, अनाचार, हिंसा, निन्दा, असत्य, अशिष्टता जैसी न जाने कितनी विकृतियों के शिकार बन चुके हैं। नीचे से लेकर ऊपर तक, घर से लेकर देश-समाज और पूरे वैश्विक स्तर तक सर्वत्र विरोधाभास और नीचा दिखाने की आपसी होड़ लगी है। अपने स्वार्थ के चलते परार्थ अथवा परोपकार के बारे में न सोचना, स्वयं के मन में पल रही इन तमाम दुर्भावनाओं और कमियों के बारे में विचार न करते हुए दूसरों में अनगिनत कमियाँ निकालना, लोगों को उपदेश देना किन्तु अपनी बुराइयों की परवाह न करना, दोषारोपण करना आदि नकारात्मक सोच के बीच लोग जी रहे हैं।

यदि मानव-समाज में ऐसी ही विवादास्पद स्थितियाँ बनी रहीं, तो न कभी आपसी एकता रहेगी, न लोगों में एकमत रहेगा और न ही सुदृढ़ एवं प्रगतिशील समाज बनेगा। इस प्रकार हम विश्व के अन्य विकसित देशों की उच्च श्रेणी में अपने देश को उचित स्थान दिलवाने की कैसे कल्पना कर सकेंगे?

वर्तमान समय में अधिकतर लोगों का 'जीवन जीने का तरीका' एकदम अव्यवस्थित हो गया है। दिनचर्या ठीक न होने से खान-पान, रहन-सहन, सोना-जागना सब कुछ अनियमित-सा हो गया है। समयबद्ध तरीके की कोई सही और सुनियोजित कार्य-प्रणाली ही नहीं है। ऐसा प्रतीत होता है कि लोग 'जीवन जीने की कला' से ही अनभिज्ञ हो गये हैं।

इसके अतिरिक्त नियम-संयम, आचार-विचार, व्यवहार, नीति, न्याय, धर्म, सुकर्म, सदाचार, संकल्प, सन्तोष, धैर्य, क्षमा, साहस, आत्मबल, सहनशीलता, त्याग, करुणा, प्रेम, सत्य, कर्तव्यनिष्ठा, आदर-सम्मान, सेवाभाव, किसके प्रति क्या होना चाहिए, छोटों के प्रति प्यार, बड़ों को आदर, लोक-लाज, आपसी मेल-जोल, भाई-चारा, एकता व अखण्डता को अक्षुण्ण बनाये रखना आदि गुणों को पुराने समय के लोगों में जितना देखा-सुना जाता था, उतना आज के समय में नहीं दिखाई देता।

अधिकतर युवा जन ऐसे हैं, जो इन सारे नैतिक कर्तव्यों, दायित्वों, जिम्मेदारियों और संस्कारों से दूर होते जा रहे हैं। शायद यही कारण है हमारे पारिवारिक विघटन और देश-समाज के पतन का। इस प्रकार इन सभी कमियों पर दृष्टि डालते हुये हम सभी लोगों को नयी पीढ़ी की ओर ध्यान इंगित करना चाहिये। इसके लिए अभिभावक, माता-पिता व श्रेष्ठ शिक्षित विज्ञजनों को अपने ही परिवार से शुरुआत कर युवा-पीढ़ी में प्रारम्भ से ही जागरूकता लाने का हरसंभव प्रयास करना चाहिए। इस तरह विलुप्त होती अपनी भारतीय संस्कृति और सभ्यता को पुनः हम संबल प्रदान कर उसे संरक्षित, संवर्द्धित एवं सुरक्षित रख सकने में कामयाब हो सकेंगे।

प्रकाशन सहायक
के.उ.ति.शि.सं., सारनाथ, वाराणसी
मो.नं-. 8173885582

घरौंदा

—डॉ. कविता त्रिपाठी—

अनीशा आज उच्चकोटि की कथाकार है। उसने सफलता की उस बुलन्दी को छुआ है, जिसकी उसने कल्पना भी नहीं की थी। आज का दिन अनीशा के लिए बहुत शुभ है उसके नये उपन्यास ''घरौंदा'' का लोकार्पण जो होने जा रहा है। शहर के विद्वान् एवं साहित्यकार सम्मिलित होने वाले हैं। शहर के कोने-कोने से उसके प्रशंसक मिलने के लिए व्याकुल हैं और कुछ ने तो फोन के माध्यम से उसके उपन्यास की समीक्षा की। अनीशा अपने प्रत्येक उपन्यास के लोकार्पण में पीले रंग की साड़ी पहनती है। उसका मानना है कि इस रंग की साड़ी पहनने से उसे अजीब शान्ति मिलती है और लोगों के प्रश्नों के उत्तर देते समय वह विचलित नहीं होती।

लोकार्पण-कार्यक्रम आरम्भ हुआ। इस उपन्यास की समीक्षकों द्वारा विभिन्न प्रकार से समीक्षा की गई। अन्त में इसे अनीशा की महत्वपूर्ण उपलब्धि माना गया। इसके बाद पत्रकारों से घिर गई। अन्य पत्रकार तो उपन्यास से सम्बन्धित प्रश्न कर रहे थे, लेकिन उनमें से एक पत्रकार पीछे बैठकर बस उसे देख रहा था। तभी उसकी सहेली मीनू ने उसके पास आकर एक कागज दिया, जिसे खोलकर उसने देखा-'मैं आपसे अकेले में मिलना चाहता हूँ।' उसने मीनू को बुलाकर कहा- ''जिसे मैं जानती ही नहीं, उससे क्यों मिलूँ?'' यह कहकर उसने मिलने से मना कर दिया।

लोकार्पण के बाद वह अनाथालय गई और वहाँ बच्चों के साथ कुछ वक्त व्यतीत करने के पश्चात् सीधे घर पहुँची। उस समय रात को दस बज रहे थे, मीनू ने दरवाजा खोला, बैठक में प्रवेश करते ही उसने देखा कि उसका कमरा फूलों के गुलदस्ते से सजा है, जिसकी खुशबू चारों तरफ फैल गई थी। पहले तो वह बहुत खुश हुई, पर बाद में उसने सोचा कि आखिर इसे किसने भेजा है? तभी मीनू ने कहा- ''वही पत्रकार जी। वे तुमसे मिलने के लिए बहुत व्यग्र हैं।'' तब उसने मीनू से पूछा- ''तुमने क्या कहा?'' मैंने केवल इतना ही कहा- ''प्रयास करते रहो, एक न एक दिन सफलता अवश्य मिलेगी।'' इतना कहते-कहते वह हँस पड़ी। उसकी हँसी में व्यंग्य का तीखापन था। फिलहाल अनीशा थकी थी और सोने चली गई, पर अनीशा की आँखों के सामने उस पत्रकार का चेहरा रह-रहकर आ जाता था और वह इस सोच में डूब गयी कि वह मिलना क्यों चाह रहा है ?

सुबह हुई। उसने मीनू से कहा- ''उस पत्रकार को दस बजे लाइब्रेरी में बुला लो। वहीं मिल लूँगी।'' वह जब लाइब्रेरी पहुँची, तो देखा वह पत्रकार पहले से वहाँ उपस्थित था। उसे देखकर उसने गुड मार्निंग किया। अनीशा ने भी हल्की मुस्कान के साथ गुड मार्निंग का जवाब दिया। अभी अनीशा उसका नाम पूछते हुए मिलने का उद्देश्य पूछने वाली थी कि तभी उसने कहा- ''मैडम, मैं देवेश शर्मा हूँ आपके उपन्यास 'घरौंदा' के विषय में कुछ पूछना चाहता हूँ।

उसने कहा- ''पूछिए'' । ''लोकार्पण के दिन सभी लोगों ने आपके उपन्यास की समीक्षा अवश्य की, परन्तु उपन्यास के बाह्यपक्ष पर ही लोगों की दृष्टि रह गई, लेकिन उसके आन्तरिक पक्ष की ओर किसी की दृष्टि गई ही नहीं ।'' इसके बाद कुछ झुंझलाहट के साथ अनीशा ने कहा- ''आपके कहने का आशय क्या है ? ''बुरा मत मानिएगा अनीशा जी, मैंने आपका उपन्यास 'घरौदा' चार-पाँच बार पढ़ा । कहीं-कहीं आपके वाक्यों से ऐसा प्रतीत होता है कि वह आपके कर्मफल की यथार्थ अभिव्यक्ति है, और वह अधूरी है । देवेश की बातें सुनकर अनीशा का मन बेचैन हो गया और यह कहकर वह उठ गई कि फिर कभी इस विषय पर चर्चा करेंगे । सीधे वह अनाथालय पहुँची, सोचा, बच्चों के बीच रहूँगी तो मन हल्का हो जाएगा, परन्तु वहाँ भी मन को शान्ति नहीं मिली । बार-बार उसी की बातें कानों में गूँजती रहीं । फिर उसने ड्राइवर को घर लौटा दिया और पैदल चल दिया । चलते-चलते समुद्र के किनारे पहुँची, जहाँ छोटे-छोटे बच्चे बालू के घरौंदे बना और बिगाड़ रहे थे, जिसे देखकर वह अपने उस अतीत को सोंचने लगी, जिसे एक सपना समझकर आज तक भूलने की कोशिश करती रही ।

मेरे घर के बगल में अविनाश नाम का लड़का रहता था । घर के पास एक छोटा-सा तालाब था । उसके साथ हमेशा मैं मिट्टी का घरौंदा बनाती थी और उसी समय मेरे छोटे भाई-बहन आते थे और हमारा घरौंदा रौंद कर अपना घरौंदा बनाने की जिद करते थे और मैं भी उन्हें बनाने को कह देती थी । इस पर अविनाश नाराज हो जाता था । तब मैं कहती थी अरे, ये अपने ही तो हैं । इनका घरौंदा हो या मेरा कोई फर्क नहीं पड़ता, लेकिन अविनाश की नाराजगी बनी रहती थी ।

समय बीतता गया । उच्च शिक्षा के लिए अविनाश दिल्ली चला गया । हम दोनों में बस फोन से कभी-कभी बातें हो जाया करती थीं । व्यस्तता के चलते वह भी धीरे-धीरे बन्द हो गयीं । मैंने जब एम.ए. किया, तो उसी वक्त पिताजी को कुछ कारणवश नौकरी से निलम्बित कर दिया गया । उस समय मैं रिसर्च के बारे में सोच रही थी, परन्तु घर की आर्थिक स्थिति ऐसी नहीं थी कि मैं रिसर्च कर सकूं । फलतः मैं नौकरी की तलाश में लग गई । कुछ दिनों भटकने के पश्चात् कालेज में लेक्चरर हो गई । इसके पश्चात् पिताजी को मैंने सांत्वना दी और सम्पूर्ण घर की जिम्मेदारी अपने ऊपर ले ली । उस जंजाल में ऐसी फँसी कि मैं अविनाश को भी भूल गई थी ।

एक दिन शाम को बैठक रूम में चाय पी रही थी कि दरवाजे पर दस्तक हुई । दरवाजा खोला तो अविनाश सामने खड़ा, उसे देखकर मैं इतनी प्रसन्न हुई कि उसे शब्दों में व्यक्त नहीं कर सकती थी । उसे अन्दर आने को कहा, हम दोनों साथ-साथ बिताए लम्हों को काफी देर तक याद करते रहे और फिर उसी समय तालाब कि किनारे जाकर बचपन के दिनों में खो गये । जब घर वापस गए, तो पिताजी भी आ गए थे । मैं संकोचवश वहाँ से उठकर चाय बनाने चली गई । आई, तो देखा कि पिताजी और अविनाश, दोनों के चेहरे के रंग उड़ गये थे । मैंने उस समय पूछना मुनासिफ नहीं समझा, लेकिन जब दूसरे दिन अविनाश से मिली तो उसने बताया कि पिताजी मेरी शादी तुमसे न करके तुम्हारी छोटी बहन अनुष्का से करना चाह रहे हैं । अब तुम्हीं कुछ कर सकती हो । यह सुनकर मैं स्तब्ध एवं अवाक रह गई । न चाहते हुए भी अविनाश से पिताजी के

फैसले को मानने का अनुरोध किया। पहले तो वह कुछ नहीं बोला, पर बाद में जाते समय कहा- ''अनीशा आज तुम वहीं बचपन के खेल को अपने निजी जिन्दगी से जोड़ रही हो। स्मरण है, जब हम इसी तालाब के किनारे घरौंदा बनाते थे तो तुम्हारे भाई-बहन उसे अपना घरौंदा बना लेते थे और तुम कुछ विरोध नहीं करती थी। आज भी वही स्थिति उत्पन्न कर रही हो। आज जब मैं तुम्हारा जीवन साथी बनना चाह रहा हूँ तो तुम मुझे अपनी बहन का जीवनसाथी बना रही हो। आज वो फिर उसी घरौंदे की तरह तुम्हें मुझसे छीनना चाह रही है और तुम्हें कोई आपत्ति नहीं। माफ करना अनीशा, बचपन तो बचपन था, लेकिन मैं अब तुम्हारे इस त्याग में कोई सहयोग नहीं कर सकता। तुम्हारी तो आदत हो गई है दूसरों के लिए जीना। लेकिन एक समय ऐसा आएगा कि जिसके लिए तुम त्याग कर रही हो, वे ही तुम्हें अकेला छोड़कर चले जाएंगे और तब तक मैं भी बहुत दूर चला जाऊँगा, जहाँ से मेरा लौटना मुमकिन नहीं होगा। अविनाश के एक-एक शब्द मेरे लिए अभिशाप बन गए थे। सच में माता-पिता के मरने के बाद सभी भाई-बहन मुझे तन्हाई में छोड़कर चले गए।

देवेश ने सच कहा है कि ''घरौंदा'' उपन्यास मेरे जीवन की ही कहानी है, जिसे मैं चाहते हुए भी नहीं भूल सकती। फिर मैं देवेश से मिली, अपने और अविनाश के बारे में उसे पूरी कहानी बतायी। इसके पश्चात् धीरे-धीरे देवेश से मेरी नजदीकियाँ बढ़ती गईं। वह मेरे जीवन का हिस्सा बन गया। एक दिन शाम को लॉन में बैठकर हम लोग कॉफी पी रहे थे, तभी मैंने उससे कहा-देवेश! मैंने अपना जीवन एक खुली किताब की तरह तुम्हारे सामने रख दिया। अब मैं बहुत थक चुकी हूँ। मुझे सहारे की जरूरत है। इस पर देवेश गम्भीर होते हुए बोला-क्षमा कीजिएगा अनीशा जी, आपके प्रति मेरा जो भाव है वह अत्यधिक पवित्र है और मैं इसे अपवित्र नहीं होने देना चाहता। आप तो महानता की सीमा को पार कर चुकी हैं और जीवन में आपने बहुत संघर्ष किया। मैं आपसे जो सम्पर्क बनाये रखा, उसके पीछे स्वार्थ मेरा यह था कि मैं आपसे जिन्दगी में आगे बढ़ने के लिए सीख लेना चाहता हूँ। अतः एक शुभचिन्तक के रूप में मैं हमेशा कृतज्ञ रहूँगा।

इसके बाद अनीशा ने कहा-देवेश, तुम मेरे उपन्यास की क्या समीक्षा करोगे? 'घरौंदा' का वास्तविक अर्थ 'मिट्टी का घर', जिसे बार-बार बनाया और बिगाड़ा जाता है। आपने भी हमेशा जिन्दगी में ऐसा ही घरौंदा बनाया। यदि अविनाश जी आपके त्याग में आपका सहयोग दिए होते तो इस उपन्यास का नाम घरौंदा न होकर आशियाना हो गया होता।

देवेश के जाने के बाद मैंने सोचा कि एक ओर अविनाश जो मुझसे बचपन से ही असीम प्रेम करता था, परन्तु पिताजी के फैसले की वजह से मुझे छोड़कर चला गया। दूसरी ओर देवेश मुझे स्वीकार न करते हुए अपने कर्तव्यों के प्रति कृतज्ञ है।

सच तो यही है कि आज तक मैंने जीवन में घरौंदा बनाया और बिगाड़ा ही तो है।

सा-14/70 बी-6, बरईपुर, सारनाथ, वाराणसी
मो.नं.- 9453988251

वर्तमान समाज में भारतीय संस्कृति का स्वरूप

—अंकिता सिंह—

हमारे समाज में भारतीय संस्कृति का स्वरूप आदिकाल से जैसा देखने और सुनने को मिलता है तथा ग्रन्थों में भी व्याप्त है, वह सर्वत्र अत्यन्त लोकप्रिय रहा है। यहाँ की संस्कृति सम्पूर्ण विश्व में अन्य देशों से अलग तरह की पहचान कराती है। भारतीय संस्कृति में अनेकानेक भाषाएँ, संस्कार, परम्पराएँ, रीति-रिवाज, धार्मिक मान्यताएँ, प्रथाएँ, विविधताएँ पायी जाती हैं। जहाँ एक ओर कश्मीर स्थित है वहीं दूसरी ओर उसके विपरीत कन्याकुमारी। जहाँ एक ओर ताजमहल स्थित है वहीं दूसरी ओर कोंणार्क का सूर्य मंदिर। जहाँ कुछ लोग भगवान् विष्णु, ब्रह्मा, शिव, गणेश, बालाजी आदि की पूजा करते हैं, वहीं कुछ दुर्गा, काली, लक्ष्मी, सरस्वती आदि की पूजा-अर्चना भी करते हैं। देश के विभिन्न राज्यों में लोग मराठी, गुजराती, भोजपुरी, बंग्ला, राजस्थानी, तेलुगु, कन्नड़, मलयालम जैसी कई अन्य भाषाएँ बोलते हैं। भिन्न-भिन्न लोगों के भिन्न-भिन्न प्रकार के खान-पान, रहन-सहन और वेशभूषा आदि प्रचलित हैं। परन्तु अनेक विभिन्नताएँ होने के बावजूद भी लोगों में 'एकता की भावना' पायी जाती है तथा इन्हीं विभिन्नताओं के कारण हमारा भारतीय समाज अन्य देशों से पृथक् है। यहाँ की संस्कृति में 'अतिथि देवो भव', 'वसुधैव कुटुम्बकम्', 'अनेकता में एकता' जैसी भावना की प्रमुखता पायी जाती है।

भारतीय प्राचीन संस्कृति ने हमें अपने से बड़ों का आदर करना, सम्मान करना, उनकी आज्ञा का पालन करना, स्नेहपूर्ण आचरण एवं व्यवहार करना, स्त्रियों की इज्जत करना, असहाय लोगों की मदद करना, अपने राष्ट्र की सेवा करना आदि अनेक प्रकार के संस्कारों की सीख दी है। इसके अलावा अपने भीतर के क्रोध, मोह, लोभ, द्वेष, हिंसा, स्वार्थ, अशान्ति आदि का परित्याग करके स्नेह, प्रेम, करुणा, शान्ति, सेवाभाव, अहिंसा, एकता, दयालुता, इंसानियत आदि के मार्ग पर चलने की भी शिक्षा प्रदान की है।

यहाँ की संस्कृति की धरोहर भारत देश को विशेषता प्रदान करती है। इस देश में लोकनृत्य, शास्त्रीय संगीत, साहित्य, हस्तशिल्प, स्मारक, चित्रकला, त्योहार, धार्मिक एवं ऐतिहासिक स्थल आदि बहुत प्रसिद्ध हैं और इसकी ख्याति दूर-देशों तथा विदेशों तक फैली है। भारतीय संस्कृति की लोकप्रियता, विशिष्टता एवं प्रसिद्धि ने केवल अपने देश को ही नहीं, वरन् अन्य देशों को भी अत्यन्त प्रभावित किया है तथा इसका प्रभाव दिन पर दिन और अधिक प्रबल होता दिखाई पड़ रहा है। इसी कारण अन्य देशों से लोग भारत भ्रमण करने आते रहते हैं और यहाँ के सौन्दर्य, विविधता एवं रहस्यों में खो जाते हैं। वे हमारी संस्कृति और सभ्यता को और अधिक

जानने तथा अपनाने का प्रयास करते हैं। ये सभी अपने देशों में जाकर यहाँ की संस्कृति तथा सभ्यता का प्रचार एवं प्रसार भी करते हैं। यही कारण है कि विदेशियों के भीतर भारतीय संस्कृति को लेकर सदैव जिज्ञासा एवं आकर्षण बना रहता है।

यदि विदेशों की बात करें तो वहाँ भी भारतीय संस्कृति और सभ्यता का प्रतिरूप देखने को मिलता है अर्थात् विदेशों में हमारे देश का रहन-सहन, वेशभूषा, खानपान, भाषा तथा मंदिर, गुरुद्वारे, मूर्तियाँ आदि का निर्माण एवं विस्तार होता दिखाई देता है। इसमें भारत के अनगिनत लोग जो विदेशों में रह रहे हैं, उनका विशेष योगदान रहा है। कुछ विदेशी यात्री ऐसे हैं जो एक बार भारत आने के बाद यहाँ बार-बार आना पसन्द करते हैं, तो कुछ ऐसे भी हैं जो यहाँ की संस्कृति से अधिक प्रभावित होने के कारण लोगों में हिल-मिल गये और यहीं बस गये हैं।

जिस प्रकार विदेशों में लोगों ने हमारी संस्कृति को अपनाने का प्रयास किया है, उसी प्रकार भारतीय समाज ने भी विदेशी संस्कृति को आदर एवं सम्मान दिया है और जो उचित लगा उसे अपनाया भी है। हम सभी को ज्ञात है कि परिवर्तन इस जगत् का नियम है और समय-समय पर इस संसार में बदलाव होते रहते हैं, जिसके कारण लोगों के जीवन एवं जीवनशैली में भी परिवर्तन होते रहते हैं। इस कथन का तात्पर्य यह है कि भारतीय समाज में पहले कई कुरीतियाँ, कुप्रथायें एवं रूढ़िवादिता व्याप्त थी, परन्तु पाश्चात्य संस्कृति आने के बाद लोगों की मानसिकता का विकास हुआ। लोगों के सोच-विचार में परिवर्तन हुआ और काफी हद तक इन कुरीतियों, कुप्रथाओं और रूढ़ियों का नाश करने में पाश्चात्य संस्कृति सहायक रही है। स्त्रियों की स्थिति में सुधार हुआ, ऊँच-नीच का भेदभाव खत्म हुआ, सतीप्रथा, बाल-विवाह प्रथा जैसी कुप्रथाओं पर रोक लगी। लोगों ने अपनी स्वतन्त्रता एवं अधिकारों को पहचाना जो कि हमारे समाज के लिए अति उत्तम है। अब वर्तमान में लोग अपनी मर्जी से जी-खा सकते हैं, घूम-फिर सकते हैं, अपनी इच्छा से कपड़े पहन-ओढ़ सकते हैं। हम अपने मन-मुताबिक जो चाहें, वह कर सकते हैं, अब हम स्वतन्त्र हैं।

आज हमारे जीवन में पश्चिमी संस्कृति एवं सभ्यता का रंग इस तरह से चढ़ गया है कि हम इसके अधीन हो चुके हैं। चाहे वह हमारे जीवन से जुड़ा कोई भी क्रिया-कलाप हो, चाहे वह खान-पान या वेशभूषा हो, चाहे भाषा हो या रहन-सहन - हम ऊपर से नीचे तक पाश्चात्य शैली को अपने जीवनशैली में शामिल कर चुके हैं। आज हम परदेश के किसी भी बदलते फैशन को अपनाना चाहते हैं। पहले की महिलाएँ साड़ियाँ, लहँगे तथा पुरुष धोती, कुर्ता, पायजामा आदि धारण करते थे। आज उनका परिधान बदल चुका है। वे जीन्स, स्कर्ट, शर्ट, पैन्ट आदि पहनते हैं। जहाँ पहले लोग पीतल, ताँबे, चाँदी के बर्तन, केले के पत्ते आदि पर भोजन ग्रहण किया करते थे, वहीं आज का मनुष्य स्टील, प्लास्टिक के बर्तनों तथा छुरी-काँटे और चम्मचों से भोजन करना

पसन्द करते हैं। जहाँ प्राचीन भारतीय लोगों की जुबान पर अपने देश का पारम्परिक, शुद्ध एवं स्वादिष्ट भोजन का स्वाद रहता था, वहीं आज वर्तमान में देश-विदेश का व्यंजन लोगों के घर-घर पहुँच गया है। लोग इटेलियन, चायनीज़, मैक्सीकन आदि खाना पसन्द ही नहीं करते, बल्कि खुद पकाते भी हैं।

आजकल के लोगों में एक-दूसरे से मिलने व बात-चीत करने का तरीका भी बदल गया है। पहले के लोग अतिथियों के आने पर बड़े प्रेम एवं आदर भाव के साथ उनका स्वागत-सत्कार करते थे, उनके साथ घण्टों बैठकर बातें हुआ करती थीं। इससे अतिथियों को भी खुशी एवं अपनापन महसूस होता था। लेकिन आजकल के लोगों में ऐसा कम ही देखने को मिलता है। लोग हैलो-हॉय! के साथ मिलते हैं और टाटा-बॉय-बॉय! करके चले जाते हैं। आज की भागदौड़ भरी जिन्दगी में लोगों के पास इतना वक्त ही नहीं है कि वे किसी से ठीक से दो-चार बातें भी कर लें।

लोग तरह-तरह की विदेशी भाषाएँ सीखना एवं बोलना चाहते हैं। लोगों में अंग्रेजी बोलने की होड़ सी लगी हुई है। जिसे अंग्रेजी आती है वह सीना चौड़ा करके घूमता है, क्योंकि आज के दौर में उसे लोग अधिक महत्त्व दे रहे हैं। इसीलिये मातृभाषा हिन्दी के प्रति भी लोगों का रुझान कम हो गया है। न जाने कितने ऐसे लोग हैं, जो न तो हिन्दी पढ़ना चाहते हैं और न ही अपने बच्चों को पढ़ाना चाहते हैं। जिस प्रकार विदेशी अपनी भाषा पर गर्व करते हैं, उसी प्रकार हमें भी अपनी मातृभाषा पर गर्व होना चाहिये तथा उसे महत्त्व भी देना चाहिये, क्योंकि अन्य भाषाएँ हमारे लिये लेखन, अध्ययन और कार्य की दृष्टि से आवश्यक हो सकती हैं, किन्तु हमारे राष्ट्र का गौरव नहीं हो सकतीं। वह तो केवल अपनी मातृभाषा हिन्दी ही हो सकती है।

हमारी वर्तमान युवापीढ़ी एवं उनके आचार-विचार अपने पूर्वजों से बिल्कुल भिन्न एवं विपरीत हैं। आज की युवापीढ़ी वर्तमान के साथ कदम मिलाकर चलना चाहती है। इस कारण वे अपने बड़े बुजुर्गों, उनके संस्कारों तथा अपनी संस्कृति को पीछे छोड़ देते हैं। उनसे बातें करने, साथ चलने और उनके साथ रहने में शर्म महसूस करते हैं। लेकिन शायद उन्हें यह ज्ञात नहीं कि वे जिससे दूर रहना चाहते हैं, वे उनके अपने ही हैं। बुजुर्गों द्वारा दिए हुए संस्कार और शिक्षाएँ सभी युवा जनों के जीवन को उत्तम बनाने हेतु मार्गदर्शन का कार्य करती हैं। इसलिए यह आवश्यक है कि आज के युवाओं को अपने व्यस्त जीवन में से कुछ समय निकालकर अपने परिवार में छोटे-बड़े एवं बुजुर्गों के लिये समय देना तथा उनकी इच्छाओं व आवश्यकताओं के प्रति विशेष ध्यान भी देना चाहिये। बुजुर्गों का भी यह फर्ज है कि वे अपने बच्चों और नयी पीढ़ी को अच्छी शिक्षा एवं संस्कार प्रदान करें तथा अपनी संस्कृति से उनको अवगत करायें, ताकि आज की युवापीढ़ी अपनी संस्कृति और उसकी महत्ता से परिचित हो सके।

इसके अलावा अपनी संस्कृति को जानने व समझने का एक उपाय यह भी है कि आज की युवापीढ़ी को समय-समय पर अपने देश के कोने-कोने का भ्रमण करते रहना चाहिए, जिससे वे हमारे देश में फैली नाना प्रकार की सुन्दरता, विभिन्नता व विविधताओं को जान सकें। अलग-अलग शहरों एवं राज्यों के रहन-सहन, वेशभूषा, खानपान तथा अनेक प्रकार की भाषाओं आदि को जानें तथा उनसे भलीभाँति परिचित होवें। विद्यालयों में भी युवा छात्रों के लिये पाठ्य-पुस्तकों और शिक्षकों के माध्यम से संस्कृति से सम्बन्धित विषय पर पठन-पाठन का कार्य एवं ज्ञान व मार्गदर्शन किया जाना चाहिये।

आज के समय पर जब हम अपनी दृष्टि डालते हैं तो ऐसा प्रतीत होता है कि वर्तमान संस्कृति, प्राचीन संस्कृति की अपेक्षा काफी परिवर्तित हो चुकी है, जिससे आज मनुष्य का ध्यान अपनी प्राचीन संस्कृति से हटता जा रहा है। इसलिये यह विलुप्त होती नजर आ रही है। हमें सदैव यह ध्यान देने की आवश्यकता है कि हम पाश्चात्य संस्कृति में इतना भी ज्यादा न खो जाएं कि अपनी प्राचीन संस्कृति को ही भुला दें। वह भी ऐसी संस्कृति जो हमारे लिये प्रेरणा का स्रोत रही है, जिसने हमें जीना सिखाया है। इसी संस्कृति से आज भी हम सम्पूर्ण विश्व में जाने जाते हैं। इसलिये जीवन के क्षेत्र में प्राचीन एवं वर्तमान संस्कृति का औचित्यपूर्ण आपसी समन्वय बनाये रखना अत्यन्त आवश्यक है।

आवास नं. 2/3,
के.उ.ति.शि.सं., सारनाथ, वाराणसी
मो.नं -.मो.नं.- 9392120510

तुम किसके वोटर हो भाई?

—राजेश कुमार मिश्र—

लोक तंत्र के किस खूँटे से बँधी तुम्हारी किस्मत भाई?
तुम किसके वोटर हो भाई?
शान्ति काल में कभी नहीं दिखते हम सबको
क्या करते रहते हो भाई
तुम किसके वोटर हो भाई?
किसके स्वप्न सजाते
किसका लोभ कुण्ड भरते हो भाई
तुम किसके वोटर हो भाई?
अपनी दो छोटी आँखों में
स्वाभिमान से भूख प्यास जीने के सपने
लिए हुए फिरते हो भाई
तुम किसके वोटर हो भाई?
किसी योजना चिंता में स्वर नहीं तुम्हारा
बाहर आने पर असह्य अस्तित्व तुम्हारा
तुम कितने उजबक हो भाई
तुम किसके वोटर हो भाई?
काम करो और खाक बनों यह सत्य तुम्हारा
छोटी-छोटी खुशियों पर हक नहीं तुम्हारा
तुम कैसे अटपट हो भाई
तुम किसके वोटर हो भाई?
जग के सारे दर्प समय के सपनों में है श्वेद तुम्हारा
किन्तु मोल बस केवल रोटी
मौत और रोटी में भी रोटी चुनते हो
तुम कितने निश्चित हो भाई
तुम किसके वोटर हो भाई?
लोक तंत्र के किस खूँटे से बँधी तुम्हारी किस्मत भाई
तुम किसके वोटर हो भाई?

प्रलेखन अधिकारी
के.उ.ति.शि.सं., सारनाथ, वाराणसी
मो.नं-. 9452073073

कविता

—डाक्टर अरुण कुमार राय—

प्रथम सोवारिग्पा दिवस 11/9/2019 के शुभ अवसर पर प्रातः स्मरणीय, भैषज्य गुरु भगवान बुध एवं आचार्य-चिकित्सको के अथक परिश्रम को शत-शत नमन।

"अभिनन्दन अभिवादन,
जन करुणा-क्रंदन का अवलंबन।
नित नवीन ज्ञानार्जन,
नूतन शोध समायोजन।
त्रिरत्नो का आवाहन,
त्रिदोषो का मर्दन।
प्रतीत्यसमुत्पाद का ले आधार,
जन कष्टों करे सन्धान।"

अतिथि प्राध्यापक
के.उ.ति.शि.सं., सारनाथ, वाराणसी
मो.नं.- 9452922660

कविता

—विश्वप्रकाश त्रिपाठी—

(1) माँ से विनती

माँ ऐसा दे आशीष मुझे,
जब अर्पण कर दूँ शीश तुझे।
मुख पर तेरी जयकार रहे,
मन में तेरा आभार रहे ॥ 1 ॥

यह श्वास चले या रुक जाए,
यह शीश झुके या कट जाए।
मन में तेरा ही प्यार रहे,
बस तेरा हित आधार रहे ॥ 2 ॥

जग मान करे अपमान करे,
दे ताना या गुणगान करे।
या नाम खुदे दीवारों में,
या गिनती हो मक्कारों में ॥ 3 ॥

जो खल हो जो व्यभिचारी हों,
जो लोभी भ्रष्टाचारी हों।
माँ जो तेरा व्यापार करें,
हम उन सब का प्रतिकार करें ॥ 4 ॥

माँ तेरी खातिर सब सहर्ष,
हो स्वर्ग, नरक या कोटि वर्ष।
जब तक सारा संसार रहे,
बस तेरी जय जयकार रहे ॥ 5 ॥

हर पुण्य सही हर पाप सही,
तेरे हित सारी बात सही।
बस राष्ट्र कार्य ही सर्वोपरि,
उससे हट कर कोई धर्म नहीं ॥ 6 ॥

फूलों की हो या काँटो की,
या साथी झंझावातों की।
जिस पर चल तेरा मान बढ़े,
बस एक मात्र वह मार्ग सही ॥ 7 ॥

माँ तुझसे ये मेरी विनती,
जब कर बेटों की तूँ गिनती।
जग जाने चाहे न जाने,
पर तुझको मेरा ध्यान रहे,
पर तुझको मेरा ध्यान रहे ॥ 8 ॥

(2) श्रद्धाञ्जलि

माँ तेरी श्रद्धाञ्जलि को आज मेरे पास क्या है,
मास नौ अपने उदर में दे शरण मुझको रचा जब।
जन्म की अति वेदना को तुष्ट हो तुमने सहा जब,
माँ तेरी उस पीर का मुझ पर कहूँ ऋण भार क्या है।

माँ तेरी श्रद्धाञ्जलि को आज मेरे पास क्या है,
क्षुत्तृषा से हो व्यथित जब मैं तेरी आँचल में आया,
सारे जग में जो सुरक्षित था तेरा वह अंक पाया।
माँ तेरे उपकार के बल पर चली यह श्वास क्या है।
माँ तेरी श्रद्धाञ्जलि को आज मेरे पास क्या है,
स्नेह से तुमने सहे कितने कहो पद-घात मेरे,
दंश मेरे दशन के कितने सहे आँचल ने तेरे
माँ तेरी ममता से बढ़कर विश्व में निःस्वार्थ क्या है।
माँ तेरी श्रद्धाञ्जलि को आज मेरे पास क्या है,
ज्वर हुआ मुझको कभी तब तुम न सारी रात सोयी,
जब हुई पीड़ा मुझे तब तुम हजारों बार रोयी।
क्या कहूँ इस सृष्टि का तुझसे बड़ा सम्मान क्या है,
माँ तेरी श्रद्धाञ्जलि को आज मेरे पास क्या है,
अश्रु हैं बस अश्रु है बस अश्रु हैं बस अश्रु ही हैं।

शोध सहायक
के.उ.ति.शि.सं., सारनाथ, वाराणसी
मो.नं.- 9455925269

कविता

—टाशी छेरिङ्—

1. आह्वान

मुझ एक से कुछ नहीं होगा,
तुम साथ दो, तो कुछ सोचूँ।

यह देश वो नहीं रहा,
यह ज़मीन वो नहीं रही।
न हवाओं का रूख वही है,
न धाराओं की मिठास वही है।
सब कुछ बदला-सा लगता है,
लोग भी बदल-से गये हैं।
मुझ एक से कुछ नहीं होगा,
तुम साथ दो, तो कुछ सोचूँ।

कहाँ तो यह बुद्ध की कर्मभूमि थी,
नानक, कबीर, मीरा की जन्मभूमि थी।
जहाँ इन्सानियत सर्वोपरि थी,
जिसका आधार ज्ञान-सागर था।
बनते बिगड़ते मन्दिर मसजिद हैं,
इनमें भी मूरत बसाये जाते हैं।
पर यह वो मूरत नहीं है,
जो कभी दिलों में बसती थी।
मुझ एक से कुछ नहीं होगा,
तुम साथ दो तो कुछ सोचूँ।

2. समर्पण

न धन से अमीर हूँ,
न रत्नों का अम्बार है।
चन्द लम्हों की सौगात है,
तुम चाहो तो ले सकती हो।

न रंग-रूप से मशहूर हूँ,
न ही चाटुकारिता का भान है।
चन्द लम्हों की सौगात है,
तुम चाहो तो ले सकती हो।

मैं खुदी से अनजान हूँ,
औरों की क्या कहूँ।
भलाई-बुराई से अनभिज्ञ,
अनजान पथ का राही हूँ।
न ज्ञान का सार है,
न ही अज्ञान का भान।
चन्द लम्हों की सौगात है,
तुम चाहो तो ले सकती हो।

ढलते सूरज का पथिक हूँ,
असीम दुःखों का साया है।
कब सुध-बुध खो बैठूँ,
मुझमें माया की छाया है।
चन्द लम्हों की सौगात है,
तुम चाहो तो ले सकती हो।

शोध सहायक
के.उ.ति.शि.सं., सारनाथ, वाराणसी
मो-.नं. 9450239768

हिन्दी राजभाषा

—कुनगा—

कहते हैं कि हिन्दी भाषा हमारी शान है, बोलते समय हम इससे बड़े परेशान हैं!
भारतीय संस्कृति हमारी पहचान है,
दूसरों की संस्कृति को अपनाकर हम अपनी संस्कृति से अनजान हैं!

दूसरों की भाषा को माथे का तिलक बना बैठे हैं, अपनी मातृभाषा को पाँव तले दबा बैठे हैं!
फिर भी हम बड़े गौरव से कहते हैं, हिन्दी और संस्कृति हमारे भारतवासियों की जान है!

अतिथि बनकर आए थे, पता नहीं चला कि कब मालिक बन गए!
दो सौ साल कम नहीं होते, तब तक वे हम पर राज करते रहे!
भारत देश तो अपना था फिर भी, गुलाम की तरह जिन्दगी जीते रहे!
कहने को तो गाँधी जी ने गोरों से, देश को आजाद है करवाया!
इतना हो जाने के बावजूद भी, आखिरकार क्यों हमने उनकी भाषा तथा संस्कृति को अपनाया!
फिर भी हम बड़े अभिमान से कहते हैं, संस्कृत तथा संस्कृति हमारे देवों का वरदान है!

प्रधानमन्त्री से लेकर जन-जन वासियों ने, हिन्दी बोलने की प्रतिज्ञा ली है!
भारत के हर कौने-कौने में, हिन्दी प्रयोग करने की अनुमति दी है!
बड़े दुःख की बात है हमारे राजकाज में, या दफ़्तर में हिन्दी का स्थान कहीं पे भी नहीं है!
मोटे अक्षरों में अंग्रेजी को बढ़ावा देकर, हमने हिन्दी का अस्तित्व मिटा दिया है!
भारत की भूमि में अंग्रेजी बीज बोया है, और फसल हिन्दी बढाने की सोच ली है!
फिर भी हम बड़े घमण्ड से कहते हैं, हिन्दी और संस्कृति हमारे पूर्वजों की देन है!

मंच में नेता सीना तानकर कहता है, कि हिन्दी हमारी राजभाषा है!
घर आकर बेटा अंग्रेजी जरूर पढ़ना, नहीं तो भूखे मरने की आशा है!
लड़का देशी है पर हरकत विलायती की है,
अंग्रेजी आए न आए पर बोलने का भूत सर पर खड़ा है!
भले ही हिन्दी शुद्ध बोलना आए, हिन्दी बोलते समय शर्म महसूस होती है!
फिर भी हम बड़े अकड़ कर कहते हैं, हिन्दी और संस्कृति हमारा मान है!

अगर कोई जवाब अंग्रेजी में देता है तो, गौर से देखना उसकी छाती छप्पन इंच चौड़ी होती है!
अगर वही जबाब कोई हिन्दी में देता है तो, वही छाती चूहे के दिल के बराबर होती है!
हम भारतवासियों में भ्रम नाम की बीमारी होती है,
अगर कोई हिन्दी बोले तो उसे अनपढ़ गवांर समझते हैं!
दो साल का बच्चा अंग्रेजी बोले तो, उसे ग्रेजुएट पास समझते हैं!
बेटा तूँ ने अंग्रेजी में भाषण देकर, हमें सातवें आसमान पर बिठा दिया है!
पर बेटी तूने हिन्दी में बोलकर, समाज में हमारी इज्जत को घटा दिया है!
फिर भी हम बड़े निडर होकर कहते हैं, हिन्दी तथा संस्कृति हमारी भारतीय होने की प्रतीक है!
अंग्रेजी को सर्वश्रेष्ठ मानने वालों, यह तुम्हारी सबसे बड़ी भूल है!
भारत के राज्य को मजबूत, और जोड़कर रखने वाला धागा है हिन्दी!
खुलकर जीने की आज़ादी देने वाली, दूसरों से हमारा हक़ छीनकर देने वाली!
शरणार्थी न बनाकर भारत का हिस्सा हमें बनाने वाली,
सीना तानकर हम भारतवासी कहते हैं हिन्दी!
राम-कृष्ण की बोली है हिन्दी, जवानों की बलिदान है हिन्दी!
कश्मीर से लेकर कन्याकुमारी तक बहती है हिन्दी, हमारे रगों में जो दौड़ रही वो है हिन्दी!
अब हम विश्वास से कह सकते हैं, मेरे वतन की भाषा है हिन्दी!!

छात्र (आचार्य, प्रथम)
के.उ.ति.शि.सं., सारनाथ, वाराणसी
मो.नं.-8081645611

राजभाषा सप्ताह समारोह-2021

(एक प्रतिवेदन)

राजभाषा कार्यान्वयन समिति द्वारा दिनांक 14 से 18 सितंबर, 2021 तक अपराहन 2 बजे से 5 बजे तक संस्थान में राजभाषा सप्ताह समारोह आयोजित किया गया, जिसके अंतर्गत निम्न-लिखित कार्यक्रम आयोजित किए गये-

सप्ताह समारोह के शुभारम्भ पर गृह मंत्रालय द्वारा प्राप्त प्रमुख विद्वानों एवं राजनेताओं के हिंदी विषयक विचारों को आकर्षक ढंग से दो दिन पूर्व ही संस्थान के सभी प्रमुख भवनों के प्रवेश द्वार पर प्रदर्शित कर दिया गया।

दिनांक:14.09.2021

डॉ. आर. के. उपाध्याय माननीय कुलसचिव महोदय की अध्यक्षता में हिन्दी दिवस का उद्घाटन सरस्वती प्रतिमा पर माल्यार्पण एवं दीप प्रज्ज्वलन के साथ हुआ । उक्त अवसर पर अध्यक्ष महोदय ने मुख्य अतिथि प्रो. राम मोहन पाठक (पूर्व कुलपति, दक्षिण भारत हिन्दी प्रचार सभा, चेन्नई) का भोट परंपरा के अनुसार खतक देकर स्वागत किया एवं स्मृति चिह्न प्रदान किया । तदुपरांत अध्यक्ष महोदय ने उपस्थित अधिकारियों/कर्मचारियों को भारत सरकार, गृह मंत्रालय, राजभाषा विभाग द्वारा जारी **राजभाषा प्रतिज्ञा** की शपथ दिलायी तथा डॉ. ज्योति सिंह, सहायक प्रोफेसर, हिन्दी ने गृहमंत्री के संदेश का वाचन किया । उक्त अवसर पर मुख्य अतिथि प्रो. राम मोहन पाठक ने **राजभाषा हिन्दी: प्रगति, प्रयास और नई संभावनाएं** विषय पर व्याख्यान देते हुए कहा कि हिंदी स्वाभिमान एवं आत्मगौरव की भाषा है । आने वाला कल हिंदी का होगा । भारत का समग्र विकास तभी संभव है, जब भारतवासी हिंदी में चिंतन और लेखन करेंगे । डॉ. अनुराग त्रिपाठी, सदस्य सचिव, राजभाषा कार्यान्वयन समिति ने संचालन तथा श्री राजेश कुमार मिश्र, प्रलेखन अधिकारी ने धन्यवाद ज्ञापित किया । विषय प्रवर्तन एवं स्वागत संबोधन प्रो. रामसुधार सिंह, विजिटिंग प्रोफेसर ने किया ।

दिनांक:15.09.2021

दिनांक 15 सितम्बर, 2021 को राजभाषा कार्यान्वयन समिति की बैठक संस्थान के कुलसचिव डॉ. आर. के. उपाध्याय की अध्यक्षता में कुलसचिव कार्यालय के समिति कक्ष में आयोजित की गयी । बैठक में राजभाषा तिमाही रपट, वार्षिक कार्यक्रम 2021-2022 एवं राजभाषा संसदीय समिति के विभिन्न मदों पर पावर प्वाइंट प्रेजेंटेशन श्री भगवान पाण्डेय, राजभाषा परामर्शी द्वारा प्रस्तुत किया गया तथा सदस्यों एवं अध्यक्ष महोदय द्वारा चर्चा की गयी । उक्त अवसर पर सदस्यों ने राजभाषा के प्रगामी प्रयोग के संबंध में अपने विचार रखे । अध्यक्षीय संबोधन के साथ बैठक का समापन हुआ । बैठक में डॉ. रामसुधार सिंह, डॉ. रमेश चन्द्र नेगी, श्री टी. आर. शाशनी, डॉ. सुशील कुमार सिंह तथा डॉ. अनुराग त्रिपाठी आदि उपस्थित रहे ।

दिनांक:16.09.2021

दिनांक 16 सितम्बर, 2021 को राजभाषा कार्यशाला का आयोजन किया गया। उक्त कार्यशाला में श्री आर. के. गुप्त (वरिष्ठ कार्मिक अधिकारी, बनारस रेल इंजन कारखाना, वाराणसी) ने **"पत्र, परिपत्र एवं अर्ध सरकारी पत्र"** विषय पर एवं श्री विनय कुमार सिंह (मुख्य प्रबंधक/राजभाषा, भारतीय स्टेट बैंक, वाराणसी) ने **"सूचना, अधिसूचना, कार्यालय ज्ञापन"** विषय पर विशेषज्ञता पूर्ण व्याख्यान तथा प्रतिभागियों के प्रश्नों के संतोषप्रद उत्तर दिए। कार्यशाला की अध्यक्षता करते हुए संस्थान के कुलसचिव डॉ. आर. के. उपाध्याय ने कहा कि संविधान द्वारा राजभाषा सम्बन्धी दिए गए दायित्वों का निर्वहन करते हुए हम सभी सरल हिंदी का अधिकतम प्रयोग सुनिश्चित करेंगे। इससे राष्ट्र के विकास की गति तेज होगी और प्रशासन में पारदर्शिता आएगी। सहा. कुलसचिव श्री प्रमोद सिंह ने भी अपने विचार व्यक्त किए। डॉ. सुशील कुमार सिंह, सदस्य, राजभाषा कार्यान्वयन समिति ने कार्यक्रम का संचालन तथा श्री राजेश कुमार मिश्र, प्रलेखन अधिकारी ने धन्यवाद ज्ञापित किया।

दिनांक:17.09.2021

दिनांक 17 सितम्बर, 2021 को प्रथम सत्र में वाद-विवाद प्रतियोगिता **(विषय -राजभाषा की स्थिति पूर्णतः संतोषप्रद है/नहीं है) (पक्ष-विपक्ष)** का आयोजन किया गया, जिसके निर्णायक डॉ. रामसुधार सिंह (विजिटिंग प्रोफेसर, केंद्रीय उच्च तिब्बती शिक्षा संस्थान, सारनाथ,

वाराणसी) एवं डॉ. उदय प्रकाश (सह आचार्य, श्री बलदेव पी. जी. कालेज, बड़ागाँव, वाराणसी) थे। कार्यक्रम की अध्यक्षता डॉ. हिमांशु पाण्डेय, उप कुलसचिव ने की।

द्वितीय सत्र में मौखिक प्रश्नोत्तरी प्रतियोगिता का आयोजन किया गया, जिसमें संस्थान के राजभाषा परामर्शी श्री भगवान पाण्डेय ने राजभाषा, संस्थान एवं साहित्य से संबंधित प्रश्न पूछे। उक्त प्रतियोगिता में संस्थान के कार्मिकों ने बढ़-चढ़कर हिस्सा लिया। कार्यक्रम के अध्यक्ष एवं मुख्य निर्णायक श्री राजेश कुमार मिश्र, प्रलेखन अधिकारी, संचालन डॉ. ज्योति सिंह सहायक प्रोफेसर, हिन्दी एवं धन्यवाद ज्ञापन श्री प्रमोद सिंह, सहायक कुलसचिव ने किया। उक्त अवसर पर श्री राजेश कुमार मिश्र ने अध्यक्षीय संबोधन में कहा कि राजभाषा सप्ताह समारोह के अंतर्गत आयोजित यह प्रतियोगिताऐं प्रतिभागियों को प्रोत्साहन प्रदान करने वाली तथा सभी उपस्थित कर्मचारियों के लिए प्रेरणाप्रद है। प्रेरणा और प्रोत्साहन ही राजभाषा के विकास का मूल सूत्र है। डॉ. राम सुधार सिंह, डॉ. रामजी सिंह आदि ने आशीर्वचन के रूप में अपने विचार व्यक्त किया।

दिनांक:18.09.2021

दिनांक 18 सितम्बर, 2021 को राजभाषा सप्ताह समारोह के समापन सत्र में सर्वप्रथम अध्यक्ष, मुख्य अतिथि एवं अधिकारियों द्वारा सरस्वती प्रतिमा पर पुष्पांजलि अर्पित कर दीप प्रज्ज्वलन किया गया। तदुपरान्त अध्यक्ष, मुख्य अतिथि तथा गणमान्य व्यक्तियों का खतक देकर स्वागत किया गया तथा अध्यक्ष महोदय ने मुख्य अतिथि को स्मृति चिह्न प्रदान किया। **राष्ट्रीय शिक्षा नीति-2020 की भाषा नीति** विषय पर मुख्य अतिथि के रूप में हिंदी साहित्य के मूर्धन्य कवि और ओ. एन. जी. सी., देहरादून के पूर्व राजभाषा अधिकारी डॉ. बुद्धिनाथ मिश्र ने अपने विचार व्यक्त करते हुए कहा कि राजभाषा की सबसे बड़ी विशेषता होती है, अर्थ की स्पष्टता। इसीलिए कार्यालय की भाषा और साहित्य कि भाषा में अंतर होता है। उन्होंने कहा कि कार्यालय की भाषा सरल, स्पष्ट और वैज्ञानिक होनी चाहिए। एक राजभाषा अधिकारी के रूप में राजभाषा को लेकर जो-जो समस्याएं आती हैं उस पर उन्होंने अपने अनुभव साझा किए। डॉ. मिश्र ने कहा कि हर देश की पहचान अपनी भाषा की विशिष्टता के कारण ही होती है। इसलिए हर जिम्मेदार

व्यक्ति और कर्मचारी को भाषा के प्रति समर्पित होने की जरुरत है। प्रस्तुत कार्यक्रम में उन्होंने अपनी प्रसिद्ध कविता- **एक बार और जाल फेंक रे मछेरे, जाने किस मछली में बंधन की चाह हो** का वाचन किया। समापन समारोह की अध्यक्षता करते हुए संस्थान के कुलसचिव डॉ. आर. के. उपाध्याय ने गाँधी के उदाहरण से राजभाषा के महत्त्व को बताया। गाँधी जी कहा करते थे कि **'अंग्रेजों से कह दो कि गाँधी अंग्रेजी नहीं जानता है'**। प्रस्तुत उदाहरण को स्पष्ट करते हुए उन्होंने कहा कि जिस दिन हर नागरिक में भाषा के प्रति इस प्रकार का आदर भाव आ जायेगा, फिर हिंदी स्वतः राष्ट्रभाषा बन जाएगी। उन्होंने कार्यालय के कर्मचारियों तथा अधिकारियों को अधिक से अधिक कार्य हिंदी में करने के लिए प्रोत्साहित किया। कार्यक्रम की अंतिम कड़ी में विभिन्न प्रतियोगिताओं के विजेताओं को पुरस्कार प्रदान किया गया। कार्यक्रम का संचालन डॉ. अनुराग त्रिपाठी, सदस्य सचिव रा.का.स., स्वागत संबोधन डॉ. सुशील कुमार सिंह, सदस्य, रा.का.स. तथा डॉ. ज्योति सिंह, सहायक प्रोफेसर, हिन्दी ने धन्यवाद ज्ञापित किया।

राजभाषा नियम, 1976

राजभाषा (संघ के शासकीय प्रयोजनों के लिए प्रयोग) नियम, 1976

(यथा संशोधित, 1987, 2007 तथा 2011)

सा.का.नि. 1052 - *राजभाषा अधिनियम, 1963 (1963 का 19)* की धारा 3 की उपधारा (4) के साथ पठित धारा 8 द्वारा प्रदत्त शक्तियों का प्रयोग करते हुए, केन्द्रीय सरकार निम्नलिखित नियम बनाती है, अर्थातः-

1. संक्षिप्त नाम, विस्तार और प्रारम्भ-

a. इन नियमों का संक्षिप्त नाम राजभाषा (संघ के शासकीय प्रयोजनों के लिए प्रयोग) नियम, 1976 है।

b. इनका विस्तार, तमिलनाडु राज्य के सिवाय सम्पूर्ण भारत पर है।

c. ये राजपत्र में प्रकाशन की तारीख को प्रवृत्त होंगे।

2. परिभाषाएं - इन नियमों में, जब तक कि संदर्भ से अन्यथा अपेक्षित न होः-

a. 'अधिनियम' से *राजभाषा अधिनियम, 1963 (1963 का 19)* अभिप्रेत है;

b. 'केन्द्रीय सरकार के कार्यालय' के अन्तर्गत निम्नलिखित भी है, अर्थातः-

c. केन्द्रीय सरकार का कोई मंत्रालय, विभाग या कार्यालय;

d. केन्द्रीय सरकार द्वारा नियुक्त किसी आयोग, समिति या अधिकरण का कोई कार्यालय; और

e. केन्द्रीय सरकार के स्वामित्व में या नियंत्रण के अधीन किसी निगम या कम्पनी का कोई कार्यालय;

f. 'कर्मचारी' से केन्द्रीय सरकार के कार्यालय में नियोजित कोई व्यक्ति अभिप्रेत है;

g. 'अधिसूचित कार्यालय' से नियम 10 के उपनियम (4) के अधीन अधिसूचित कार्यालय, अभिप्रेत है;

h. 'हिन्दी में प्रवीणता' से नियम 9 में वर्णित प्रवीणता अभिप्रेत है;

i. 'क्षेत्र क' से बिहार, हरियाणा, हिमाचल प्रदेश, मध्य प्रदेश, छत्तीसगढ़, झारखंड़, उत्तराखंड राजस्थान और उत्तर प्रदेश राज्य तथा अंडमान और निकोबार द्वीप समूह, दिल्ली संघ राज्य क्षेत्र अभिप्रेत है;

j. 'क्षेत्र ख' से गुजरात, महाराष्ट्र और पंजाब राज्य तथा चंडीगढ़, दमण और दीव तथा दादरा और नगर हवेली संघ राज्य क्षेत्र अभिप्रेत हैं;

k. 'क्षेत्र ग' से खंड (च) और (छ) में निर्दिष्ट राज्यों और संघ राज्य क्षेत्रों से भिन्न राज्य तथा संघ राज्य क्षेत्र अभिप्रेत है;

l. हिन्दी का कार्यसाधक ज्ञान' से नियम 10 में वर्णित कार्यसाधक ज्ञान अभिप्रेत है।

3. राज्यों आदि और केन्द्रीय सरकार के कार्यालयों से भिन्न कार्यालयों के साथ पत्रादि-

1. केन्द्रीय सरकार के कार्यालय से क्षेत्र 'क' में किसी राज्य या संघ राज्य क्षेत्र को या ऐसे राज्य या संघ राज्य क्षेत्र में किसी कार्यालय (जो केन्द्रीय सरकार का कार्यालय न हो) या व्यक्ति को पत्रादि असाधारण दशाओं को छोड़कर हिन्दी में होंगे और यदि उनमें से किसी को कोई पत्रादि अंग्रेजी में भेजे जाते हैं तो उनके साथ उनका हिन्दी अनुवाद भी भेजा जाएगा।

2. केन्द्रीय सरकार के कार्यालय से--

   a. क्षेत्र 'ख' में किसी राज्य या संघ राज्यक्षेत्र को या ऐसे राज्य या संघ राज्य क्षेत्र में किसी कार्यालय (जो केन्द्रीय सरकार का कार्यालय न हो) को पत्रादि सामान्यतया हिन्दी में होंगे और यदि इनमें से किसी को कोई पत्रादि अंग्रेजी में भेजे जाते हैं तो उनके साथ उनका हिन्दी अनुवाद भी भेजा जाएगाः परन्तु यदि कोई ऐसा राज्य या संघ राज्य क्षेत्र यह चाहता है कि किसी विशिष्ट वर्ग या प्रवर्ग के पत्रादि या उसके किसी कार्यालय के लिए आशयित पत्रादि संबद्ध राज्य या संघ राज्यक्षेत्र की सरकार द्वारा विनिर्दिष्ट अवधि तक अंग्रेजी या हिन्दी में भेजे जाएं और उसके साथ दूसरी भाषा में उसका अनुवाद भी भेजा जाए तो ऐसे पत्रादि उसी रीति से भेजे जाएंगे ;

   b. क्षेत्र 'ख' के किसी राज्य या संघ राज्य क्षेत्र में किसी व्यक्ति को पत्रादि हिन्दी या अंग्रेजी में भेजे जा सकते हैं।

3. केन्द्रीय सरकार के कार्यालय से क्षेत्र 'ग' में किसी राज्य या संघ राज्यक्षेत्र को या ऐसे राज्य में किसी कार्यालय (जो केन्द्रीय सरकार का कार्यालय न हो)या व्यक्ति को पत्रादि अंग्रेजी में होंगे।

4. उप नियम (1) और (2) में किसी बात के होते हुए भी, क्षेत्र 'ग' में केन्द्रीय सरकार के कार्यालय से क्षेत्र 'क'या'ख'में किसी राज्य या संघ राज्यक्षेत्र को या ऐसे राज्य में किसी कार्यालय (जो केन्द्रीय सरकार का कार्यालय न हो) या व्यक्ति को पत्रादि हिन्दी या अंग्रेजी

में हो सकते हैं । परन्तु हिन्दी में पत्रादि ऐसे अनुपात में होंगे जो केन्द्रीय सरकार ऐसे कार्यालयों में हिन्दी का कार्यसाधक ज्ञान रखने वाले व्यक्तियों की संख्या,हिन्दी में पत्रादि भेजने की सुविधाओं और उससे आनुषंगिक बातों को ध्यान में रखते हुए समय-समय पर अवधारित करे।

4. केन्द्रीय सरकार के कार्यालयों के बीच पत्रादि-

a. केन्द्रीय सरकार के किसी एक मंत्रालय या विभाग और किसी दूसरे मंत्रालय या विभाग के बीच पत्रादि हिन्दी या अंग्रेजी में हो सकते हैं;

b. केन्द्रीय सरकार के एक मंत्रालय या विभाग और क्षेत्र 'क' में स्थित संलग्न या अधीनस्थ कार्यालयों के बीच पत्रादि हिन्दी में होंगे और ऐसे अनुपात में होंगे जो केन्द्रीय सरकार, ऐसे कार्यालयों में हिन्दी का कार्यसाधक ज्ञान रखने वाले व्यक्तियों की संख्या, हिन्दी में पत्रादि भेजने की सुविधाओं और उससे संबंधित आनुषंगिक बातों को ध्यान में रखते हुए, समय-समय पर अवधारित करे;

c. क्षेत्र 'क' में स्थित केन्द्रीय सरकार के ऐसे कार्यालयों के बीच, जो खण्ड (क) या खण्ड (ख) में विनिर्दिष्ट कार्यालयों से भिन्न हैं, पत्रादि हिन्दी में होंगे;

d. क्षेत्र 'क' में स्थित केन्द्रीय सरकार के कार्यालयों और क्षेत्र 'ख' या 'ग'में स्थित केन्द्रीय सरकार के कार्यालयों के बीच पत्रादि हिन्दी या अंग्रेजी में हो सकते हैं;

   परन्तु ये पत्रादि हिन्दी में ऐसे अनुपात में होंगे जो केन्द्रीय सरकार ऐसे कार्यालयों में हिन्दी का कार्यसाधक ज्ञान रखने वाले व्यक्तियों की संख्या,हिन्दी में पत्रादि भेजने की सुविधाओं और उससे आनुषंगिक बातों को ध्यान में रखते हुए समय-समय पर अवधारित करे ;

e. क्षेत्र 'ख' या 'ग' में स्थित केन्द्रीय सरकार के कार्यालयों के बीच पत्रादि हिन्दी या अंग्रेजी में हो सकते हैं;

   परन्तु ये पत्रादि हिन्दी में ऐसे अनुपात में होंगे जो केन्द्रीय सरकार ऐसे कार्यालयों में हिन्दी का कार्यसाधक ज्ञान रखने वाले व्यक्तियों की संख्या,हिन्दी में पत्रादि भेजने की सुविधाओं और उससे आनुषंगिक बातों को ध्यान में रखते हुए समय-समय पर अवधारित करे;

   परन्तु जहां ऐसे पत्रादि-

   i. क्षेत्र 'क' या क्षेत्र 'ख' किसी कार्यालय को संबोधित हैं वहां यदि आवश्यक हो तो, उनका दूसरी भाषा में अनुवाद, पत्रादि प्राप्त करने के स्थान पर किया जाएगा;

   ii. क्षेत्र 'ग' में किसी कार्यालय को संबोधित है वहां, उनका दूसरी भाषा में अनुवाद, उनके साथ भेजा जाएगा;

परन्तु यह और कि यदि कोई पत्रादि किसी अधिसूचित कार्यालय को संबोधित है तो दूसरी भाषा में ऐसा अनुवाद उपलब्ध कराने की अपेक्षा नहीं की जाएगी।

5. हिन्दी में प्राप्त पत्रादि के उत्तर-

नियम 3 और नियम 4 में किसी बात के होते हुए भी, हिन्दी में पत्रादि के उत्तर केन्द्रीय सरकार के कार्यालय से हिन्दी में दिए जाएंगे।

6. हिन्दी और अंग्रेजी दोनों का प्रयोग-

अधिनियम की धारा 3 की उपधारा (3) में निर्दिष्ट सभी दस्तावेजों के लिए हिन्दी और अंग्रेजी दोनों का प्रयोग किया जाएगा और ऐसे दस्तावेजों पर हस्ताक्षर करने वाले व्यक्तियों का यह उत्तरदायित्व होगा कि वे यह सुनिश्चित कर लें कि ऐसी दस्तावेजें हिन्दी और अंग्रेजी दोनों ही में तैयार की जाती हैं, निष्पादित की जाती हैं और जारी की जाती हैं।

7. आवेदन, अभ्यावेदन आदि-

1. कोई कर्मचारी आवेदन, अपील या अभ्यावेदन हिन्दी या अंग्रेजी में कर सकता है।
2. जब उपनियम (1) में विनिर्दिष्ट कोई आवेदन, अपील या अभ्यावेदन हिन्दी में किया गया हो या उस पर हिन्दी में हस्ताक्षर किए गए हों, तब उसका उत्तर हिन्दी में दिया जाएगा।
3. यदि कोई कर्मचारी यह चाहता है कि सेवा संबंधी विषयों (जिनके अन्तर्गत अनुशासनिक कार्यवाहियां भी हैं) से संबंधित कोई आदेश या सूचना, जिसका कर्मचारी पर तामील किया जाना अपेक्षित है, यथास्थिति, हिन्दी या अंग्रेजी में होनी चाहिए तो वह उसे असम्यक विलम्ब के बिना उसी भाषा में दी जाएगी।

8. केन्द्रीय सरकार के कार्यालयों में टिप्पणों का लिखा जाना -

1. कोई कर्मचारी किसी फाइल पर टिप्पण या कार्यवृत्त हिंदी या अंग्रेजी में लिख सकता है और उससे यह अपेक्षा नहीं की जाएगी कि वह उसका अनुवाद दूसरी भाषा में प्रस्तुत करे।
2. केन्द्रीय सरकार का कोई भी कर्मचारी, जो हिन्दी का कार्यसाधक ज्ञान रखता है, हिन्दी में किसी दस्तावेज के अंग्रेजी अनुवाद की मांग तभी कर सकता है, जब वह दस्तावेज विधिक या तकनीकी प्रकृति का है, अन्यथा नहीं।
3. यदि यह प्रश्न उठता है कि कोई विशिष्ट दस्तावेज विधिक या तकनीकी प्रकृति का है या नहीं तो विभाग या कार्यालय का प्रधान उसका विनिश्चय करेगा।

4. उपनियम (1) में किसी बात के होते हुए भी, केन्द्रीय सरकार, आदेश द्वारा ऐसे अधिसूचित कार्यालयों को विनिर्दिष्ट कर सकती है जहां ऐसे कर्मचारियों द्वारा,जिन्हें हिन्दी में प्रवीणता प्राप्त है, टिप्पण, प्रारूपण और ऐसे अन्य शासकीय प्रयोजनों के लिए, जो आदेश में विनिर्दिष्ट किए जाएं, केवल हिन्दी का प्रयोग किया जाएगा।

9. हिन्दी में प्रवीणता-

यदि किसी कर्मचारी ने-

a. मैट्रिक परीक्षा या उसकी समतुल्य या उससे उच्चतर कोई परीक्षा हिन्दी के माध्यम से उत्तीर्ण कर ली है;या

b. स्नातक परीक्षा में अथवा स्नातक परीक्षा की समतुल्य या उससे उच्चतर किसी अन्य परीक्षा में हिन्दी को एक वैकल्पिक विषय के रूप में लिया हो; या

c. यदि वह इन नियमों से उपाबद्ध प्ररूप में यह घोषणा करता है कि उसे हिन्दी में प्रवीणता प्राप्त है;

तो उसके बारे में यह समझा जाएगा कि उसने हिन्दी में प्रवीणता प्राप्त कर ली है।

10. हिन्दी का कार्यसाधक ज्ञान-

1. a. यदि किसी कर्मचारी ने-

i. मैट्रिक परीक्षा या उसकी समतुल्य या उससे उच्चतर परीक्षा हिन्दी विषय के साथ उत्तीर्ण कर ली है; या

ii. केन्द्रीय सरकार की हिन्दी परीक्षा योजना के अन्तर्गत आयोजित प्राज्ञ परीक्षा या यदि उस सरकार द्वारा किसी विशिष्ट प्रवर्ग के पदों के सम्बन्ध में उस योजना के अन्तर्गत कोई निम्नतर परीक्षा विनिर्दिष्ट है, वह परीक्षा उत्तीर्ण कर ली है; या

iii. केन्द्रीय सरकार द्वारा उस निमित्त विनिर्दिष्ट कोई अन्य परीक्षा उत्तीर्ण कर ली है; या

b. यदि वह इन नियमों से उपाबद्ध प्ररूप में यह घोषणा करता है कि उसने ऐसा ज्ञान प्राप्त कर लिया है;

तो उसके बारे में यह समझा जाएगा कि उसने हिन्दी का कार्यसाधक ज्ञान प्राप्त कर लिया है।

2. यदि केन्द्रीय सरकार के किसी कार्यालय में कार्य करने वाले कर्मचारियों में से अस्सी प्रतिशत ने हिन्दी का ऐसा ज्ञान प्राप्त कर लिया है तो उस कार्यालय के कर्मचारियों के बारे

में सामान्यतया यह समझा जाएगा कि उन्होंने हिन्दी का कार्यसाधक ज्ञान प्राप्त कर लिया है।

3. केन्द्रीय सरकार या केन्द्रीय सरकार द्वारा इस निमित्त विनिर्दिष्ट कोई अधिकारी यह अवधारित कर सकता है कि केन्द्रीय सरकार के किसी कार्यालय के कर्मचारियों ने हिन्दी का कार्यसाधक ज्ञान प्राप्त कर लिया है या नहीं।
4. केन्द्रीय सरकार के जिन कार्यालयों में कर्मचारियों ने हिन्दी का कार्यसाधक ज्ञान प्राप्त कर लिया है उन कार्यालयों के नाम राजपत्र में अधिसूचित किए जाएंगे;

परन्तु यदि केन्द्रीय सरकार की राय है कि किसी अधिसूचित कार्यालय में काम करने वाले और हिन्दी का कार्यसाधक ज्ञान रखने वाले कर्मचारियों का प्रतिशत किसी तारीख में से उपनियम (2) में विनिर्दिष्ट प्रतिशत से कम हो गया है, तो वह राजपत्र में अधिसूचना द्वारा घोषित कर सकती है कि उक्त कार्यालय उस तारीख से अधिसूचित कार्यालय नहीं रह जाएगा।

11. मैनुअल, संहिताएं, प्रक्रिया संबंधी अन्य साहित्य, लेखन सामग्री आदि-

1. केन्द्रीय सरकार के कार्यालयों से संबंधित सभी मैनुअल, संहिताएं और प्रक्रिया संबंधी अन्य साहित्य, हिन्दी और अंग्रेजी में द्विभाषिक रूप में यथास्थिति, मुद्रित या साइक्लोस्टाइल किया जाएगा और प्रकाशित किया जाएगा।
2. केन्द्रीय सरकार के किसी कार्यालय में प्रयोग किए जाने वाले रजिस्टरों के प्ररूप और शीर्षक हिन्दी और अंग्रेजी में होंगे।
3. केन्द्रीय सरकार के किसी कार्यालय में प्रयोग के लिए सभी नामपट्ट, सूचना पट्ट, पत्रशीर्ष और लिफाफों पर उत्कीर्ण लेख तथा लेखन सामग्री की अन्य मदें हिन्दी और अंग्रेजी में लिखी जाएंगी, मुद्रित या उत्कीर्ण होंगी;

परन्तु यदि केन्द्रीय सरकार ऐसा करना आवश्यक समझती है तो वह, साधारण या विशेष आदेश द्वारा, केन्द्रीय सरकार के किसी कार्यालय को इस नियम के सभी या किन्हीं उपबन्धों से छूट दे सकती है।

12. अनुपालन का उत्तरदायित्व-

1. केन्द्रीय सरकार के प्रत्येक कार्यालय के प्रशासनिक प्रधान का यह उत्तरदायित्व होगा कि वह-
    i. यह सुनिश्चित करे कि अधिनियम और इन नियमों के उपबंधों और उपनियम (2) के अधीन जारी किए गए निदेशों का समुचित रूप से अनुपालन हो रहा है; और

ii. इस प्रयोजन के लिए उपयुक्त और प्रभावकारी जांच के लिए उपाय करे।

2. केन्द्रीय सरकार अधिनियम और इन नियमों के उपबन्धों के सम्यक अनुपालन के लिए अपने कर्मचारियों और कार्यालयों को समय-समय पर आवश्यक निदेश जारी कर सकती है।

[भारत का राजपत्र, भाग-2, खंड 3, उपखंड (i) में प्रकाशनार्थ]

भारत सरकार
गृह मंत्रालय
राजभाषा विभाग
नई दिल्ली, दिनांक: अगस्त, 2007
अधिसूचना

का.आ. (अ). - केन्द्रीय सरकार, राजभाषा अधिनियम, 1963 (1963 का 19) की धारा 3 की उपधारा (4) के साथ पठित धारा 8 द्वारा प्रदत्त शक्तियों का प्रयोग करते हुए, राजभाषा (संघ के शासकीय प्रयोजनों के लिए प्रयोग) नियम, 1976 का और संशोधन करने के लिए निम्नलिखित नियम बनाती है, अर्थात:-

1. i. इन नियमों का संक्षिप्त नाम राजभाषा (संघ के शासकीय प्रयोजनों के लिए प्रयोग) संशोधन नियम, 2007 है।

ii. ये राजपत्र में प्रकाशन की तारीख को प्रवृत्त होंगे।

2. राजभाषा (संघ के शासकीय प्रयोजनों के लिए प्रयोग) नियम, 1976 में -

नियम 2 के खंड (च) के स्थान पर निम्नलिखित खंड रखा जाएगा, अर्थात्:-

"क्षेत्र क" से बिहार, छत्तीसगढ, हरियाणा, हिमाचल प्रदेश, झारखंड, मध्यप्रदेश, राजस्थान, उत्तर प्रदेश, उत्तराखंड और राष्ट्रीय राजधानी क्षेत्र दिल्ली तथा अंडमान और निकोबार द्वीप समूह संघ राज्य क्षेत्र' अभिप्रेत हैं;'

[(फा.सं. I/14034/02/2007-रा.भा.(नीति-1)]

(पी.वी.वल्सला जी.कुट्टी)
संयुक्त सचिव, भारत सरकार

भारत के राजपत्र, भाग-II, खंड 3, उपखंड (i) में प्रकाशित]
पृष्ठ संख्या 576-577

दिनांक 14-5-2011

भारत सरकार
गृह मंत्रालय
राजभाषा विभाग
***

नई दिल्ली, 4 मई, 2011
अधिसूचना

सा.का.नि. 145 केन्द्रीय सरकार, राजभाषा अधिनियम, 1963 (1963 का 19) की धारा 3 की उपधारा (4) के साथ पठित धारा 8 द्वारा प्रदत्त शक्तियों का प्रयोग करते हुए, राजभाषा (संघ के शासकीय प्रयोजनों के लिए प्रयोग) नियम, 1976 का और संशोधन करने के लिए निम्नलिखित नियम बनाती है, अर्थात्:-

1. i. इन नियमों का संक्षिप्त नाम राजभाषा (संघ के शासकीय प्रयोजनों के लिए प्रयोग) संशोधन नियम, 2011 है।

   ii. ये राजपत्र में प्रकाशन की तारीख को प्रवृत्त होंगे।

2. राजभाषा (संघ के शासकीय प्रयोजनों के लिए प्रयोग) नियम, 1976 के – नियम 2 के खण्ड (छ) के स्थान पर निम्नलिखित खंड रखा जाएगा, अर्थात्:-

"क्षेत्र ख" से गुजरात, महाराष्ट्र और पंजाब राज्य तथा चंडीगढ़, दमण और दीव तथा दादरा और नगर हवेली संघ राज्य क्षेत्र अभिप्रेत हैं;'

[(फा.सं.I/14034/02/2010-रा.भा. (नीति-1)]

डी.के. पाण्डेय, संयुक्त सचिव

टिप्पण:- मूल नियम भारत के राजपत्र में सा.का.नि.संख्यांक 1052 तारीख 17 जुलाई, 1976 द्वारा प्रकाशित किए गए थे और सा.का.नि.संख्यांक 790, तारीख 24 अक्तूबर, 1987 तथा सा.का.नि.संख्यांक 162 तारीख 03 अगस्त, 2007 द्वारा उनमें पश्चातवर्ती संशोधन किए गए।

राजभाषा अधिनियम, 1963

(यथासंशोधित, 1967)

(1963 का अधिनियम संख्यांक 19)

उन भाषाओं का, जो संघ के राजकीय प्रयोजनों, संसद में कार्य के संव्यवहार, केन्द्रीय और राज्य अधिनियमों और उच्च न्यायालयों में कतिपय प्रयोजनों के लिए प्रयोग में लाई जा सकेंगी,उपबन्ध करने के लिए अधिनियम। भारत गणराज्य के चौदहवें वर्ष में संसद द्वारा निम्नलिखित रूप में यह अधिनियमित होः-

1. **संक्षिप्त नाम और प्रारम्भ-**
    1. यह अधिनियम राजभाषा अधिनियम, 1963 कहा जा सकेगा।
    2. धारा 3, जनवरी, 1965 के 26 वें दिन को प्रवृत्त होगी और इस अधिनियम के शेष उपबन्ध उस तारीख को प्रवृत्त होंगे जिसे केन्द्रीय सरकार,शासकीय राजपत्र में अधिसूचना द्वारा नियत करे और इस अधिनियम के विभिन्न उपबन्धों के लिए विभिन्न तारीखें नियत की जा सकेंगी।
2. **परिभाषाएं - इस अधिनियम में जब तक कि संदर्भ से अन्यथा अपेक्षित न हो,**
    a. 'नियत दिन' से, धारा 3 के सम्बन्ध में, जनवरी, 1965 का 26वां दिन अभिप्रेत है और इस अधिनियम के किसी अन्य उपबन्ध के सम्बन्ध में वह दिन अभिप्रेत है जिस दिन को वह उपबन्ध प्रवृत्त होता है;
    b. 'हिन्दी' से वह हिन्दी अभिप्रेत है जिसकी लिपि देवनागरी है।
3. **संघ के राजकीय प्रयोजनों के लिए और संसद में प्रयोग के लिए अंग्रेजी भाषा का रहना-**
    1. संविधान के प्रारम्भ से पन्द्रह वर्ष की कालावधि की समाप्ति हो जाने पर भी, हिन्दी के अतिरिक्त अंग्रेजी भाषा, नियत दिन से ही,
        a. संघ के उन सब राजकीय प्रयोजनों के लिए जिनके लिए वह उस दिन से ठीक पहले प्रयोग में लाई जाती थी ; तथा
        b. संसद में कार्य के संव्यवहार के लिए प्रयोग में लाई जाती रह सकेगी :

            परंतु संघ और किसी ऐसे राज्य के बीच, जिसने हिन्दी को अपनी राजभाषा के रूप में नहीं अपनाया है, पत्रादि के प्रयोजनों के लिए अंग्रेजी भाषा प्रयोग में लाई जाएगीः

परन्तु यह और कि जहां किसी ऐसे राज्य के, जिसने हिन्दी को अपनी राजभाषा के रूप में अपनाया है और किसी अन्य राज्य के, जिसने हिन्दी को अपनी राजभाषा के रूप में नहीं अपनाया है, बीच पत्रादि के प्रयोजनों के लिए हिन्दी को प्रयोग में लाया जाता है, वहां हिन्दी में ऐसे पत्रादि के साथ-साथ उसका अनुवाद अंग्रेजी भाषा में भेजा जाएगा :

परन्तु यह और भी कि इस उपधारा की किसी भी बात का यह अर्थ नहीं लगाया जाएगा कि वह किसी ऐसे राज्य को, जिसने हिन्दी को अपनी राजभाषा के रूप में नहीं अपनाया है, संघ के साथ या किसी ऐसे राज्य के साथ, जिसने हिन्दी को अपनी राजभाषा के रूप में अपनाया है, या किसी अन्य राज्य के साथ, उसकी सहमति से, पत्रादि के प्रयोजनों के लिए हिन्दी को प्रयोग में लाने से निवारित करती है, और ऐसे किसी मामले में उस राज्य के साथ पत्रादि के प्रयोजनों के लिए अंग्रेजी भाषा का प्रयोग बाध्यकर न होगा।

2. उपधारा (1) में अन्तर्विष्ट किसी बात के होते हुए भी, जहां पत्रादि के प्रयोजनों के लिए हिन्दी या अंग्रेजी भाषा-

iii. केन्द्रीय सरकार के एक मंत्रालय या विभाग या कार्यालय के और दूसरे मंत्रालय या विभाग या कार्यालय के बीच;

iv. केन्द्रीय सरकार के एक मंत्रालय या विभाग या कार्यालय के और केन्द्रीय सरकार के स्वामित्व में के या नियंत्रण में के किसी निगम या कम्पनी या उसके किसी कार्यालय के बीच;

v. केन्द्रीय सरकार के स्वामित्व में के या नियंत्रण में के किसी निगम या कम्पनी या उसके किसी कार्यालय के और किसी अन्य ऐसे निगम या कम्पनी या कार्यालय के बीच;

प्रयोग में लाई जाती है वहां उस तारीख तक, जब तक पूर्वोक्त संबंधित मंत्रालय, विभाग, कार्यालय या विभाग या कम्पनी का कर्मचारीवृद हिन्दी का कार्यसाधक ज्ञान प्राप्त नहीं कर लेता, ऐसे पत्रादि का अनुवाद, यथास्थिति, अंग्रेजी भाषा या हिन्दी में भी दिया जाएगा।

3. उपधारा (1) में अन्तर्विष्ट किसी बात के होते हुए भी हिन्दी और अंग्रेजी भाषा दोनों ही-

i. संकल्पों, साधारण आदेशों, नियमों, अधिसूचनाओं, प्रशासनिक या अन्य प्रतिवेदनों या प्रेस विज्ञप्तियों के लिए, जो केन्द्रीय सरकार द्वारा या उसके किसी मंत्रालय, विभाग

या कार्यालय द्वारा या केन्द्रीय सरकार के स्वामित्व में के या नियंत्रण में के किसी निगम या कम्पनी द्वारा या ऐसे निगम या कम्पनी के किसी कार्यालय द्वारा निकाले जाते हैं या किए जाते हैं;

ii. संसद के किसी सदन या सदनों के समक्ष रखे गए प्रशासनिक तथा अन्य प्रतिवेदनों और राजकीय कागज-पत्रों के लिए;

iii. केन्द्रीय सरकार या उसके किसी मंत्रालय, विभाग या कार्यालय द्वारा या उसकी ओर से या केन्द्रीय सरकार के स्वामित्व में के या नियंत्रण में के किसी निगम या कम्पनी द्वारा या ऐसे निगम या कम्पनी के किसी कार्यालय द्वारा निष्पादित संविदाओं और करारों के लिए तथा निकाली गई अनुज्ञप्तियों, अनुज्ञापत्रों, सूचनाओं और निविदा-प्ररूपों के लिए, प्रयोग में लाई जाएगी।

4. उपधारा (1) या उपधारा (2) या उपधारा (3) के उपबन्धों पर प्रतिकूल प्रभाव डाले बिना यह है कि केन्द्रीय सरकार धारा 8 के अधीन बनाए गए नियमों द्वारा उस भाषा या उन भाषाओं का उपबन्ध कर सकेगी जिसे या जिन्हें संघ के राजकीय प्रयोजन के लिए, जिसके अन्तर्गत किसी मंत्रालय,विभाग, अनुभाग या कार्यालय का कार्यकरण है, प्रयोग में लाया जाना है और ऐसे नियम बनाने में राजकीय कार्य के शीघ्रता और दक्षता के साथ निपटारे का तथा जन साधारण के हितों का सम्यक ध्यान रखा जाएगा और इस प्रकार बनाए गए नियम विशिष्टतया यह सुनिश्चित करेंगे कि जो व्यक्ति संघ के कार्यकलाप के सम्बन्ध में सेवा कर रहे हैं और जो या तो हिन्दी में या अंग्रेजी भाषा में प्रवीण हैं वे प्रभावी रूप से अपना काम कर सकें और यह भी कि केवल इस आधार पर कि वे दोनों ही भाषाओं में प्रवीण नहीं है उनका कोई अहित नहीं होता है।

5. उपधारा (1)के खंड (क) के उपबन्ध और उपधारा (2), उपधारा (3) और उपधारा (4), के उपबन्ध तब तक प्रवृत्त बने रहेंगे जब तक उनमें वर्णित प्रयोजनों के लिए अंग्रेजी भाषा का प्रयोग समाप्त कर देने के लिए ऐसे सभी राज्यों के विधान मण्डलों द्वारा, जिन्होंने हिन्दी को अपनी राजभाषा के रूप में नहीं अपनाया है, संकल्प पारित नहीं कर दिए जाते और जब तक पूर्वोक्त संकल्पों पर विचार कर लेने के पश्चात् ऐसी समाप्ति के लिए संसद के हर एक सदन द्वारा संकल्प पारित नहीं कर दिया जाता।

4. **राजभाषा के सम्बन्ध में समिति -**

1. जिस तारीख को धारा 3 प्रवृत्त होती है उससे दस वर्ष की समाप्ति के पश्चात, राजभाषा के सम्बन्ध में एक समिति, इस विषय का संकल्प संसद के किसी भी सदन में राष्ट्रपति की पूर्व मंजूरी से प्रस्तावित और दोनों सदनों द्वारा पारित किए जाने पर, गठित की जाएगी।

2. इस समिति में तीस सदस्य होंगे जिनमें से बीस लोक सभा के सदस्य होंगे तथा दस राज्य सभा के सदस्य होंगे, जो क्रमशः लोक सभा के सदस्यों तथा राज्य सभा के सदस्यों द्वारा आनुपातिक प्रतिनिधित्व पद्धति के अनुसार एकल संक्रमणीय मत द्वारा निर्वाचित होंगे।
3. इस समिति का कर्तव्य होगा कि वह संघ के राजकीय प्रयोजनों के लिए हिन्दी के प्रयोग में की गई प्रगति का पुनर्विलोकन करें और उस पर सिफारिशें करते हुए राष्ट्रपति को प्रतिवेदन करें और राष्ट्रपति उस प्रतिवेदन को संसद् के हर एक सदन के समक्ष रखवाएगा और सभी राज्य सरकारों को भिजवाएगा।
4. राष्ट्रपति उपधारा (3) में निर्दिष्ट प्रतिवेदन पर और उस पर राज्य सरकारों ने यदि कोई मत अभिव्यक्त किए हों तो उन पर विचार करने के पश्चात् उस समस्त प्रतिवेदन के या उसके किसी भाग के अनुसार निदेश निकाल सकेगा : परन्तु इस प्रकार निकाले गए निदेश धारा 3 के उपबन्धों से असंगत नहीं होंगे।

5. केन्द्रीय अधिनियमों आदि का प्राधिकृत हिन्दी अनुवाद-

1. नियत दिन को और उसके पश्चात् शासकीय राजपत्र में राष्ट्रपति के प्राधिकार से प्रकाशित--
   a. किसी केन्द्रीय अधिनियम का या राष्ट्रपति द्वारा प्रख्यापित किसी अध्यादेश का, अथवा
   b. संविधान के अधीन या किसी केन्द्रीय अधिनियम के अधीन निकाले गए किसी आदेश, नियम, विनियम या उपविधि का हिन्दी में अनुवाद उसका हिन्दी में प्राधिकृत पाठ समझा जाएगा।
2. नियत दिन से ही उन सब विधेयकों के, जो संसद के किसी भी सदन में पुरःस्थापित किए जाने हों और उन सब संशोधनों के, जो उनके समबन्ध में संसद के किसी भी सदन में प्रस्तावित किए जाने हों, अंग्रेजी भाषा के प्राधिकृत पाठ के साथ-साथ उनका हिन्दी में अनुवाद भी होगा जो ऐसी रीति से प्राधिकृत किया जाएगा, जो इस अधिनियम के अधीन बनाए गए नियमों द्वारा विहित की जाए।

6. कतिपय दशाओं में राज्य अधिनियमों का प्राधिकृत हिन्दी अनुवाद-

जहां किसी राज्य के विधानमण्डल ने उस राज्य के विधानमण्डल द्वारा पारित अधिनियमों में अथवा उस राज्य के राज्यपाल द्वारा प्रख्यापित अध्यादेशों में प्रयोग के लिए हिन्दी से भिन्न कोई भाषा विहित की है वहां, संविधान के अनुच्छेद 348 के खण्ड (3) द्वारा अपेक्षित अंग्रेजी भाषा में उसके अनुवाद के अतिरिक्त, उसका हिन्दी में अनुवाद उस राज्य के

शासकीय राजपत्र में, उस राज्य के राज्यपाल के प्राधिकार से, नियत दिन को या उसके पश्चात् प्रकाशित किया जा सकेगा और ऐसी दशा में ऐसे किसी अधिनियम या अध्यादेश का हिन्दी में अनुवाद हिन्दी भाषा में उसका प्राधिकृत पाठ समझा जाएगा।

7. **उच्च न्यायालयों के निर्णयों आदि में हिन्दी या अन्य राजभाषा का वैकल्पिक प्रयोग-**

नियत दिन से ही या तत्पश्चात् किसी भी दिन से किसी राज्य का राज्यपाल, राष्ट्रपति की पूर्व सम्मति से, अंग्रेजी भाषा के अतिरिक्त हिन्दी या उस राज्य की राजभाषा का प्रयोग, उस राज्य के उच्च न्यायालय द्वारा पारित या दिए गए किसी निर्णय, डिक्री या आदेश के प्रयोजनों के लिए प्राधिकृत कर सकेगा और जहां कोई निर्णय, डिक्री या आदेश (अंग्रेजी भाषा से भिन्न) ऐसी किसी भाषा में पारित किया या दिया जाता है वहां उसके साथ-साथ उच्च न्यायालय के प्राधिकार से निकाला गया अंग्रेजी भाषा में उसका अनुवाद भी होगा।

8. **नियम बनाने की शक्ति -**

1. केन्द्रीय सरकार इस अधिनियम के प्रयोजनों को कार्यान्वित करने के लिए नियम, शासकीय राजपत्र में अधिसूचना द्वारा, बना सकेगी।
2. इस धारा के अधीन बनाया गया हर नियम, बनाए जाने के पश्चात् यथाशीघ्र, संसद के हर एक सदन के समक्ष, जब वह सत्र में हो, कुल तीस दिन की अवधि के लिए रखा जाएगा। वह अवधि एक सत्र में, अथवा दो या अधिक आनुक्रमिक सत्रों में पूरी हो सकेगी। यदि उस सत्र के या पूर्वोक्त आनुक्रममिक सत्रों के ठीक बाद के सत्र के अवसान के पूर्व दोनों सदन उस नियम में कोई परिवर्तन करने के लिए सहमत हो जाएं तो तत्पश्चात वह ऐसे परिवर्तित रुप में ही प्रभावी होगा। यदि उक्त अवसान के पूर्व दोनों सदन सहमत हो जाएं कि वह नियम नहीं बनाया जाना चाहिए तो तत्पश्चात यह निस्प्रभाव हो जाएगा। किन्तु नियम के ऐसे परिवर्तित या निस्प्रभाव होने से उसके अधीन पहले की गई किसी बात की विधिमान्यता पर प्रतिकूल प्रभाव नहीं पड़ेगा।

9. **कतिपय उपबन्धों का जम्मू-कश्मीर को लागू न होना-**

धारा 6 और धारा 7 के उपबन्ध जम्मू-कश्मीर राज्य को लागू न होंगे।

संवैधानिक प्रावधान

भारत के संविधान में राजभाषा से संबंधित भाग-17

अध्याय 1- संघ की भाषा

अनुच्छेद 120. संसद में प्रयोग की जाने वाली भाषा -

1. भाग 17 में किसी बात के होते हुए भी, किंतु अनुच्छेद 348 के उपबंधों के अधीन रहते हुए, संसद में कार्य हिंदी में या अंग्रेजी में किया जाएगा।

   परंतु, यथास्थिति, राज्य सभा का सभापति या लोक सभा का अध्यक्ष अथवा उस रूप में कार्य करने वाला व्यक्ति किसी सदस्य को, जो हिंदी में या अंग्रेजी में अपनी पर्याप्त अभिव्यक्ति नहीं कर सकता है, अपनी मातृ-भाषा में सदन को संबोधित करने की अनुज्ञा दे सकेगा।

2. जब तक संसद विधि द्वारा अन्यथा उपबंध न करे तब तक इस संविधान के प्रारंभ से पंद्रह वर्ष की अवधि की समाप्ति के पश्चात यह अनुच्छेद ऐसे प्रभावी होगा मानो "या अंग्रेजी में" शब्दों का उसमें से लोप कर दिया गया हो।

अनुच्छेद 210. विधान-मंडल में प्रयोग की जाने वाली भाषा -

1. भाग 17 में किसी बात के होते हुए भी, किंतु अनुच्छेद 348 के उपबंधों के अधीन रहते हुए, राज्य के विधान-मंडल में कार्य राज्य की राजभाषा या राजभाषाओं में या हिंदी में या अंग्रेजी में किया जाएगा।

   परंतु, यथास्थिति, विधान सभा का अध्यक्ष या विधान परिषद का सभापति अथवा उस रूप में कार्य करने वाला व्यक्ति किसी सदस्य को, जो पूर्वोक्त भाषाओं में से किसी भाषा में अपनी पर्याप्त अभिव्यक्ति नहीं कर सकता है, अपनी मातृभाषा में सदन को संबोधित करने की अनुज्ञा दे सकेगा।

2. जब तक राज्य का विधान-मंडल विधि द्वारा अन्यथा उपबंध न करे तब तक इस संविधान के प्रारंभ से पंद्रह वर्ष की अवधि की समाप्ति के पश्चात यह अनुच्छेद ऐसे प्रभावी होगा मानो "या अंग्रेजी में" शब्दों का उसमें से लोप कर दिया गया हो :

   परंतु हिमाचल प्रदेश, मणिपुर, मेघालय और त्रिपुरा राज्यों के विधान-मंडलों के संबंध में, यह खंड इस प्रकार प्रभावी होगा मानो इसमें आने वाले"पंद्रह वर्ष" शब्दों के स्थान पर "पच्चीस वर्ष" शब्द रख दिए गए हों :

   परंतु यह और कि अरूणाचल प्रदेश, गोवा और मिजोरम राज्यों के विधान-मंडलों के संबंध में यह खंड इस प्रकार प्रभावी होगा मानो इसमें आने वाले "पंद्रह वर्ष" शब्दों के स्थान पर "चालीस वर्ष" शब्द रख दिए गए हों।

अनुच्छेद 343. संघ की राजभाषा-

1. संघ की राजभाषा हिंदी और लिपि देवनागरी होगी, संघ के शासकीय प्रयोजनों के लिए प्रयोग होने वाले अंकों का रूप भारतीय अंकों का अंतर्राष्ट्रीय रूप होगा।
2. खंड (1) में किसी बात के होते हुए भी, इस संविधान के प्रारंभ से पंद्रह वर्ष की अवधि तक संघ के उन सभी शासकीय प्रयोजनों के लिए अंग्रेजी भाषा का प्रयोग किया जाता रहेगा जिनके लिए उसका ऐसे प्रारंभ से ठीक पहले प्रयोग किया जा रहा था :

   परन्तु राष्ट्रपति उक्त अवधि के दौरान, आदेश द्वारा, संघ के शासकीय प्रयोजनों में से किसी के लिए अंग्रेजी भाषा के अतिरिक्त हिंदी भाषा का और भारतीय अंकों के अंतर्राष्ट्रीय रूप के अतिरिक्त देवनागरी रूप का प्रयोग प्राधिकृत कर सकेगा।
3. इस अनुच्छेद में किसी बात के होते हुए भी, संसद उक्त पन्द्रह वर्ष की अवधि के पश्चात, विधि द्वारा
   a. अंग्रेजी भाषा का, या
   b. अंकों के देवनागरी रूप का,

   ऐसे प्रयोजनों के लिए प्रयोग उपबंधित कर सकेगी जो ऐसी विधि में विनिर्दिष्ट किए जाएं।

अनुच्छेद 344. राजभाषा के संबंध में आयोग और संसद की समिति-

1. राष्ट्रपति, इस संविधान के प्रारंभ से पांच वर्ष की समाप्ति पर और तत्पश्चात ऐसे प्रारंभ से दस वर्ष की समाप्ति पर, आदेश द्वारा, एक आयोग गठित करेगा जो एक अध्यक्ष और आठवीं अनुसूची में विनिर्दिष्ट विभिन्न भाषाओं का प्रतिनिधित्व करने वाले ऐसे अन्य सदस्यों से मिलकर बनेगा जिनको राष्ट्रपति नियुक्त करे और आदेश में आयोग द्वारा अनुसरण की जाने वाली प्रक्रिया परिनिश्चित की जाएगी।
2. आयोग का यह कर्तव्य होगा कि वह राष्ट्रपति को--
   a. संघ के शासकीय प्रयोजनों के लिए हिंदी भाषा के अधिकाधिक प्रयोग,
   b. संघ के सभी या किन्हीं शासकीय प्रयोजनों के लिए अंग्रेजी भाषा के प्रयोग पर निर्बंधनों,
   c. अनुच्छेद 348 में उल्लिखित सभी या किन्हीं प्रयोजनों के लिए प्रयोग की जाने वाली भाषा,
   d. संघ के किसी एक या अधिक विनिर्दिष्ट प्रयोजनों के लिए प्रयोग किए जाने वाले अंकों के रूप,
   e. संघ की राजभाषा तथा संघ और किसी राज्य के बीच या एक राज्य और दूसरे राज्य के बीच पत्रादि की भाषा और उनके प्रयोग के संबंध में राष्ट्रपति द्वारा आयोग को निर्देशित किए गए किसी अन्य विषय, के बारे में सिफारिश करे।

3. खंड (2) के अधीन अपनी सिफारिशें करने में, आयोग भारत की औद्योगिक, सांस्कृतिक और वैज्ञानिक उन्नति का और लोक सेवाओं के संबंध में अहिंदी भाषी क्षेत्रों के व्यक्तियों के न्यायसंगत दावों और हितों का सम्यक ध्यान रखेगा।
4. एक समिति गठित की जाएगी जो तीस सदस्यों से मिलकर बनेगी जिनमें से बीस लोक सभा के सदस्य होंगे और दस राज्य सभा के सदस्य होंगे जो क्रमशः लोक सभा के सदस्यों और राज्य सभा के सदस्यों द्वारा आनुपातिक प्रतिनिधित्व पद्धति के अनुसार एकल संक्रमणीय मत द्वारा निर्वाचित होंगे।
5. समिति का यह कर्तव्य होगा कि वह खंड (1)के अधीन गठित आयोग की सिफारिशों की परीक्षा करे और राष्ट्रपति को उन पर अपनी राय के बारे में प्रतिवेदन दे।
6. अनुच्छेद 343 में किसी बात के होते हुए भी, राष्ट्रपति खंड (5) में निर्दिष्ट प्रतिवेदन पर विचार करने के पश्चात् उस संपूर्ण प्रतिवेदन के या उसके किसी भाग के अनुसार निदेश दे सकेगा।

अध्याय 2- प्रादेशिक भाषाएं

अनुच्छेद 345. राज्य की राजभाषा या राजभाषाएं-

अनुच्छेद 346 और अनुच्छेद 347 के उपबंधों के अधीन रहते हुए, किसी राज्य का विधान-मंडल, विधि द्वारा, उस राज्य में प्रयोग होने वाली भाषाओं में से किसी एक या अधिक भाषाओं को या हिंदी को उस राज्य के सभी या किन्हीं शासकीय प्रयोजनों के लिए प्रयोग की जाने वाली भाषा या भाषाओं के रूप में अंगीकार कर सकेगाः

परंतु जब तक राज्य का विधान-मंडल, विधि द्वारा, अन्यथा उपबंध न करे तब तक राज्य के भीतर उन शासकीय प्रयोजनों के लिए अंग्रेजी भाषा का प्रयोग किया जाता रहेगा जिनके लिए उसका इस संविधान के प्रारंभ से ठीक पहले प्रयोग किया जा रहा था।

अनुच्छेद 346. एक राज्य और दूसरे राज्य के बीच या किसी राज्य और संघ के बीच पत्रादि की राजभाषा-

संघ में शासकीय प्रयोजनों के लिए प्रयोग किए जाने के लिए तत्समय प्राधिकृत भाषा, एक राज्य और दूसरे राज्य के बीच तथा किसी राज्य और संघ के बीच पत्रादि की राजभाषा होगी:

परंतु यदि दो या अधिक राज्य यह करार करते हैं कि उन राज्यों के बीच पत्रादि की राजभाषा हिंदी भाषा होगी तो ऐसे पत्रादि के लिए उस भाषा का प्रयोग किया जा सकेगा।

अनुच्छेद 347. किसी राज्य की जनसंख्या के किसी भाग द्वारा बोली जाने वाली भाषा के संबंध में विशेष उपबंध-

यदि इस निमित्त मांग किए जाने पर राष्ट्रपति का यह समाधान हो जाता है कि किसी राज्य की जनसंख्या का पर्याप्त भाग यह चाहता है कि उसके द्वारा बोली जाने वाली भाषा को राज्य द्वारा मान्यता दी जाए तो वह निदेश दे सकेगा कि ऐसी भाषा को भी उस राज्य में सर्वत्र या उसके किसी भाग में ऐसे प्रयोजन के लिए, जो वह विनिर्दिष्ट करे, शासकीय मान्यता दी जाए।

अध्याय 3 - उच्चतम न्यायालय, उच्च न्यायालयों आदि की भाषा

अनुच्छेद 348. उच्चतम न्यायालय और उच्च न्यायालयों में और अधिनियमों, विधेयकों आदि के लिए प्रयोग की जाने वाली भाषा-

1. इस भाग के पूर्वगामी उपबंधों में किसी बात के होते हुए भी, जब तक संसद् विधि द्वारा अन्यथा

   उपबंध न करे तब तक--

   a. उच्चतम न्यायालय और प्रत्येक उच्च न्यायालय में सभी कार्यवाहियां अंग्रेजी भाषा में होंगी,

   b. i. संसद् के प्रत्येक सदन या किसी राज्य के विधान-मंडल के सदन या प्रत्येक सदन में पुरःस्थापित किए जाने वाले सभी विधेयकों या प्रस्तावित किए जाने वाले उनके संशोधनों के,

      ii. संसद या किसी राज्य के विधान-मंडल द्वारा पारित सभी अधिनियमों के और राष्ट्रपति या किसी राज्य के राज्यपाल द्वारा प्रख्यापित सभी अध्यादेशों के, और

      iii. इस संविधान के अधीन अथवा संसद या किसी राज्य के विधान-मंडल द्वारा बनाई गई किसी विधि के अधीन निकाले गए या बनाए गए सभी आदेशों, नियमों, विनियमों और उपविधियों के, प्राधिकृत पाठ अंग्रेजी भाषा में होंगे।

2. खंड (1) के उपखंड (क) में किसी बात के होते हुए भी, किसी राज्य का राज्यपाल राष्ट्रपति की पूर्व सहमति से उस उच्च न्यायालय की कार्यवाहियों में, जिसका मुख्य स्थान उस राज्य में है, हिन्दी भाषा का या उस राज्य के शासकीय प्रयोजनों के लिए प्रयोग होने वाली किसी अन्य भाषा का प्रयोग प्राधिकृत कर सकेगाः

   परंतु इस खंड की कोई बात ऐसे उच्च न्यायालय द्वारा दिए गए किसी निर्णय, डिक्री या आदेश को लागू नहीं होगी।

3. खंड (1) के उपखंड (ख) में किसी बात के होते हुए भी, जहां किसी राज्य के विधान-मंडल ने, उस विधान-मंडल में पुरःस्थापित विधेयकों या उसके द्वारा पारित अधिनियमों में अथवा

उस राज्य के राज्यपाल द्वारा प्रख्यापित अध्यादेशों में अथवा उस उपखंड के पैरा (iv) में निर्दिष्ट किसी आदेश, नियम, विनियम या उपविधि में प्रयोग के लिए अंग्रेजी भाषा से भिन्न कोई भाषा विहित की है वहां उस राज्य के राजपत्र में उस राज्य के राज्यपाल के प्राधिकार से प्रकाशित अंग्रेजी भाषा में उसका अनुवाद इस अनुच्छेद के अधीन उसका अंग्रेजी भाषा में प्राधिकृत पाठ समझा जाएगा।

अनुच्छेद 349. भाषा से संबंधित कुछ विधियां अधिनियमित करने के लिए विशेष प्रक्रिया-

इस संविधान के प्रारंभ से पंद्रह वर्ष की अवधि के दौरान, अनुच्छेद 348 के खंड (1) में उल्लिखित किसी प्रयोजन के लिए प्रयोग की जाने वाली भाषा के लिए उपबंध करने वाला कोई विधेयक या संशोधन संसद के किसी सदन में राष्ट्रपति की पूर्व मंजूरी के बिना पुरःस्थापित या प्रस्तावित नहीं किया जाएगा और राष्ट्रपति किसी ऐसे विधेयक को पुरःस्थापित या किसी ऐसे संशोधन को प्रस्तावित किए जाने की मंजूरी अनुच्छेद 344 के खंड (1) के अधीन गठित आयोग की सिफारिशों पर और उस अनुच्छेद के खंड (4) के अधीन गठित समिति के प्रतिवेदन पर विचार करने के पश्चात् ही देगा, अन्यथा नहीं।

अध्याय 4- विशेष निदेश

अनुच्छेद 350. व्यथा के निवारण के लिए अभ्यावेदन में प्रयोग की जाने वाली भाषा-

प्रत्येक व्यक्ति किसी व्यथा के निवारण के लिए संघ या राज्य के किसी अधिकारी या प्राधिकारी को, यथास्थिति, संघ में या राज्य में प्रयोग होने वाली किसी भाषा में अभ्यावेदन देने का हकदार होगा।

अनुच्छेद 350 क. प्राथमिक स्तर पर मातृभाषा में शिक्षा की सुविधाएं-

प्रत्येक राज्य और राज्य के भीतर प्रत्येक स्थानीय प्राधिकारी भाषाई अल्पसंख्यक-वर्गों के बालकों को शिक्षा के प्राथमिक स्तर पर मातृभाषा में शिक्षा की पर्याप्त सुविधाओं की व्यवस्था करने का प्रयास करेगा और राष्ट्रपति किसी राज्य को ऐसे निदेश दे सकेगा जो वह ऐसी सुविधाओं का उपबंध सुनिश्चित कराने के लिए आवश्यक या उचित समझता है।

अनुच्छेद 350 ख. भाषाई अल्पसंख्यक-वर्गों के लिए विशेष अधिकारी-

1. भाषाई अल्पसंख्यक-वर्गों के लिए एक विशेष अधिकारी होगा जिसे राष्ट्रपति नियुक्त करेगा।
2. विशेष अधिकारी का यह कर्तव्य होगा कि वह इस संविधान के अधीन भाषाई अल्पसंख्यक-वर्गों के लिए उपबंधित रक्षोपायों से संबंधित सभी विषयों का अन्वेषण करे और उन विषयों के संबंध में ऐसे अंतरालों पर जो राष्ट्रपति निर्दिष्ट करे, राष्ट्रपति को

प्रतिवेदन दे और राष्ट्रपति ऐसे सभी प्रतिवेदनों को संसद् के प्रत्येक सदन के समक्ष रखवाएगा और संबंधित राज्यों की सरकारों को भिजवाएगा।

अनुच्छेद 351. हिंदी भाषा के विकास के लिए निदेश-

संघ का यह कर्तव्य होगा कि वह हिंदी भाषा का प्रसार बढ़ाए, उसका विकास करे जिससे वह भारत की सामासिक संस्कृति के सभी तत्वों की अभिव्यक्ति का माध्यम बन सके और उसकी प्रकृति में हस्तक्षेप किए बिना हिंदुस्थानी में और आठवीं अनुसूची में विनिर्दिष्ट भारत की अन्य भाषाओं में प्रयुक्त रूप, शैली और पदों को आत्मसात करते हुए और जहां आवश्यक या वांछनीय हो वहां उसके शब्द-भंडार के लिए मुख्यतः संस्कृत से और गौणतः अन्य भाषाओं से शब्द ग्रहण करते हुए उसकी समृद्धि सुनिश्चित करे।

माननीय गृहमंत्री जी का हिंदी-दिवस सन्देश-2021

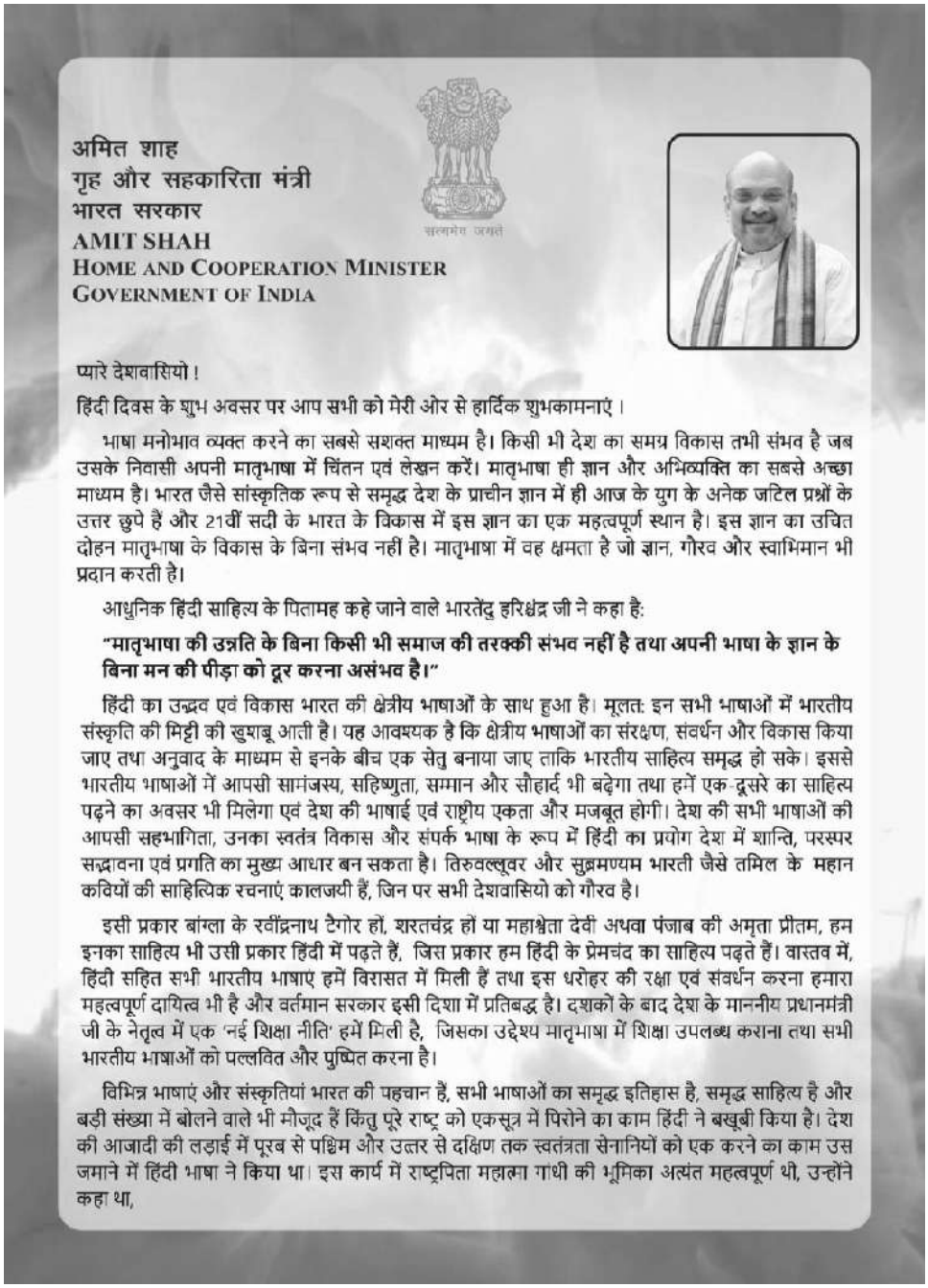

अमित शाह
गृह और सहकारिता मंत्री
भारत सरकार
AMIT SHAH
HOME AND COOPERATION MINISTER
GOVERNMENT OF INDIA

सत्यमेव जयते

प्यारे देशवासियो !

हिंदी दिवस के शुभ अवसर पर आप सभी को मेरी ओर से हार्दिक शुभकामनाएं ।

भाषा मनोभाव व्यक्त करने का सबसे सशक्त माध्यम है। किसी भी देश का समग्र विकास तभी संभव है जब उसके निवासी अपनी मातृभाषा में चिंतन एवं लेखन करें। मातृभाषा ही ज्ञान और अभिव्यक्ति का सबसे अच्छा माध्यम है। भारत जैसे सांस्कृतिक रूप से समृद्ध देश के प्राचीन ज्ञान में ही आज के युग के अनेक जटिल प्रश्नों के उत्तर छुपे हैं और 21वीं सदी के भारत के विकास में इस ज्ञान का एक महत्वपूर्ण स्थान है। इस ज्ञान का उचित दोहन मातृभाषा के विकास के बिना संभव नहीं है। मातृभाषा में वह क्षमता है जो ज्ञान, गौरव और स्वाभिमान भी प्रदान करती है।

आधुनिक हिंदी साहित्य के पितामह कहे जाने वाले भारतेंदु हरिश्चंद्र जी ने कहा है:

"मातृभाषा की उन्नति के बिना किसी भी समाज की तरक्की संभव नहीं है तथा अपनी भाषा के ज्ञान के बिना मन की पीड़ा को दूर करना असंभव है।"

हिंदी का उद्भव एवं विकास भारत की क्षेत्रीय भाषाओं के साथ हुआ है। मूलतः इन सभी भाषाओं में भारतीय संस्कृति की मिट्टी की खुशबू आती है। यह आवश्यक है कि क्षेत्रीय भाषाओं का संरक्षण, संवर्धन और विकास किया जाए तथा अनुवाद के माध्यम से इनके बीच एक सेतु बनाया जाए ताकि भारतीय साहित्य समृद्ध हो सके। इससे भारतीय भाषाओं में आपसी सामंजस्य, सहिष्णुता, सम्मान और सौहार्द भी बढ़ेगा तथा हमें एक-दूसरे का साहित्य पढ़ने का अवसर भी मिलेगा एवं देश की भाषाई एवं राष्ट्रीय एकता और मजबूत होगी। देश की सभी भाषाओं की आपसी सहभागिता, उनका स्वतंत्र विकास और संपर्क भाषा के रूप में हिंदी का प्रयोग देश में शान्ति, परस्पर सद्भावना एवं प्रगति का मुख्य आधार बन सकता है। तिरुवल्लूवर और सुब्रमण्यम भारती जैसे तमिल के महान कवियों की साहित्यिक रचनाएं कालजयी हैं, जिन पर सभी देशवासियो को गौरव है।

इसी प्रकार बांग्ला के रवींद्रनाथ टैगोर हों, शरतचंद्र हों या महाश्वेता देवी अथवा पंजाब की अमृता प्रीतम, हम इनका साहित्य भी उसी प्रकार हिंदी में पढ़ते हैं, जिस प्रकार हम हिंदी के प्रेमचंद का साहित्य पढ़ते हैं। वास्तव में, हिंदी सहित सभी भारतीय भाषाएं हमें विरासत में मिली हैं तथा इस धरोहर की रक्षा एवं संवर्धन करना हमारा महत्वपूर्ण दायित्व भी है और वर्तमान सरकार इसी दिशा में प्रतिबद्ध है। दशकों के बाद देश के माननीय प्रधानमंत्री जी के नेतृत्व में एक 'नई शिक्षा नीति' हमें मिली है, जिसका उद्देश्य मातृभाषा में शिक्षा उपलब्ध कराना तथा सभी भारतीय भाषाओं को पल्लवित और पुष्पित करना है।

विभिन्न भाषाएं और संस्कृतियां भारत की पहचान हैं, सभी भाषाओं का समृद्ध इतिहास है, समृद्ध साहित्य है और बड़ी संख्या में बोलने वाले भी मौजूद हैं किंतु पूरे राष्ट्र को एकसूत्र में पिरोने का काम हिंदी ने बखूबी किया है। देश की आजादी की लड़ाई में पूरब से पश्चिम और उत्तर से दक्षिण तक स्वतंत्रता सेनानियों को एक करने का काम उस जमाने में हिंदी भाषा ने किया था। इस कार्य में राष्ट्रपिता महात्मा गांधी की भूमिका अत्यंत महत्वपूर्ण थी, उन्होंने कहा था,

"जो भाषा भारत के दिलों पर राज करती है, वह भाषा हिंदी है।"

भाइयों, बहनों ! वैज्ञानिकों ने माना है कि हिंदी एक वैज्ञानिक भाषा है, हिंदी में उच्चारित होने वाली ध्वनियों को व्यक्त करना अत्यंत सरल है। हिंदी में जैसा बोला जाता है, वैसे ही लिखा जाता है और हिंदी की इन्हीं विशेषताओं और लोकप्रियता को ध्यान में रखते हुए भारतीय संविधान सभा ने गंभीर विचार-विमर्श के बाद आपसी सहमति से हिंदी को भारत संघ की राजभाषा का दर्जा दिया तथा हिंदी संबंधित संवैधानिक प्रावधानों को आज के ही दिन यानि 14 सितंबर 1949 को अंगीकार किया। इसी उपलक्ष में हम प्रत्येक वर्ष 14 सितंबर को हिंदी दिवस के रूप में मनाते हैं।

प्यारे देशवासियो! जैसा कि आप जानते हैं कोरोना के कारण भारत ही नहीं अपितु पूरी दुनिया में गंभीर संकट आ गया और सभी देशों ने इस समस्या से निदान पाने के लिए हर संभव प्रयास किए। माननीय प्रधानमंत्री श्री नरेंद्र मोदी जी के नेतृत्व में भारत में कोरोना की लड़ाई अत्यंत सफलतापूर्वक लड़ी गई। इस लड़ाई में सभी राज्य सरकारों और भारत की 130 करोड़ की जनता ने भी बढ़-चढ़कर हिस्सा लिया।

श्री नरेंद्र मोदी जी के नेतृत्व में इस लड़ाई से लड़ने में हमें अनेक विकसित देशों से बेहतर सफलता मिली और यदि जनसंख्या के अनुपात से देखें तो हम पूरी दुनिया में सबसे कम मृत्यु दर के साथ महामारी से हुई हानि को कम रखने में सफल हुए हैं। इस लड़ाई में माननीय प्रधानमंत्री जी ने देश की जनता के हौसले को बढ़ाने के लिए समय-समय पर जनता की भाषा में ही राष्ट्र को संबोधित किया ताकि देश के अधिक से अधिक लोगों तक प्रभावी ढंग से बात पहुंच सके।

कोरोना काल की विषम परिस्थितियों में राजभाषा संबंधी संवैधानिक दायित्वों के निर्वहन में राजभाषा विभाग ने केंद्र सरकार के कार्यालयों में हिंदी का प्रयोग सुनिश्चित किया। माननीय प्रधानमंत्री जी के आत्मनिर्भर भारत और स्वदेशी के आह्वान से प्रेरित होकर राजभाषा विभाग, गृह मंत्रालय ने स्मृति आधारित कंप्यूटर सॉफ्टवेयर स्वदेशी टूल 'कंठस्थ' को अधिक लोकप्रिय बनाया। विभिन्न सरकारी संगठनों के हिंदी अधिकारियों को ई-प्रशिक्षण देकर प्रोत्साहित भी किया है। इसी प्रकार स्वयं हिंदी भाषा सीखने के लिए बनाए गए 'लीला हिंदी ऐप',- *लर्निंग इंडियन लैंग्वेजेज थ्रू आर्टिफिशियल इंटेलिजेंस* का भी प्रचार किया जा रहा है। इस ऐप के माध्यम से अंग्रेजी के अलावा 14 अन्य भारतीय भाषाओं, तमिल, तेलुगू, कन्नड़, मलयालम, बांग्ला, असमिया, मणिपुरी, मराठी, उड़िया, पंजाबी, नेपाली, कश्मीरी, गुजराती एवं बोडो से स्वयं हिंदी सीखी जा सकती है।

कोरोना महामारी में भी राजभाषा संबंधी कर्तव्यों को ध्यान में रखते हुए राजभाषा विभाग ने केंद्र सरकार के विभिन्न कार्यालयों/ विभागों/ उपक्रमों आदि के द्वारा प्रकाशित की जाने वाली गृह पत्रिकाओं के लिए ई-पत्रिका पुस्तकालय प्लेटफार्म उपलब्ध कराया, जिसके माध्यम से देश-विदेश में कहीं भी बैठकर केंद्र सरकार के संस्थानों की गृह-पत्रिकाओं को पढ़कर उसका लाभ उठाया जा सकता है। वर्तमान में राजभाषा विभाग ने इलेक्ट्रॉनिक माध्यमों से बैठकें एवं निरीक्षण कर राजभाषा संवर्धन में एक नई पहल की है। ई-महाशब्दकोश मोबाइल ऐप' तथा 'ई-सरल हिंदी वाक्यकोश मोबाइल ऐप' भी उपलब्ध कराए हैं, इनके प्रयोग से अधिकारियों को हिंदी में टिप्पणी लिखने में बहुत सुविधा हो रही है।

राजभाषा विभाग, गृह मंत्रालय की सुविचारित नीति है कि केंद्र सरकार के कार्यालयों में हिंदी का प्रयोग प्रेरणा, प्रोत्साहन व सद्भावना से बढ़ाया जाए। माननीय प्रधानमंत्री जी के स्मृति विज्ञान संबंधी प्रेम और प्रयोग से प्रभावित होकर राजभाषा विभाग ने हिंदी के प्रभावी कार्यान्वयन के लिए बारह 'प्र' की रूपरेखा और रणनीति पर काम करना शुरू किया है, जिसमें महत्वपूर्ण स्तंभ हैं: प्रेरणा, प्रोत्साहन, प्रेम, पुरस्कार, प्रशिक्षण, प्रयोग, प्रचार, प्रसार, प्रबंधन, प्रोन्नति, प्रतिबद्धता और प्रयास। राजभाषा विभाग द्वारा विभिन्न बैठकों में संबंधित कार्यालय के शीर्ष नेतृत्व को इन्हीं बारह 'प्र' की रणनीति के अनुसार कार्यालय के अधिक से अधिक कार्य को मूल रूप से सरल एवं सहज हिंदी में करने के लिए प्रेरित किया जाता है।

हम सभी जानते हैं कि भारत के माननीय प्रधानमंत्री जी स्वयं हिंदी और भारतीय भाषाओं के प्रति अनुराग रखते हैं। माननीय प्रधानमंत्री जी द्वारा संयुक्त राष्ट्र महासभा में हिंदी में दिए गए ओजस्वी संबोधन तथा देश-विदेश में आयोजित विभिन्न कार्यक्रमों में प्रधानमंत्री जी द्वारा हिंदी में किए गए संबोधन से सिर्फ देश ही नहीं बल्कि विदेश में

रहने वाले भारतीयों को भी बहुत गर्व होता है। प्रधानमंत्री जी द्वारा भारत की विभिन्न क्षेत्रीय भाषाओं में स्थानीय लोगों को संबोधित करने का प्रयास भी क्षेत्रीय भाषाओं के प्रति सम्मान व्यक्त करने का एक सराहनीय और अनुकरणीय कदम है।

मुझे लगता है कि, जब हम आजादी के 75वें वर्ष में, अमृत पर्व में, प्रवेश कर रहे हैं, तो हमें इस वर्ष राष्ट्रकार्यों को हाथ में लेना चाहिए। महात्मा गांधी जी ने राजभाषा को राष्ट्रीयता के साथ जोड़ा था। हमारे आजादी के आंदोलन के तीन स्तंभ थे, स्वभाषा, स्वदेशी और स्वराज। स्वराज की कल्पना, स्वदेशी के संस्कार से उत्पन्न हुई स्वभाषा। आजादी के आंदोलन की यदि कोई सशक्त नींव थी, तो वह स्वभाषा ही थी। इस स्वभाषा से स्वदेशी के संस्कार ने जन्म लिया, स्वराज की कल्पना मिली, जिसने 15 अगस्त 1947 को आजादी दिलाई। इस आजादी के आंदोलन में हमारी स्वभाषाओं में राजभाषा और स्थानीय भाषाओं की भूमिका पर जो अलग-अलग साहित्य की रचनाएँ हुई हैं, इसका एक संग्रह कर देश के सामने रखना चाहिए ताकि नई पीढ़ी को स्वभाषा का महत्व पता चल सके।

दूसरा विषय जो मेरे मन में है, क्षेत्रीय इतिहास को राजभाषा में ढंग से अनुवादित करना चाहिए। विभिन्न क्षेत्रों की गौरवशाली संस्कृति और उन क्षेत्रों के महानायकों के इतिहास का राजभाषा में सही भाव के साथ अनुवाद होना चाहिए और ये अनुवादित ग्रंथ देश के विभिन्न ग्रंथालयों में उपलब्ध भी होने चाहिए। मैं मानता हूं कि आजादी के 75वें साल में मनाए जा रहे अमृत महोत्सव पर राष्ट्र की एकता और अखंडता के लिए हमारा बहुत बड़ा काम होगा।

संविधान द्वारा दिए गए राजभाषा संबंधी दायित्वों के निर्वहन की दिशा में माननीय प्रधानमंत्री जी के नेतृत्व में सरकारी काम-काज मूल रूप से हिंदी में किया जा रहा है। गृह मंत्रालय में सभी फाइलें हिंदी में प्रस्तुत की जाती हैं, क्योंकि मेरा मानना है कि हिंदी में कार्य कर हम अपने संवैधानिक दायित्व का निर्वहन तो कर ही रहे हैं, आम-जन तक सरकार की नीतियों और कार्यक्रमों की जानकारी आम जनता की भाषा में देने का महत्वपूर्ण काम भी इसके साथ ही होता है।

आइए! हिंदी दिवस के इस पावन पर्व पर हम प्रतिज्ञा लें कि हम अपने राष्ट्रीय कर्तव्यों का पूर्ण रूप से पालन करेंगे और अधिक से अधिक मूल कार्य हिंदी में कर संवैधानिक दायित्वों का निर्वहन करेंगे।

हिंदी दिवस के अवसर पर सभी देशवासियों को पुनः हार्दिक शुभकामनाएं देता हूं, वंदे मातरम!

नई दिल्ली,
14 सितंबर, 2021

(अमित शाह)

आज़ादी का
अमृत महोत्सव